यक्षों की भारत को देन

यक्षों की भारत को देन

अरुण

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

• राजस्थानी ग्रंथागार
[illegible]
[illegible] जोधपुर

संस्करण 1996

मूल्य : एक सौ पचास रुपया

© लेखक

[illegible] द्वारा [illegible] जोधपुर के लिए प्रकाशित एवं
[illegible] द्वारा मुद्रित

प्रिय पिता

श्री मदन मोहन 'निष्काम'

जिनके प्रोत्साहन से मैंने लिखना जाना

को समर्पित

आरम्भ

इस पुस्तक के बीज का वपन आज से पचास वर्ष से पूर्व ही हो गया था जब एक बालक ने दिवाली के दिन पिता से पूछा था— दिवाली को लक्ष्मी और गणेश की पूजा क्या करते हैं लक्ष्मी और विष्णु की करनी चाहिये, वे पति पत्नी है।

पिता सस्कृत के विद्वान् थे उन्होंने आई सी एस प्रतियोगिता मे वैदिक सस्कृत विषय लिया था। उन्होंने अरुण को उत्तर दिया— मैंने जितना पढ़ा है, उसमे इस प्रश्न का उत्तर नही है। है तुम्हारी शका बिल्कुल वाजिब। आगे चलकर खूब पढना और इस शका को दूर करने का प्रयास करना।

डाट पड जाती तो शका की असमय हत्या हो जाती बढावा मिला तो समय समय पर मस्तिष्क मे उमडती घुमडती रही। प्रोत्साहन मिला तो प्रश्नो के बगूल उठते रहे और पढाई की वर्षा से उन्हे शा त करने का प्रयास करता रहा।

खजुराहो म गणेश और लक्ष्मी की आलिगित मूर्ति ने फिर इस हवा दी। मथुरा म पाई कुबेर और कुबेर की पत्नी लक्ष्मी की यक्ष प्रतिमा ने इसे एक नया आयाम दिया।

पूजा के विषय मे अन्य प्रश्न उठा था क्या गाँव क्या नगर, क्या शीतला क्या होलिका वृक्षा के चारो ओर घूमकर पूजा करना, उन पर पानी, फूल और अन्न चढाना। पहाड हो या मदान किसी किसी विशाल वृक्ष की टहनियो पर रग बिरगे कपडो के टुकडे बधे दिखाई दे जाते थे। बौद्ध चत्यो पर दिखाई दिये मुस्लिम मजारो पर।

फिर लोक म फली वीर पूजा स सामना हुआ। लोक म पूजित पचवीरो के नाम पता चले। फिर पाँच वृष्णि वीरो की पूजा का पुस्तको स पता चला। साथ ही उत्तर पश्चिम म फली मुस्लिम पचपीर की पूजा का अनुभव हुआ। क्या मुस्लिम जगत म भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कही पीरो की पूजा होती है ? क्या उनकी मनत म कपडे या तागे बाधे जाते है यक्षपूजा के समान ? क्या वीर ही पीर म तो नहीं बदल गये ? मेरठ मे ही कई पीरो के मजार हैं— शाहपीर भण्ड पीर, उठान पीर नौगजा पीर। दन्त कथाओ म ये सब विशाल शरीर वाले थे— क्या यह उनका यक्ष मूल नही दिखाता ? जन्माष्टमी के दिन अम्मा घी से भर हाथ का निरजन पीर का थापा मारती थी और कृष्ण की पूजा होती थी। लखनऊ के आस पास आज भी कसम उठाई जाती हैं— मगलू पीर की दुहाई, हरसू पीर की दुहाई।

चैत्य, मूर्ति, मन्दिर सबसे पहले यक्षों के बनाये मिलते हैं। कुबेर के चार हाथ हैं, वही गणेश के हैं विष्णु के हैं। शिल्प में समान वस्तुएं उनके हाथों में दिखाई गई हैं। कहीं कहीं कृष्ण का चक्र विष्णु के हाथ में आ जुड़ा है। चैत्य और स्तूप भी बुद्ध और महावीर से पूर्व के हैं। वे जब प्रवचन करने जाते थे तो चैत्यों में ठहरते थे। बुद्ध ने मरने के बाद पुराने समय के भवन के समान अवशेष स्थान बनाने को कहा था। बौद्ध स्तूपों में बीचो बीच वृक्ष का तना गाड़ा जाता था और चारों ओर प्रदक्षिणा पथ बनाया जाता था यक्ष वृक्ष-पूजा के समान। पत्थर और ईंटें आज तक स्थिर हैं लेकिन लकड़ी लुप्त हो गई है। हर हिन्दू मंदिर में स्तम्भ जिस पर ध्वज फहराता रहता है, क्या वृक्ष-पूजा का ही परिवर्तित रूप है ?

यही नहीं, अन्य प्रश्न भी समय-समय पर कौंधते रहे। बृहस्पति वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि के दाढ़ियाँ हैं नारद गौतम बुद्ध, महावीर के क्यों नहीं ? एक, दो तीन या प्रथम द्वितीय तृतीय के बाद दो के लिये बारह बाइस बत्तीस क्यों ? क्या अक्कड़ बक्कड़ से कुछ सम्बन्ध है ? बद्रीनाथ से आगे माणा गाँव (अलकपुरी) के सिर पर जो कैलास का प्रतिरूप दिखाई दिया क्या वही असली कैलास है ? अजीबोगरीब, बिखरे बिखरे।

मैंने इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढना आरम्भ किया। उसका फल है यह पुस्तक। विश्लेषण संश्लेषण और समन्वय करके ऐसा लगता है कि यह मैंने अन्तिम शब्द कह दिया है। परन्तु जानता हूं कि यह सोचना आकाश कुसुमवत् है। हो सकता है यह परिश्रम भी प्रोटियन (यूनानी देवता प्राटियस के समान इतिहास भी अपना रूप बदलता रहता है) सिद्ध हो सकता है। यह अन्त नहीं आरम्भ है। इस पुस्तक में दिए सुझावों पर अन्यतम गवेषणा आवश्यक है।

निष्काम प्रेस मेरठ अरुण

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

यक्षों की उत्पत्ति एवं भारतीय संस्कृति एवं धर्म में उनका स्थान प्राच्य-विद्या विशारदों में पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है। एच जकोबी, ग्राल वार्ती पूर्से, जे पी एच फोगल, जे फर्गुसन, ए के कुमारस्वामी, जीमर तथा डी डी कोसाम्बी के नाम इस प्रसंग में सादर उल्लेख्य हैं। इनमें कुमारस्वामी का ग्रन्थ 'यक्षज' सर्वाधिक श्रद्धेय है एवं एतद्विषयक साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साक्ष्य का साङ्गोपाङ्ग एवं विशद अध्ययन प्रस्तुत करता है। कुमारस्वामी फर्गुसन के इस मत में विश्वास करते थे कि यक्षों और नागों की उपासना जो उर्वरता और वृष्टि की शक्तियों का दैवीकरण थे, भारत की प्रागार्ययुगीन आर्येतर जातियों में प्रचलित थी। उनका कहना था कि हिन्दू धर्म के अनेक मूल तत्त्व प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में नहीं मिलते। सर्वप्रथम ब्राह्मणों और उपनिषदों में संसारवाद कर्मवाद और भक्ति आदि अवधारणाओं का आविर्भाव होता है और यही बात सामान्य रूप से शिव, कृष्ण, यक्षों, नागों असंख्य देवियों तथा विशिष्ट प्रदेशों में पूजित अनेक देवताओं पर लागू होती है। इससे कुमारस्वामी ने निष्कर्ष निकाला है कि ये विचार और देवी देवता जिनका प्राकट्य उत्तर वैदिक काल में हुआ, प्रकृत्या और मूलतः वैदिक न होकर प्रागार्य और आर्येतर थे।[1]

कुमारस्वामी का उपर्युक्त मत आजकल बहुप्रचलित और बहुमान्य है। ऐसी स्थिति में अरुणजी का प्रस्तुत ग्रन्थ यक्ष इतिहास के अध्ययन को नई दिशा प्रदान करता है। अरुणजी ने यक्षों को प्राचीन भारत की एक प्रमुख जाति और विशिष्ट यक्षों को लोक पूजित देवता माना है और इस दृष्टि से उनकी भारतीय संस्कृति को देन का अध्ययन किया है। उनकी कुछ मान्यताओं के विषय में अन्य विद्वानों को शंका हो सकती है परन्तु इसमें किसी को शंका नहीं हो सकती कि उनका विवेचन प्रायः सतर्क और यक्ष इतिहास को आलोकित करने वाला है।

अंग्रेजी भाषा में 'यक्ष' (पालि 'यक्ख' तथा प्राकृत 'जक्ख') का पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता। श्रीमती रीज डेविड्स के अनुसार इसका निकटतम पर्याय 'जिन' (geni jinn) है।[2] 'यक्ष' शब्द की व्युत्पत्ति भी अनिश्चित है। कीथ ने इसको यज धातु (पूजा करना) से निष्पन्न किया है। हिलेब्रान्त ने ■ यक्ष (सम्मानित करना) का सम्बन्ध वैदिक 'यक्ष' से जोड़ा है। वह यक्ष का अर्थ सगीतज्ञ भी मानते

---

1 यक्षज, I पृ 3

2 बुक अ ऑफ्कुड सेइंग्स I 1957 पृ 262

थे। कुमारस्वामी के अनुसार 'यज' शब्द का सम्बन्ध 'अथर्ववेद' में उल्लिखित 'यक्ष' ज्वर से हो सकता है और यह भी सम्भव है कि 'यक्ष' शब्द और यक्षों की कल्पना दोनों ही आर्येतर हों।[1] वायु (9 29) और ब्रह्माण्ड (3 7 60) पुराणों में 'यक्ष' शब्द का आधार 'क्षी' धातु को माना गया है जिसका अर्थ 'क्षीण करना' या विनाश करना है। कुछ प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि यक्षों को कश्यप ने उपासना के लिए उत्पन्न किया था। कुछ अन्य ग्रन्थों के अनुसार वे प्रचेता के पुत्र थे। 'पद्म पुराण' के अनुसार उन्हें ब्रह्मा ने अपनी मन सामर्थ्य से उत्पन्न किया था। वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में कहा गया है कि ब्रह्मा से उत्पन्न होने पर यक्षों ने जलों को क्षीण करने की चेष्टा की थी इसलिये वे यक्ष कहलाये। विष्णु पुराण (1 5 59) में यक्षों को प्रजापति से उत्पन्न माना गया है। रामायण (उत्तरकाण्ड सर्ग 4) में कहा गया है कि प्रजापति ने जलों का निर्माण करके उनकी रक्षा के लिए कुछ सत्वों का निर्माण किया। उन्होंने ब्रह्मा से पूछा 'हम क्या करें?' ब्रह्मा ने कहा 'रक्षध्वम'। इसके उत्तर में कुछ ने कहा 'वयं यक्षाम' और कुछ ने कहा 'वयं रक्षाम'। इनमें 'वयं यक्षाम' कहने वाले यक्ष कहलाये (यक्षाम इति यरुक्त यक्षा एव भवन्तु व) और वयं रक्षाम कहने वाले राक्षस। कुमारस्वामी ने यक्षाम का अर्थ खाने वाले माना है परन्तु वा० श० अग्रवाल का कहना है कि भोजन के अर्थ में 'यक्ष' धातु ला है यक्ष नहीं। धुरा-दिगण में एक यक्ष धातु है परन्तु यह बाद की जान पड़ती है।[2]

यक्ष शब्द के कई पर्याय प्राचीन काल में प्रचलित थे। इनमें महत्तम पर्याय ब्रह्म है। महाभारत में यक्षमह के लिए ब्रह्ममह शब्द का प्रयोग अनेकत्र मिलता है। आज भी नाक में यक्ष पूजा का बीर बरह्म पूजा कहा जाता है। अथर्ववेद में अमृत से घिरी और विशालकाय यक्षों से सकुल ब्रह्मपुरी का उल्लेख है। अमृत से सम्बन्धित होने के कारण इस नगरी को अपराजिता कहा गया है। 'महाभारत' के एक श्लोक में राजा (=यक्ष) के अवध्य ब्रह्मपुर का उल्लेख है।[3] रामायण में यक्षत्व और अमरत्व पर्यायवाची माने गये हैं।

यक्षों की एक सभा राज भी थी। इसीलिये उनके राजा कुबेर को महाराज कहा जाता था और कुबेर को दी जाने वाली बलि को महाराज बलि। पाणिनि के अनुसार महाराज एक देवता था जिसके भक्त महाराजिक कहलाते थे। पालि साहित्य के अनुसार चार यक्ष चार दिशाओं के लोकपाल (चत्तारो महाराजानो) कहलाते थे—गन्धर्वपति धतराष्ट्र पूर्व दिशा का, कुम्भाण्डराज विरूढक दक्षिण दिशा का, नागराज विरूपाक्ष पश्चिम दिशा का तथा यक्षेश्वर

1 यक्षज 2 पृ 2
2 अग्रवाल वा श प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ 120
3 अग्रवाल वा श पूर्वो पृ 124

वैश्रवण उत्तर दिशा का। परन्तु वास्तव म ये चारो ही यक्षा के रूप म पूजे जाते थे। भरहुत वेदिका अभिलेखो म इनको यक्ष ही बताया गया है।

वदिक और वेदोत्तर साहित्य मे सुदर, अद्भुत अपूव और महद्भूत आश्चय— यह यक्षा की सवस्वीकृत कल्पना है। 'ऋग्वेद म मरुत्देव का यक्षा के समान सुदर बताया गया है। 'अथववेद म यक्षो के समान (यक्षदृश) युवका की चचा है। परवर्ती साहित्य म किसी सुदर पुरुष या स्त्री को उसकी सुदरता के कारण यक्ष या यक्षी मानने की बात प्राय आती है। महाभारत के यक्ष *युधिष्ठिर सवाद म यक्ष का महाकाय, ताड वृक्ष के समान ऊँचा, पवतसम महाबली* अधृष्य (जिसे मृत्यु न दबा सके) तथा अग्नि और सूय के समान देदीप्यमान बताया गया है। शुग कुषाण काल की विशाल यक्ष प्रतिमाआ म भी उनका ऐसा ही व्यक्तित्व अकित है।

महाभारत' म कहा गया है कि पितामह ब्रह्मा न वश्रवण कुबेर को अमरत्व धनेशत्व और लोकपालत्व—ये तीन वरदान दिये थे (आरण्यक पव, 258 15)। उद्योग पव म इस अमृत को एक प्रकार का पीना मधु बताया गया है जो घडे म बद है और सप जिसकी रक्षा करत हैं। इस पीकर मत्य पुरुष अमर हो जाता है, *वृद्ध युवा और अधा चक्षुवान्। यक्ष मूर्तियो मे उनके बाएँ हाथ म अमृतघट* प्राय दिखाया जाता है। जक्ष की साधना करने वाले पुजारीगण लोगो को इस अमृत का प्रलोभन दत थ। बौद्ध ग्रथा म कुबर का जभल दवता सम्भवत इसी लिये कहा गया है क्योकि उसके पास जभ नामक गुह्यविद्या का ज्ञान था।

यक्षो का घनिष्ठ सम्बध राक्षसा गधर्वों गुह्यको और विद्याधरो आदि से बताया गया है। इन सब का वास उत्तर दिशा म था। इन सभी के पास अति-मानवीय शक्तियाँ बताई गई हैं। जन धम म यक्षो राक्षसा किन्नरा किंपुरुषो और गधर्वों आदि की गणना व्यतर देवताओ म की गई है। बौद्ध और ब्राह्मण *ग्रथा मे भी ऐसे देवताओ की सूचियाँ मिलती हैं।* तपण और श्राद्ध पर प्रयुक्त मत्र म यक्षो सहित अधिकाश व्यतर देवता अनुसूचित हैं (देवा यक्षास्तथा नागा गधर्वाप्सरसो सुरा। क्रूरा सपा सुपणाश्च तरव जिह्मगा खगा। विद्याधरा जलाधारास्तथवाकाशगामिन)।

राक्षसो की उत्पत्ति प्राय यक्षो के साथ मानी गई है। वे मानवा के शत्रु और अत्यत क्रूर बताये गये हैं। यक्ष सामायत मानव शत्रु नही होत यद्यपि दुष्ट यक्ष और दयालु राक्षसो के उदाहरण सवथा अज्ञात नही हैं। यक्षा और राक्षसो दोनो को पुण्यजन कहा गया है और यह शब्द 'अथववद म कुबर के अनुगामियों के लिये आया है। गुह्यक भी कुबेर के अनुगामी कहे गये हैं। वे गुहावासी और निधियो के रक्षक हैं। देवी सगीतज्ञ किन्नर (अश्वमुखी नर) तथा

किंपुरुष (नरमुखी अश्व) भी कुबेर के अनुगामी हैं। विद्याधर यक्षो के निकटतम हैं। वस्तुत जो स्थान पालि और प्रारम्भिक सस्कृत साहित्य म यक्षो का है वही ईसवी सन् की प्रारम्भिक शतियो के सस्कृत साहित्य मे विद्याधरो का दिखाई देता है। व अपन राजाओ और चक्रवर्तियो के अधीन उत्तर दिशा म पवत प्रदेशो व नगरो म रहत हैं। उनका मनुष्य से सम्पक रहता है और दोनो म विवाह सम्बन्ध भी होते हैं। इसक विपरीत यक्षो और मानवो के विवाह सम्बन्ध (जसे सिंहल मे विजय का यक्षिणी कुवेणी से विवाह) विरलत ही उल्लिखित हैं। वे कामरूपी इच्छारूपधारी तथा आकाशगमन मे समथ बताये गये हैं। विमलसूरि क 'पद्म चरित म राक्षसो, वानरो और यक्षो को विद्याधरो की शाखायें बताया गया है।[1]

यक्षो का राजा कुबेर है। उसका दूसरा नाम वश्रवण (पालि वेस्सवन) है। वह वित्तेश धनेश यक्षेश आदि कहा गया है। वह नवनिधियो का स्वामी तथा उत्तर दिशा का लोकपाल है। 'अथववेद म वह पुण्यजनो या इतरजनो' का स्वामी बताया गया है। क्लासिकल सस्कृत साहित्य म 'पुण्यजन' शब्द का प्रयोग यक्षो और राक्षसो के लिये हुआ है। 'तत्तिरीय आरण्यक म उसके आश्चयजनक वाहन (परवर्ती पुष्पक यान) की चर्चा है। परवर्ती साहित्य म राक्षसो का स्वामी उसके भाई रावण को बताया गया है और स्वय कुबेर को यक्षो गुह्यको और किन्नरो आदि का। रामायण मे वह प्रजापति के पुत्र पुलस्त्य का पौत्र और विश्रवस का पुत्र है।

कुबेर की राजधानी अलकापुरी है और चत्ररथ उसका रमणीय उद्यान। वह नरवाहन नरधर्मा और 'श्रीद है। उसके पुत्र का नाम नलकुबेर है जिसकी स्त्री रम्भा के ऊपर रावण ने कुदृष्टि डाली थी। वायु पुराण (41 26) म कुबेर का सम्बन्ध कलाश स बताया गया है। विष्णु पुराण म कहा गया है कि सुमेरु क पवत अन्तरालो म यक्ष क्रीडा करते हैं। इसी ग्रथ म अन्यत्र (2 5 4) यक्षो को पातालवासी कहा गया है।

यक्षो की ब्रह्मपुरी मे सुवण कोश होने का उल्लेख है। उत्तर दिशा मे सुवण पवत मेरु है। जाम्बुनद सुवण पपीलिक सुवण तथा अष्टापद सुवण— ये सब उत्तर दिशा म ही होते है। कुबेर शख, पद्म आदि निधियो का स्वामी है और कुषाणकालीन मूर्तियो म लक्ष्मी कुबेर पत्नी के रूप म अंकित है। दीपावली का पुराना नाम यक्षरात्रि था उसम कुबेर और लक्ष्मी की पूजा होती थी। बाद म दीपावली (यक्षपूजा) के अवसर पर लक्ष्मी गणेश के साथ पूजित होने लगी। सुवण के कारण ही कुबेर के वस्त्र पीले चमकते हैं। यही कल्पना विष्णु और कृष्ण के पीताम्बर म आई। अथववेद म सहस्रवीयमणि की महिमा का वणन

1 एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स 2 पृ० 810

आता है। यह न्व्यमणि युधिष्ठिर के कोश म थी। सम्भवत मणिभद्र यक्ष उसका स्वामी माना जाता था। वह बहुत सी लोककथाओ मे यक्षेश्वर के रूप म कुबेर का स्थान ले लेता है। 'रामायण' (7 15) म भी उसका उल्लेख है।

यक्ष शब्द का प्रयोग 'ऋग्वेद' 'अथववेद' एव ब्राह्मणो तथा उपनिषदो म अनेकश मिलता है।[1] प्राचीनतर ग्रथो म उनके प्रति द्वधभाव मिलता है— एक ओर उनके प्रति भय और घृणा की भावना है और दूसरी ओर सम्मान की। वे वदिक आर्यों के मन म आश्चय भी पैदा करत हैं और भय भी। कुल मिलाकर उनके प्रति आश्चय रहस्यमयता, अलौकिकता, अजेयता आदि भावनाएँ जुडी हुई हैं। उनके प्रति यह द्वधभाव भारतीय जनमन म परवर्ती युगो म बना रहा और आज भी बना हुआ है। 'ऋग्वेद म यक्षो का सुदर, महान व अद्भुत स्वरूप वाला परन्तु आर्यों के अपने दवताओ स हीनतर माना जाता था। एक मन्त्र म ऋषि विश्वास प्रकट करता है कि जिनकी बुद्धि अविकसित होती है वही यक्ष जसे अद्भुत आश्चयमय दवो म विश्वास करते हैं। एक अन्य मन्त्र म अग्नि स अनुरोध किया गया है कि यदि हमारा कोई पडोसी (अनाय जन) यक्षसदन म जाये तो हे अग्नि तुम वहाँ छिपकर मत जाना। अग्नि! यक्ष से सम्बन्ध मत रखो," "हे सवशक्तिमान देवता कहीं हम यक्ष न मिल जाए," "यम्हरयो यक्ष को देख पाना क्योकि यक्ष अदृश्य है"— ऐसे वाक्यो स भी लगता है कि आय यक्षो से भयभीत रहते थे। लेकिन इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि वे यक्षो से अत्यधिक प्रभावित भी थे। 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र म कहा गया है कि वश्वानर अग्नि इतना शक्तिशाली है कि लोग उसे यक्षो का अध्यक्ष मानने लग थ। 'अथववेद मे 'एक महान् यक्ष, सृष्टि के मध्य जलतार पर तपसनिरत, उसी म, सब देवता निहित, जैसे तने म पेड की शाखाए — की चचा है। 'बृहदारण्यक उपनिषद म कहा गया है कि जो महान् यक्ष को आदिजन्मा मानता है वह विजय प्राप्त करता है। केन उपनिषद म यक्ष रूपी ब्रह्म देवताओ का गव खव करत हैं। मत्री उपनिषद म भी यक्ष देव-सूची म गिनाय गय हैं।

पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य म गुह्यकपति वैश्रवण का कई बार उल्लेख किया है। वह उसे शिव के साथ लौकिक देवताओ की कोटि म रखते हैं और पिशाचो का उसका गण बताते हैं। पिशाचो स पतञ्जलि का आशय स्पष्टत यक्षो से है। वे वश्रवण की प्रतिमाओं का तो उल्लेख करते ही हैं, धनपति नाम स उनक प्रासाद (मन्दिरो) की चर्चा भी करते हैं जहाँ उपासको की उपस्थिति म

---

1 कुमारस्वामी यक्ष 2 पृ 1
2 अग्रवाल पूर्वो० पृ 120-21

मृदग शख, तूणव आदि बजाये जाते थे।

महाकाव्यो म यक्षो की चर्चा म उपर्युक्त भक्ति भाव भी मिलता है और कहीं-कहीं उनकी अवमानना भी की गई है। रामायण' के अनुसार रावण की लका मे यक्ष भी वास करते थे। राक्षसी ताडका जिसका राम ने वध किया था, यक्ष पुत्री है। इसी ग्रथ म एक स्थल (3 11 94) पर 'यक्षत्व शब्द 'जीवन शक्ति' अर्थ मे प्रयुक्त है। 'महाभारत' म यक्षो का उल्लेख अनेकत्र मिलता है। इसमे एक स्थल पर यक्षो को क्षुद्र देवता' कहा गया है और कुबेर को इनका राजा। ये लोग कुबेर की सभा मे लाखो की सख्या म रहकर उसकी उपासना करते थे। वनपर्व म एक यक्ष युधिष्ठिर से तत्त्वज्ञान विषयक अनेक प्रश्न पूछता है। इस प्रसग म धर्म ही यक्ष रूप म आते है। एक अन्य स्थल पर इस ग्रथ म उग्रश्रवा बताते हैं कि यक्ष कामपूजक थे और राक्षस महादेव के उपासक। प्रस्तुत ग्रथ के लेखक वरुण ने कुन्ती द्वारा शतश्रृग (उत्तर कुरु) मे नियोग द्वारा तीन पुत्र पैदा किये जाने का सम्बन्ध यक्षवाद से जोडा है (पृ० 66)। अपनी दिग्विजय के दौरान अर्जुन ने उत्तर दिशा म यक्षो के द्वारा सुरक्षित हाटक प्रदेश को साम नीति से जीता था। भीम का भी एक बार यक्षो से युद्ध हुआ था। युद्ध के बाद हुए अश्वमेध सम्बन्धी पर्व के अध्याय 62 तथा 64 म यक्षो की चर्चा आती है। द्रुपद की पुत्री शिखण्डिनी को स्थूणाकर्ण यक्ष ने पुरुष— शिखण्डी— बना दिया था। 'महाभारत म मुञ्जवट [तथा राजगृह म दूर दूर तक प्रसिद्ध यक्षिणी मन्दिरो का उल्लेख है जहाँ प्रतिदिन पूजा (नित्यक पूजा) होती थी। राजगृह की यक्षी का मूल नाम जरा था। [सभापर्व मे उसे मासशोणितभोजना कहा गया है। उसी ने जरासन्ध के शरीर के दो टुकडो को जोडकर उसे जीवित किया था। इससे प्रसन्न होकर जरासन्ध क पिता ने आदेश दिया था कि मगध के घर घर म उसकी पूजा हो और उसके सम्मान म वार्षिक महोत्सव मनाया जाय।

जिस युग मे जब जातक कथाएँ लिखी जा रही थी यक्षो को रक्तिम नेत्र वाले मानवभक्षी प्राणी माना जाने लगा था। इतना ही नहीं उनकी गणना राक्षसो के साथ की जाने लगी थी।[1] इस दृष्टि से उनका पतन ईरान में जरथुष्ट्री प्रभाव से देवो के और यूरोप म ईसाई धर्म के प्रभाव के कारण प्राचीनतर यूरोपीय पुराकथाओ के देवगणो के पतन के साथ तुलनीय है। इसके बावजूद बौद्ध साहित्य म ऐसे भी सकेत उपलब्ध हैं जिनमे यक्षो की गरिमा और मानवो के प्रति उनकी कृपा और अनुग्रह तथा मानवो का उनके प्रति भक्तिभाव प्रतिध्वनित हैं।

बौद्ध साहित्य मे देवता और यक्षो म भेद करना कठिन है। इसम ये सभी

1 कुमारस्वामी यक्षज 1 पृ 4 टि 3

कर्म और पुनर्जन्म के बन्धन से बँधे हैं। मनुष्य का पुनर्जन्म देवता या यक्ष के रूप में हो सकता है और देवता तथा यक्ष का मनुष्य रूप में। लगभग सभी देवताओं को साहित्य में कहीं न कहीं यक्ष कह दिया गया है और वहाँ इस शब्द का प्रयोग सम्मानजनक अर्थ में हुआ है।

प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में 'यक्ख' शब्द अनेकत्र प्रतिष्ठासूचक है। उन्हें प्रायः 'अमनुस्स' कहा गया है और इनकी गणना देवों, राक्षसों, गन्धर्वों, किन्नरों आदि के साथ की गई है। 'मज्झिम निकाय (1 252) में सक्क (शक्र = इन्द्र) तथा मज्झिम' (1 3383) में स्वयं बुद्ध को यक्ख कहा गया है। लेकिन 'अंगुत्तर निकाय (2 37) में एक स्थल पर बुद्ध कहते हैं कि वह न देव हैं, न गन्धर्व और न यक्ख। एक स्थल पर देव पुत्र ककुध को यक्ख बताया गया है तथा अन्यत्र देव नगरी अलकमन्दा को यक्खों से परिपूर्ण कहा गया है। उनके पास भी देवताओं के समान ऋद्धियाँ (अतिमानवीय शक्तियाँ) होती हैं।

लेकिन बौद्ध धर्म में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के यक्ष हैं। 'दीघनिकाय' के 'आटानाटीय सुत्त' में यक्षों के राजा वेस्सवण बुद्ध को बताते हैं कि यक्ष लोग प्रायः बुद्ध और उनके धम्म को नहीं मानते। बुद्ध के उपदेश लोगों को पाप कर्म से बचने का आग्रह करते हैं इसलिये वे यक्षों को प्रिय नहीं हैं। कुछ यक्ष बौद्ध भिक्षुओं को कष्ट देते हैं परन्तु महायक्ष सद्धर्म में सहायता करते हैं और दुष्टात्मा यक्षों पर अंकुश लगाते हैं। वेस्सवण ने एक मन्त्र की ओर इंगित किया है जिसका जप करने से दुष्ट यक्षों से बचा जा सकता है। उसने इन्द्र, सोम, वरुण, प्रजापति, मणिभद्र, आडवक इन सभी को यक्ष बताया है। 'अंगुत्तर निकाय' के 'पञ्चक निपात' में कहा गया है कि मधुरा (मथुरा) में भिक्षुओं को जिन पाँच संकटों का सामना करना पड़ता था, वे थे सड़कों का उबड़ खाबड़ होना, धूल का आधिक्य, भयंकर श्वान, क्रूर यक्ष एवं भिक्षा की कमी। ऐसे दुष्ट यक्षों की नियुक्ति भी जो भिक्षुओं को परेशान करते हैं विभिन्न प्रदेशों में वेस्सवण ने ही की थी। वे अपने क्षेत्र में भटककर आए हुए व्यापारियों और अन्य यात्रियों को मार कर खा जाते थे। उनका निवास प्रायः गाँव के बाहर वृक्षों और कुञ्जों में, चौराहों पर या सरोवरों और झरनों के निकट बताया गया है। व्यापारी और यात्री उनको प्रसन्न करने के लिए बलि देते थे। एक जातक कथा में व्यापारियों द्वारा चौराहों पर मत्स्य, मांस तथा सुरा अर्पित की जाती है। एक अन्य जातक कथा में एक नृशंस राजा क्षत्रिय जाति के बंदियों को निग्रोध देवता के सम्मुख बलि देता है जिससे वह तक्षशिला पर विजय प्राप्त कर सके। 'महाभारत' में जरासन्ध द्वारा विजित राजाओं को बलि देने और कृष्ण, भीम और अर्जुन द्वारा उसको इस घृणित काम से रोकने के पीछे भी जरासंध द्वारा जरा यक्षी की पूजा और भागवतों द्वारा उसका विरोध हो सकता है। एक अन्य जातक कथा में कम्मास-

धम्म नगर के बाहर स्थित निग्रोध देवता ऐसी बलि पाते हैं। बुद्ध द्वारा कम्मास धम्म मे धमदेशना की गई थी। बहुत से यक्ष अजनबियो से प्रश्न पहेलियाँ पूछते थे जिसका सही उत्तर न दने पर या तो अजनबी मर जाता था और या उसकी बलि दे दी जाती थी। 'महाभारत' म युधिष्ठिर यक्ष सवाद इसका अच्छा उदाहरण है। लेकिन धीरे धीरे बौद्धो न यक्षो की पूजा स नरबलि जसे तत्व निकालकर और उनको बलि मे निरामिष भोजन दिये जाने का प्रचार करके उनकी पूजा को सम्मानित मानवीय रूप दिया। बहुत सी जातक कथाओ मे बोधिसत्व दुष्ट यक्षो को धम के माग पर लाते हैं।[1] अगुलिमाल पहिले एक नर भक्षी वृक्षवासी यक्ष था, जो बाद म बुद्ध के प्रभाव से द्वारपाल हो गया।[2]

लगभग तीसरी शती ई० मे रचित बौद्ध ग्रथ 'महामयूरी' म विभिन्न स्थलो पर पूजित यक्षो की एक लम्बी सूची दी गई है।[3] इनमे कुछ यक्ष ये थे— राजगृह मे वज्रपाणि और वकुल कपिलवस्तु मे काल और उपकालक, विराट म महेश्वर श्रावस्ती म वृहस्पति, साकेत म सागर वशाली म वज्रायु चम्पा म सुदशन, वाराणसी म महाकाल, द्वारका म विष्णु ताम्रपर्णि म विभीषण उरगा (पाण्डय दश की राजधानी उरगपुर) म मदन बहुधान्यक म कपिल उज्जयिनी वसुत्रात अवति मे वसुभूति, भरकच्छ म भरिक अग्रोदक (पूर्वी पजाब का अग्रोहा) म मात्यधर सुवास्तु (स्वात) म शुक्लदष्ट्र गिरि नगर मे महागिरि विदिशा मे वासव रोहितक मे कुमार कार्त्तिकेय कलिंग मे वृहद्रथ स्रुघ्न म दुर्योधन अजुनावन (अजुनायन) मे अजुन मालवा मे गिरिकूट शाकल म सवभद्र वणु (बन्नू) म कपिल, ग धार मे प्रमदन, तक्षशिला म प्रभजन भद्रशल मे खरपोस्त रौरुक (सौवीर की राजधानी) म प्रभकर लम्पाक मे कलहप्रिय, मथुरा म गदभक पाण्डमधुरा (दक्षिण भारतीय मदुरा) मे विजय और वजय त मलय म पूणक केरल म किन्नर नासिक म सु दर बनवासी (दक्षिण कनाडा) म पालक अहिच्छत्रा म रतिक काम्पिल्य म कपिल पाचाल म नगमेष हस्तिनापुर मे प्रसव यौधेया में पुरञ्जय कुरुक्षेत्र म तराक और कुतराक (महाभारत के तरन्तुक और अरन्तुक) एव उलूखल मखला नाम की यक्षी कोन्विप (बगाल) म महासेन, कौशाम्बी म अनायास चम्पा मे पुष्पदन्त पाटलिपुत्र म भूतमुख काशी मे अशोक, मरुभूमि मे जम्भक दरद् देश म देवशर्मा कश्मीर मे प्रभकर काश्मीर के सीमा प्रदेश मे पाचिक और उसके 500 पुत्र चीन भूमि मे पाचिक का ज्येष्ठ पुत्र कापिशी (वेग्राम) म लकेश्वर रूसदेश म धमपाल, बाह्लीक म महाभुज, तुषार देश म

1 कौसाम्बी मिथ एण्ड रीयलिटी पृ 124

2 कुमारस्वामी यक्षज 2 पृ 8

3 दे० लेवी सिल्वाँ जे० ए० 5 1915 भाग I पृ० 19–138 अग्रवाल वी० एस० प्राचीन भारतीय लोकधम पृ० 127–28

वष्णव का पुत्र युवराज जिनपभ, सिंधुसागर म सातगिरि और हैमवत द्रविड देश म पचालगड, सिंहल म धनश्वर, पारस देश म पाराशर शकस्थान म शकर, पहलव देश म वेमचित्र, उड्डियान म कराल गापकाण (बयान) म चित्रसेन, रमठ (हींग का प्रदेश, जागुड या गजनी) म रावण। इस लम्बी सूची से स्पष्ट है कि यक्ष पूजा अफगानिस्तान और ईरान से लेकर पूव म बगाल तथा दक्षिण म सिंहल तक प्रचलित थी। इस सूची म आए यक्ष नाम शव वष्णव आदि विभिन्न धार्मिक परम्पराओ म लिये गये देवनाम हैं। इनमे कुछ महाकाव्यो म वर्णित वीरो के भी हैं यथा दुर्योधन, अजुन आदि। कुछ नामा का उल्लेख अय दृष्टि स रोचक है। यथा इस सूची म द्वारका का यक्ष विष्णु को बताया गया है कृष्ण को नही। अजुनायना म अजुन नामक यक्ष की पूजा के प्रचलन से इस जाति का अजुन पाडव से सम्बध सकेतित माना जा सकता है।

पाचिक यक्ष की पूजा को, जो कुबेर का ही दूसरा नाम था महायान बौद्ध धम म बहुत लोकप्रियता मिली। गधार देश म पाचिक और उसकी पत्नी हारीति की उपासना प्रचलित थी। किसी समय उसकी उपासना मध्य एशिया म भी फली। हारीति के सम्बध मे कहा गया है कि वह पाँच सौ यक्षो की माता थी। उसका सम्बध मूलत राजगृह से था। 'महाभारत वनपव म जरा नाम की जिस यक्षी का उल्लेख है वही बौद्ध धम म हारीति नाम से विख्यात हुई। वह बच्चा का हरण कर लेती थी। अपनी इस प्रकृति के कारण वह जातहारिणी या हारीति कहलाई। जिस समय बुद्ध राजगृह आय तो उन्होन उसे सुधारने के लिय उसके पुत्र को छिपा दिया। इस पर वह बहुत व्याकुल हुई और उसके हृदय म मातृ प्रम उत्पन्न हुआ। तब से वह बच्चो की रक्षिका देवी बन गई। कुषाण युग म मथुरा उसकी पूजा का केन्द्र था। बौद्ध ग्रथो के अनुसार वह चेचक द्वारा बच्चा का हरण करती थी। आज भी शीतला के रूप मे उसकी पूजा होती है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दिया में बौद्ध समाज म यक्षपूजा के प्रचलन के प्रमाण भरहुत के प्राचीन स्तूप के वेदिका स्तम्भा पर उत्कीर्ण यक्षमूर्तियो के रूप में पाया जाता है। इनके नाम हैं— सुचिलोम, कुपिर (कुबेर) अजकालक, गगित, सुपवस विरुधक, सुन्सना चदा सिरिमा देवता चुलकोका देवता तथा महाकोका दवता। इनम अतिम पाच नाम यक्षियो के हैं। 'चुलकोका का अथ है छोटी कोका और 'महाकोका का अथ है 'बडी कोका। अग्रवाल के अनुसार नामो के ऐसे युगल काशी के वीरा के नामा म अब भी मिलते हैं, यथा लहुरावीर और बुल्लावीर (विपुल > बुल्ला = बडा)। अशोक ने अपन अभिलेखा म दावा किया है कि उसने उन देवा का, जो पहिले अमिश्रित थे मिश्र कर दिया (अमिसा देवा मिसा कटा)। डॉ० अग्रवाल क विचार म यहा अशाक का तात्पय यह है कि लोकपूजा के जो देवता पहिले बौद्ध धम के साथ मिले हुए नही थ और जिनकी

मान्यता पृथक थी उन्हे बौद्ध धर्म मे स्वीकार कर लिया गया। फलत बौद्ध कला मे जहा एक ओर बुद्ध के जीवन सम्बन्धी नाना दृश्य अंकित किये जाने लगे वही यक्ष-यक्षी और नाग नागी आदि व्यन्तर देवताओ का अकन भी होने लगा।[1]

'मिलिन्द पन्हो' मे जिन तत्कालीन सम्प्रदायो की सूची दी गई है उनके देवताओ मे मणिभद्द पूरणभद्द चन्दिम, सूरिय, सिरि (श्री) कलि (=काली) शिव तथा वासुदेव सम्मिलित हैं। इस ग्रंथ मे यह कहा गया है कि ये सब सम्प्रदाय गुह्य थे। लेकिन सिंहली टीकाकारो ने इन देवताओ के उपासको को भक्त' बताया है (पृ० 17)।

बौद्धो के समान जनो ने भी यक्षो को अपने देवसमूह मे स्थान दिया। प्रारम्भ मे जन धर्म मे यक्ष यक्षियो की प्रतिष्ठा बहुत नही थी लेकिन बाद मे विशेषत गुप्तोत्तर दक्षिण भारत मे जन यक्षो की लोकप्रियता तीर्थङ्करो से भी बढ गई। भगवती सूत्र मे जन कुबेर के आज्ञानुवर्ती तेरह यक्षो की सूची मिलती है। इनमे मणिभद्र और पूर्णभद्र भी सम्मिलित हैं। उमास्वाति के तत्त्वार्थभाष्य मे तेरह प्रकार के यक्षो को अनुसूचित किया गया है। भद्रान्त नाम वाले यक्ष शुभ माने जाते थे। बाद मे जन धर्म मे हर जिन या तीर्थङ्कर का एक यक्ष-यक्षी युगल रूप मे शासन देवता माना जाने लगा। इनमे बहुत से हिन्दू पुराकथाओ से अपनाये गए देवी देवता थे।[2] हेमचन्द्र के ग्रन्थ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित मे इन यक्ष यक्षियो के विषय मे विशद सामग्री मिलती है।

यक्षपूजा को अन्य सम्प्रदायो के घोर विरोध का सामना करना पडा। जसा कि पीछे देखा जा चुका है ऋग्वेद काल मे भी अनेक वदिक ऋषि यक्षो के विरोधी थे। उसके उपरान्त बौद्धो और जनो ने भी दुष्ट यक्षो की पूजा का विरोध किया। भले यक्षो को उन्होने अपने देवसमूह मे स्थान अवश्य दिया परन्तु उनका व्यक्तित्व परिवर्तित करके और मात्र गौण देवता के रूप मे। बुद्ध ने महदुपट्ठान या यक्षपूजा को तिरच्छान विज्जा या मिच्छाजीवा कहा है जो सामान्य जनो (पुथुज्जन = पृथक जन) मे फली हुई थी। उन्होने यह घोषित किया था कि जन साधारण यह जान ले कि गौतम आग्नियपूजा यक्षपूजा, सिरिदेवता का आवाहन वन मे जलते भारी प्रकाश मे विश्वास आदि बातो से ऊपर उठ चुके हैं।

बौद्ध साहित्य मे मार को भी यक्ष बताया गया है। महावस्तु मे उसकी सेना मे यक्ष सम्मिलित कहे गये हैं। इन यक्षो का नेता सार्थवाह था जो मार का पुत्र था। उसने मार को सलाह दी थी कि वह बुद्ध से हार मान ले। इससे

1 अग्रवाल पूर्वो० पृ० 129

2 विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए शर्मा जे पी पूर्वोक्त पृ 5

अरुण ने निष्कर्ष निकाला है कि बुद्ध की शिक्षा सर्वप्रथम यक्ष जाति के सार्थवाह व्यापारियों ने स्वीकृत की थी (पृ० 69)।

यक्षपूजा को बौद्ध धर्म ने किस प्रकार परिवर्तित किया इसका रोचक उदाहरण हारीति की कथा है जिसे बुद्ध बच्चों का हरण करने वाली यक्षी के बजाय उनकी रक्षिका देवी बना देते हैं। बोधिसत्व द्वारा इस प्रकार दुष्ट और मांसाहारी यक्षों को कल्याणकर और निरामिषभोजी बनाये जाने की कथायें बौद्ध साहित्य में भरी पड़ी हैं।

जैन धर्म ने भी इसी प्रकार यक्षों का व्यक्तित्व परिवर्तित किया। लेकिन बाद में जैनों ने यक्ष-यक्षियों के युगलों को तीर्थङ्करों का शासन देवता बना दिया जिससे ये देवता जैन धर्म में महत्त्वपूर्ण हो उठे और प्रभाव और लोकप्रियता की दृष्टि से तीर्थङ्करों के समकक्ष हो गये।

ब्राह्मण सम्प्रदायों ने भी यक्षपूजा को आत्मसात् करने का प्रयास किया। उन्होंने कुबेर को एक दिक्पाल बना दिया। 'महाभारत' में विष्णु के साथ कुबेर को भी 'भागवत' कहा गया है। यक्ष मणिभद्र की पवाया मूर्ति के नीचे उत्कीर्ण लेख में 'भागवत' कहा गया है तथा उस मूर्ति के निर्माता को मणिभद्र का भक्त। ब्राह्मण सम्प्रदायों ने किस प्रकार यक्षपूजा को अपने साँचे में ढाला इसका एक उत्तम उदाहरण 'मत्स्यपुराण' (अध्याय 180) में प्रदत्त हरिकेश यक्ष की कथा है। वह अपने पिता पूर्णभद्र यक्ष के क्रोध की परवाह न करके शिव की आराधना करता है और उनसे नित्य काशीवास का वरदान पाता है। इसी पुराण के अध्याय 183 में बहुत से यक्षों को शिवगणों में गिनाया गया है। इन तथ्यों से संकेतित है कि किसी समय काशी में यक्ष और शिवपूजा में संघर्ष चला था जिसमें शिवपूजा को विजय मिली और हरिकेश यक्ष, जो आजकल हरसू बरह्म नाम से पूजा जाता है, तथा अन्य यक्ष शिव के गण मान लिए गए।

भारत की इन्द्रधनुषी संस्कृति के विविध वर्णों की गणना करना और हर रंग का महत्त्व निर्धारित करना असम्भव-सा है। जैसे प्याज में छिलकों की परतों के ऊपर परतें चढ़ी रहती हैं उसी तरह भारतीय संस्कृति के विकास में नाना प्रजातियों, धर्मों आदि की देन की परतें चढ़ी हुई हैं। इन परतों को खोल कर उनकी व्यञ्जना करना दुष्कर है। अरुणजी के प्रस्तुत ग्रन्थ में यक्ष जाति की देन की परत का अध्ययन है। उन्होंने यह सायास दिखाया है कि परवर्ती साहित्य एवं आधुनिक लोक कथाओं में यक्षों और यक्षियों के विषय में जो धारणा बनती है उससे उनकी उस प्रतिष्ठा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता जो उन्हें प्राचीन साहित्य में दी गई है। इसी प्रकार उनका अर्द्ध विकसित प्राग्आर्य और आर्येतर जातियों के देवता मानकर लिखे गये शोध प्रबन्धों व निबन्धों से उनकी भारतीय

इतिहास मे महत्ता का भी सही अनुमान नहीं हो सकता जिसका ज्ञान हम तब होता है जब हम उनका अध्ययन यह मानकर करते हैं कि वे प्राचीन भारत की एक प्रमुख जाति थे जिसकी महत्ता को देव जाति के उत्कर्ष को प्रतिध्वनित करने वाले साहित्य मे दबा दिया गया। लेकिन फिर उन्होने विजय प्राप्त की और आज की मन्दिर पूजा यक्षपूजा का विकसित रूप है। अरुण का यह मत कहाँ तक समीचीन है इसका निर्णय करने म पूर्व अभी और अनुसधान कर्त्तव्य है परन्तु उनके इस आग्रह को सर्वथा अस्वीकृत करने का कोई कारण नही है कि किसी समय यक्षपूजा भारतीय समाज म बहुप्रचलित थी और उसके साथ एक विशिष्ट सास्कृतिक परम्परा जुडी थी जिसका इस देश की सस्कृति के विकास म महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

जसा कि पूर्वगामी पृष्ठो म किये गये विवेचन स स्पष्ट है यक्षपूजा और उसके साथ जुडी सास्कृतिक परम्परा का अस्तित्व वदिक काल म भी था। वदिक आर्य भारत मे ऐसी अनेक जातियो, समूहो या सास्कृतिक परम्पराओ के सम्पर्क म आए जिनसे वे एक ओर उनकी भौतिक प्रगति और समृद्धि अथवा आध्यात्मिक शक्तियो के कारण प्रभावित हुए और यत्र तत्र उनकी प्रशसा— स्पष्टत या प्रच्छन्नत — करने के लिये बाध्य हुए परन्तु दूसरी ओर उनकी परम्पराओ से असहमत होने के कारण उन्होने उनकी आलोचना— यथार्थ अथवा अतिरञ्जित— भी की। मुनियो केशियो तथा एसे ही अनेक जनो क प्रति आर्यों मे यह द्वध भाव मिलता है।[1] हमारे विचार से यक्षो के साथ भी यही बात लागू होती है। आर्य अपने देवताओ को यक्षो स श्रेष्ठतर मानते थे और उनकी पूजा करना अनावश्यक समझते थे लेकिन इसके साथ ही व यक्षो के सौन्दर्य, शक्ति और सम्पदा से प्रभावित भी थे। वे उन्ह इच्छारूपधर दयालु, ऐश्वर्यवान् और महा योद्धा मानते थ। कुल मिलाकर यक्षो के प्रति उनके मन म आदरमिश्रित आश्चर्य का भाव था। इसलिये ब्राह्मण साहित्य म हर देवता को किसी न किसी प्रसग म यक्ष कह कर गौरवान्वित किया गया है। कुछ उपनिषदो म तो स्वय ब्रह्म को भी यक्ष बता दिया गया है।

लेकिन यक्ष धार्मिक सस्कृति वदिक धर्म परम्परा से अनेकश भिन्न थी। यह अन्तर विशेष रूप से इस बात म था कि वदिक आर्य अपने देवताओ को मानव रूपधारी मानते हुए भी उनकी न मूर्ति बनाते थ और न मन्दिर।[2] इसके विपरीत यक्षधर्म म इन दोनो को ही स्थान प्राप्त था। यद्यपि इसका वदिक साक्ष्य म अब सकेत मात्र ही अवशिष्ट है। अब इस बात से इकार नही किया जा सकता कि प्रतीक पूजा और मूर्ति-पूजा दोनो का श्रीगणेश यक्ष धर्म मे ही हुआ था।

---

1 गोयल एस आर ए रिलीजस हिस्ट्री आव एन्शेण्ट इण्डिया 1 पृ 93 अ

2 वही भाग ? पृ 128 अ

तिब्बती ग्रथो के अनुसार शुद्धोदन अपने शिशुपुत्र सिद्धार्थ गौतम को लेकर कपिल वस्तु के बाहर अपने कुलदेवता शाक्यवद्धन की मूर्ति के सम्मुख शीश झुकाने गये थे। जन कथाओ मे भी वन्ध्या स्त्रिया द्वारा यक्ष मूर्तिया की पूजा किय जाने का उल्लेख है। स्मरणीय है कि भारत के ऐतिहासिक युगीन प्राचीनतम मूर्तियाँ यक्ष मूर्तियाँ ही हैं। ये मूर्तियाँ आकार मे आठ से बारह फुट तक बडी हैं और इनकी प्राचीनता चौथी शती ई० पू० तक जाती है। वा० श० अग्रवाल के अनुसार इन्ही का अनुसरण करके विष्णु और बोधिसत्व की प्रतिमाओ का निर्माण हुआ था। सबसे प्राचीन यक्षमूर्ति परखम स प्राप्त हुई है। यह मणिभद्र यक्ष की है। पद्मावती मे उसकी उपासना का केन्द्र था। वह साथवाहा का रक्षक माना जाता था।

मूर्ति-पूजा का घनिष्ठ सम्बन्ध मन्दिर निर्माण से था। जसा कि सवज्ञात है कि आर्यों के अपने यज्ञ धम म देवायतना को स्थान प्राप्त नही था। परन्तु ऋग्वेद' के मन्त्र 4 3 13 मे यक्षसदन का उल्लेख है यद्यपि इसका रूप स्पष्ट नही है। बुद्ध और महावीर के समय यक्षभवन यक्षायतन या चत्य कहलाते थे। आरम्भ मे चत्य का अथ 'पवित्र वृक्ष या और वृक्षो पर वास करन वाले यक्ष रक्खदवता कहलाते थ। इसके बाद वृक्षो के नीचे चबूतरे बनाकर उस पर आयगपट्ट या पूजाशिला रख कर पूजने की परम्परा चली और तदुपरान्त निर्मित चत्य भवना का विकास हुआ यद्यपि रक्खदेवता की अवधारणा भी बनी रही। क्योकि यक्षो के चत्य भवन यात्रियो के विश्राम स्थला और वर्षावास के समय बुद्ध महावीर और उनके भिक्षुओ के निवास के उपयोग मे भी आत थे इसलिय बहुत से यक्षायतन निर्मित भवन रहे होगे। जसे भगवती सूत्र म ऐसे 18 यक्ष चत्यो का उल्लेख मिलता है जहाँ महावीर ने वर्षावास किया था। बुद्ध के द्वारा भी अनेक यक्ष चत्यो मे ठहरने की चर्चा आती है। अरुण के अनुसार कुल मिलाकर बौद्ध और जन स्रोत ऐसे शताधिक चत्यो का उल्लेख करते है (पृ० 35)। पाटिवन म स्थित सुपतिट्ठ चत्य रक्ख दवता सुपतिट्ठ का भवन बताया गया है। वज्जिया के जिस सारदन्द चत्य म बुद्ध न लिच्छवियो के लिये कल्याणकर सूत्र बताये थे उसे बुद्धघोष ने सारदन्द यक्ष का चत्य कहा है। 'सयुत्त निकाय' के अनुसार यक्ख मणिभद्द का भवन मणिमाल चत्य कहलाता था। इन तथ्या स स्पष्ट है कि यक्ष भवनो के रूप म चत्य निर्माण की परम्परा बुद्ध के आविर्भाव से बहुत पहिले विकसित हो गई थी।

जन धम म भी यक्षो का घनिष्ठ सम्बन्ध नगर योजन व वास्तुकला से माना गया है। आज भी लोककथाओ म यक्षो द्वारा रातोरात राजप्रासादो के निमाण का प्रतीक प्रचलित है। बुद्ध के कुछ शताब्दी उपरान्त पतञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य म सूचित किया है कि कुबेर (यक्षेश्वर) राम तथा केशव के मन्दिरा

के सम्मुख गायन होता था और वाद्य बजाये जाते थे। अरुण का तो यह भी सुझाव है कि वास्तुकला के कारीगरों के लिये प्रयुक्त 'राज' शब्द का मूल 'यक्ष' शब्द के पर्याय 'राज' में हो सकता है।

देवता को प्रसन्न करने की यक्ष विधि भी वैदिक आर्यों की यज्ञ विधि से भिन्न थी। यक्ष पूजा के मुख्य अंग थे पुष्प, माल्य, धूप, दीप, चंदन, गंध, नैवेद्य या प्रसाद और संगीत। धीरे धीरे यह विधि विभिन्न पौराणिक सम्प्रदायों में स्वीकृत हो गई और 'गीता' ने इसको अपना कर इसे हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग बना दिया (पत्रं पुष्पं फलं तोयम्)। इसीलिये महाभारत में कुबेर को भागवत कहा जा सका।

लेकिन यक्षों में केवल 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' वाली भागवती पूजा ही प्रचलित नहीं थी वरन् परवर्तीयुगीन वाममार्गी हिंसात्मक पूजाविधि का आदिम रूप भी प्रचलित था। इसीलिये शिव, कार्त्तिकेय आदि 'महामायूरी' की सूची में यक्ष कहे जा सके। बौद्ध और जैन कथाओं में यक्षों को मानव और पशु बलि दिये जाने की चर्चा अनेकत्र मिलती है। जैन कथाओं में आया है कि वंध्या स्त्रियाँ पुत्रवती होने के लिये यक्षों को भैंसों की बलि देती थीं। वे उनकी मूर्तियों को मयूरपिच्छ से साफ करके और स्नान करवा कर उनको पुष्प, माल्य, धूप, दीप आदि अर्पित करती थीं। यक्षों को भेड़, बकरी, सूअर आदि की बलि भी दी जाती थी। आडवक यक्ष की कथा में यक्षों द्वारा कच्चा मांस खाने और बौद्ध भिक्षुओं की हत्या करने का उल्लेख है। यक्ष पूजक जादू में विश्वास करते थे और नरबलि तथा कुक्कुट बलि देते थे। वे सुरापान के भी व्यसनी थे। यक्षिणियाँ यक्षों से अधिक क्रूर मानी जाती थीं और मानव और पशु हत्या से आनन्दित होती थीं।

बौद्ध परम्परा में यक्षपूजा का प्रायः क्रूर रूप ही चित्रित है। बौद्धों के अनुसार वेस्सवन विभिन्न यक्षों को विभिन्न प्रदेशों में नियुक्त करते हैं। वे वहाँ भूले भटके आने वाले यात्रियों और व्यापारियों को मार कर खा जाते थे। उनका वास वृक्षों, चौराहों, कुओं, वनों में या सरोवरों और झरनों के समीप बताया गया है। उनसे बचने के लिये व्यापारी और यात्री उन्हें मत्स्य, मांस, सुरा आदि की बलि देकर प्रसन्न करते थे जिससे उनकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाये। जैन ग्रंथों में भी दुष्ट यक्षों का वर्णन मिलता है। वर्धमान नगर के समीपस्थ अस्थिक ग्राम का शूलपाणि यक्ष ऐसा ही था। जैन 'बृहद्कल्पभाष्य' में भी जैन साधुओं को परेशान करने वाले यक्षों की कथायें आती हैं। यक्षपूजा का यह पक्ष शैव, शाक्त और तान्त्रिक सम्प्रदायों की अतिमार्गी उपासना का आदिम रूप अनायास माना जा सकता है। बौद्ध और जैन लेखकों ने यक्ष संस्कृति के इस रूप पर विशेष बल दिया यद्यपि वे इस बात को भी बराबर कहते हैं कि यक्षों में कुछ सुन्दर होते हैं कुछ कुरूप, कुछ दयालु होते हैं कुछ क्रूर। उदाहरणार्थ जैन

'उत्तराध्ययन' के अनुसार वाराणसी का गंडितिदुग यक्ष मातंग ऋषि के उपवन की रक्षा करता था। यक्षों के विषय में यह भी धारणा थी कि वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वालों का सम्मान करते थे और कुलटा स्त्रियों का पता लगा लेते थे। बौद्धों के अनुसार वे अपने पुण्य कर्मों के कारण सुंदर होते थे और उनके व्यक्तित्व की विचित्रता उनके पूर्वकालीन दुष्कर्मों का परिणाम होती थी।[1] वे स्वभाव से शर्मालु होते हैं और ताड़पत्र और लोहे से डरते हैं। अगर यक्ष संस्कृति कास्य-कालीन थी तो उनमें आर्यों के लौह आयुधों से डरने का संस्कार अनायास बोधगम्य है। बौद्धों ने यक्षों के हिंसात्मक पक्ष को शायद इसलिये उभाड़ा जिससे वे यह दिखा सकें कि उनका धर्म कितना प्रभावशाली है और क्रूर जनों को भी दयालु बना देता है जैसे बुद्ध ने हारीति को बना दिया था।

यक्ष संस्कृति के अन्य पक्ष बहुत स्पष्ट नहीं है। लेकिन जैसा कि अरुण ने साग्रह दिखाया है कुछ छिटपुट संकेतों से विभिन्न क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति को उनकी देन का अनुमान लगाया जा सकता है। एक, यक्ष शब्द का एक पर्याय राज है। इससे अरुण ने अनुमान किया है कि कदाचित् राजयोग या राजविद्या का अर्थ राजाओं का ज्ञान नहीं यक्षों का ज्ञान है। गीता में इस विद्या का जनक ब्रह्मा को बताये जाने से इस अनुमान का समर्थन होता है क्योंकि यक्ष शब्द का पर्याय ब्रह्म है और ब्रह्म की प्रकृति का प्रथम आविर्भाव ब्रह्मा है जैसे सागर में लहर।

यक्षों का सम्बन्ध मुण्डक, बृहदारण्यक, प्रश्न आदि उपनिषदों में उपलब्ध दर्शन और गुह्य ज्ञान लेखन की प्रश्न विधा से भी जोड़ा जा सकता है। महाभारत, जातक कथाओं तथा अन्यान्य ग्रन्थों में आता है कि किसी वृक्ष या सरोवर पर वास करने वाले यक्ष के पास से गुजरने वाले यात्रियों और व्यापारियों से यक्ष प्रश्न पूछता है और सही उत्तर न मिलने पर वह यात्री मृत्यु को प्राप्त हो जाता है या उसकी बलि दे दी जाती है। 'महाभारत' का युधिष्ठिर-यक्ष संवाद इस प्रसंग में उदाहरणीय है। बहुत सी बार प्रश्न पूछने वाले लोग होते हैं और यक्ष उत्तर देता है। वा० श० अग्रवाल के अनुसार 'महाभारत' का युधिष्ठिर यक्ष संवाद लोक साहित्य में प्रचलित भण्डार से लिया गया था। यजुर्वेद के ब्रह्मोद्य प्रकरण में होता और महर्षि के मध्य हुए संवाद में कुछ प्रश्न वही हैं जो यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है।[2] ये यक्ष प्रश्न पहेलियाँ एक साहित्यिक विधा के रूप में उपनिषदीय प्रश्न पहेलियों के भी बहुत निकट हैं और हो सकता है उपनिषदीय चिन्तकों को इस विधा का ज्ञान यक्ष संस्कृति से हुआ हो। इस प्रसंग में अरुण का यह अनुमान भी उल्लेख्य है कि स्वयं ब्रह्म की आत्मा से पहिचान की अवधारणा भी

---

1 शर्मा जे पी पूर्वोक्त पृ 47
2 अग्रवाल पूर्वोक्त पृ 140-41

मूलत यक्ष संस्कृति की देन थी (पृ० 69)।

प्रस्तुत ग्र थ म अरुणजी ने आग्रह किया है कि भारतीय संस्कृति का अन्य अनेक क्षेत्रो म भी यक्षो की महत्त्वपूर्ण देन रही है। सवप्रथम भाषा के क्षेत्र को लें। भाषाशास्त्रियो के अनुसार उत्तर भारत की आधुनिक भाषाओं की जननी संस्कृत है, प्राचीन यूरोपीय भाषाएँ संस्कृत जननी की पुत्रियाँ हैं, सुदूर दक्षिण भारत की द्रविड भाषाएँ, जो आर्यों के आने के पूव उत्तर म भी फली हुई थी और बहुत विकसित हो चुकी थी शब्द भण्डार की दृष्टि से तूरानी और सामी परिवार की भाषाओ के निकट हैं तथा भारत म उस द्रविड जाति द्वारा लाई गई थी जो कभी भूमध्यसागर के पास रहती थी। इसके विपरीत किशोरीदास बाजपेयी और रामविलास शर्मा ने सतक सिद्ध किया है कि पहिले एक मूल भाषा थी पुरानी प्राकृत जो अनेक बोलियो को अपने मे समाये हुए थी। उसे शुद्ध, सुसंस्कृत और परिमार्जित करके संस्कृत भाषा बनाई गई जो राजदरबारो म सिमट कर रह गई। मूल प्राकृत साधारण जनो म फलती फूलती रही। उसे फिर पालि मे और तत्पश्चात् साहित्यिक प्राकृत म परिष्कृत किया गया। इस बीच मे मूल प्राकृत कुछ परिवतनो के साथ चलती रही। उसी से अपभ्रंश और आज की द्रविड आदि भाषाए निकली। इस भाषात्मक इतिहास की रूपरेखा की पृष्ठभूमि म अरुण न यह रोचक सुझाव रखा है कि यह मूल प्राकृत यक्षा की भाषा थी और यह अवधी खडी बोली और ब्रजभाषा के प्रदेश से होती हुई दक्षिण गई थी। उन्होने अनेक उदाहरण देकर दिखाया है कि संस्कृत के श दो स मूल प्राकृत अर्थात् यक्ष भाषा के श द और उससे मिलने जुलते द्रविड शब्द प्राचीनतर है। अरुण के अनुसार मध्यकाल म जो प्राकृत पालि, अपभ्रंश भाषा प्रचलित हुई वे संस्कृत का बिगडा रूप नही थी। वे एक नसर्गिक भाषा प्राकृत का रूप थी जो वदिक भाषा स भी पूव विद्यमान थी। उसी मौलिक प्राकृत से पाच तरह की प्राकृत अपभ्रंश पालि आदि निकली। उसी ने द्रविड भाषाओ को उनका वतमान रूप दिया। उसी लोकभाषा का संस्कार किया हुआ रूप संस्कृत कहलाया जो साहित्यिक भाषा रही किन्तु प्राकृतिक नसर्गिक नही। संस्कृत साहित्य की भाषा रही, उच्च वग की भाषा रही, राजदरबार की भाषा रही क्या उत्तर म क्या दक्षिण म लेकिन वह लोकभाषा नही रही। लोकभाषा पुरानी प्राकृत या उसकी अनेक बेटियाँ ही रही। ब्राह्मणो न उसे सौतेला व्यवहार दिया किन्तु बुद्ध महावीर की क्रान्ति ने इस जनभाषा को भी साहित्यिक भाषा बना दिया और इसी स आज की सारी भारतीय भाषाएँ निकली संस्कृत से नही। (पृ० 119)।

अपनी उपर्युक्त धारणा के प्रकाश म ही अरुण ने हिन्दी और हिन्दु शब्दो की व्युत्पत्ति पर भी एक सवथा नवीन सुझाव रखा है। उनके अनुसार यह तक

बिल्कुल गलत है कि क्योंकि ईरानियों को 'स' बोलने में कठिनाई होती थी इस लिये वे 'स' को 'ह' बोलते थे और तदनुसार 'सिंधु' को 'हिन्दु' उच्चारित करते थे जिससे 'हिन्दू' और 'हिन्दी' शब्द बने। उन्होंने ध्यान दिलाया है कि फारसी में सैकड़ों शब्द 'स' से शुरू होने वाले हैं जैसे सादगी 'सामान', 'सब्जी', 'सिपाही' 'सरदार', सुरमा' आदि। इसके अतिरिक्त अनेक धातुएँ भी 'स' से शुरू होती हैं। फारसी में अरबी से भी ऐसे सैकड़ों शब्द आए जो 'स' से प्रारम्भ होते हैं यथा 'सराय' 'सफर', 'सिफर' 'साहिब' आदि। दूसरी तरफ भारत की अनेक भाषाओं में 'स' की जगह 'ह' का प्रयोग आता है। कश्मीरी में 'शाक' का 'हाक', 'श्वसुर' का 'हिहुर', 'साकल' का 'हाकल' हो गया है राजस्थान में 'सवा' को 'हवा' कहते हैं। ऐसी ही प्रवृत्ति बंगला, असमिया सिंधी लहंदी तथा मराठी की कुछ बोलियों में परिलक्षित है। स्वयं हिन्दी में भी यह अज्ञात नहीं है। 'दस दहम् सौ। ताश के पत्तों में दहला। गिनती में छह षष् की जगह आया है। ग्यारह से अट्ठारह तक ह का प्रवेश है। इकहत्तर से आगे सत्तर की जगह हत्तर हो गया। ब्रजभाषा और अवधी में स्नान का हनान या नहान, पाषाण का पाहन, पुष्प का पुहुप, कृष्ण का कान्ह केसरी का केहरी। (पृ० 124)। यह प्रवृत्ति संस्कृत में भी दिखाई देती है। 'अस्मद्' से 'अहम्' बना है। अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि 'हिन्दी', 'हिन्द' और 'हिन्दू' शब्दों का निर्माण भारत में ही हुआ था।

प्राकृत भाषा की तरह ब्राह्मी लिपि को भी अरुण जी यक्षों की देन मानते हैं। उनका मत है कि ब्राह्मी लिपि का विकास यक्षों ने किया था। यक्ष जाति का मूल जनजाति नाम ब्रह्मा था जिसका संस्कृतिकरण ब्रह्मा हुआ। हमारे साहित्य और शिल्प आदि में ज्ञान का मूल ब्रह्मा को बताया गया है। लिपि के विषय में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। क्योंकि लिपि का प्रचलन व्यापार से सम्बंधित है और यक्ष व्यापारी थे। जब उन्हें हिसाब रखने के लिये लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उन्होंने ब्राह्मी लिपि बनाई। यह सर्वप्रथम अशोकीय ब्राह्मी के रूप में दिखाई देती है परन्तु भारतीय परम्पराएँ इसे एक मत से ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत बताती हैं। नारद स्मृति, मनु पर बृहस्पति के वार्तिक, ह्युआन च्वांग के यात्रा वर्णन, जैन 'समवायांग सुत्त' तथा पण्णवनासुत्त आदि में ब्रह्मा को ब्राह्मी का आविष्कर्ता माना गया है। बादामी की एक मूर्ति में ब्रह्मा को ताड़-पत्रों का ग्रन्थ लिए दिखाया गया है तथा चीनी महाकोश फान-यान शू लिन में लिखा है कि लिपि का आविष्कार सर्वप्रथम फन या ब्रह्मा ने किया था। 'महाभारत' में कहा गया है कि व्यास द्वारा रचित 'जय' को गणेश ने लिपिबद्ध किया था। इसका तात्पर्य है कि व्यास ने इसके लिये यक्ष लिपिकारों की सहायता ली थी।

भारत में प्रजाति और जाति

भारत एशिया महाद्वीप का दक्षिण में निकला हुआ भाग है, जैसा यूरोप एशिया महाद्वीप का पश्चिम में निकला हुआ भाग है और दोनों का क्षेत्रफल भी समान है। महाद्वीप की परिभाषा है वह विशाल भूभाग जिसके चारों ओर सागर हो। इस परिभाषा से यूरोप अलग महाद्वीप की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। अपने को अधिक सभ्य समझने के घमण्ड में यूरोप के विद्वानों ने पहले एशिया महाद्वीप का नाम बदलकर यूरेशिया कर दिया। फिर सभ्यता के कुछ वर्षों बाद वह दो महाद्वीपों में बँट गया यूरोप और एशिया— महाद्वीप की परिभाषा को झुठलाना हुआ।

एशिया को आरम्भ से ही एक मानकर पुराणों आदि में वर्णित हमारे भूगोल में स्थान मिला है। उसमें चीन पूर्व, यूरोप पश्चिम, साइबेरिया उत्तर और भारत दक्षिण में दिखलाया गया है। यहाँ सिद्ध करने के लिए एशिया का प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास भी साक्षी है। जहाँ मध्य एशिया की जातियों ने दक्षिण में उत्तर भारत तक धावा बोला है वहाँ वे यूरोप में भी घुसे चले गये हैं। आरम्भ में असुरों, सुरों, दानवों ने और ऐतिहासिक युग में शकों, हूणों और मंगोलों ने तथा उनके बाद तुर्कों ने यूरोप को एशिया का पश्चिमी भाग मानकर अपना साम्राज्य फैलाया। हूणों ने हंगरी और बुल्गारिया देश बसाए।

सबसे प्राचीन मानव

संसार के सबसे प्राचीन मानव को इस शताब्दी के आरम्भ में रावलपिण्डी के पास साअन नदी के काँठे में पाया गया— कुछ हड्डियाँ और प्रयोग में लाए जाने वाले पत्थर के हथियार। इसका नाम वैज्ञानिकों ने रामपिथेकस रखा जो आज से लगभग १ करोड़ ८० लाख वर्ष पहले रहता था।

स्वतन्त्रता के कुछ वर्ष बाद विदेशी पुरातत्त्वविदों की टोली ने अम्बाला जिले में शिवालिक पहाड़ों में मारकण्डा नदी की घाटी में इससे भी पुराने मानव-अवशेष ढूँढ निकाले जिनको शिवपिथेकस का नाम दिया गया।

हँसी की बात है कि ये प्रमाण पाने के बाद भी प्राचीन भारतीय सभ्यता की हर कड़ी को बाहर से आया बताया जाता है। शिवपिथेकस और रामपिथेकस के वंशज कहाँ खो गये जो बाहर से जातियों ने आकर भारत के इस शून्य को भरा।

जब यहाँ यूरोपियन आय तत्र उन्होंने पाया कि भारत की सभ्यता इतनी पुरानी है। यह बात उनके गले से नहीं उतरी और उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारत के आदिवासी द्रविड थे जो बिल्कुल जंगली थे। उन्होंने बाहर से (उत्तरी जर्मनी / हंगरी / लिथुआनिया / दक्षिणी रूस / या मध्य एशिया के मैदानों से) आकर आर्यों ने सभ्यता सिखाई। यह बात उन्होंने बड़ी और तुलनात्मक भाषा शास्त्र के आधार पर समझाई।

इस स्वयं प्रतिपादित तथ्य को बात को बाद में गलत बताया। एक प्रमुख विद्वान नेसफील्ड का कहना था भारत में जो लोग रहते हैं उनमें ऐसा कोई भेद नहीं पाया जाता कि आर्य लोग विजेता हैं और वर्ण के आदिवासी काले जाति वाले लोग विजित हों। यहाँ ब्राह्मण लोग अधिकतर श्याम रंग के दिखाई देते हैं व काले या गोरे रंग के नहीं है और न उनके शरीर की हड्डियों की बनावट भिन्न है।

आर्य जाति के सिद्धान्त के विरुद्ध स्वयं मैक्समूलर को सन् १८८८ ई० में यह लिखना पड़ा कि मैं बार-बार इस बात को स्पष्ट कर चुका हूँ कि जब मैं आर्य शब्द का प्रयोग करता हूँ तो मेरा मतलब न रुधिर से होता है न हड्डियों से न सिर की बनावट से और न बालों से। मेरा आर्य शब्द से अर्थ केवल आर्य भाषा बोलने वालों से है। मेरी दृष्टि में शरीर विज्ञान शास्त्री जो आर्य जाति, आर्य रुधिर आर्य नेत्र और आर्य केशों की बात करते हैं वे उतने ही बड़े पापी हैं जैसे भाषा विज्ञान वाले जो शब्द कोष व व्याकरण की रचना की बात करते हैं।

मजे की बात यह हुई कि इस शताब्दी में इस तथ्य की खोज हुई कि तथाकथित आर्य (देव) घुमक्कड़ और चरवाहे थे जैसे आज के कश्मीर के बकरवाल हैं या पुराने अन्य आक्रमणकारी शक कुषाण आभीर हूण आदि थे जो सब उसी प्रजाति के थे। भारतीय संस्कृति की ८० प्रतिशत देन तथाकथित द्रविड जाति की थी। इसी हिसाब से पश्चिमी इतिहासकारों ने अपनी बाँसुरी पर नए स्वर निकाले— द्रविड भी बाहर से आए थे शायद भूमध्य सागर से। उनसे पहले कोल भील आदि रहते थे जो आज भी भारत में जगह जगह असभ्य जीवन बिता रहे हैं।

परन्तु आर्य और द्रविड कोई प्रजाति या जनजाति हमारे यहाँ नहीं पाई जाती जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे। पूरे भारत में विभिन्न जनजातियाँ (कबील) रहती थीं (आज भी भारत में सैकड़ों कबीले पाए जाते हैं) और उनकी आपस की टकराहट मेल मिलाप से संस्कृति आरम्भ हुई और समृद्ध होती चली गई। जैसे दो पत्थरों के टकराने से अग्नि पैदा होती है उसी प्रकार विभिन्न जनजातियों के टकराने से ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हुई। महान् इतिहासकार टायनबी का कथन भारत पर अक्षरशः लागू होता है— 'यह तो भारतीयों का बड़प्पन था कि उन्होंने जनवध (Genocide) जैसे पाप नहीं किए बल्कि कबीले एक दूसरे में

मिलते रहे एक दूसरे की अच्छी बातें अपनाते रहे और सुसंस्कृत होते गए।

प्रजाति

यूरोपीय नृतत्त्व विज्ञान और भाषातत्त्व विज्ञान ने मानव को पांच जातियों में बांटा है— (i) नीग्रायड (Negroid) (ii) आस्ट्रिक या आस्ट्रो एशियाटिक (Austric or Austro Asiatic) (iii) द्राविडियन (Dravidian) (iv) सीनो टिबटन या चीनी भोट (Sino Tibetan) अथवा इण्डो मंगोलायड (Indo Mongoloid) और (v) आर्यन (Aryan) या इण्डो यूरोपियन (Indo European)। इन्हें भारतीय इतिहासकारों ने हब्शी निषाद द्रविड किरात और आर्य नाम दिया है।

कहा जाता है कि सबसे पहले हब्शी जाति के लोग अफ्रीका से सम्भवत दक्षिण अरब दक्षिण ईरान बलोचिस्तान दक्षिण सिन्धु प्रदेश से होते हुए भारतवर्ष में आए। ये अब भी दक्षिण भारत अण्डमान में कई कबीलों के रूप में पाए जाते हैं।

इसके बाद में निषाद प्रजाति के मनुष्य आए। यह प्रजाति दक्षिणी चीन और उत्तरी हिन्द चीन में रहते थे जहां से वे असम की राह से भारत में आए।

तीसरी द्रविड प्रजाति है जो पश्चिम से भारत में आई थी। यह भूमध्य सागर के निकट रहने वाली थी जिसमें भारत आते समय अर्मेनियन सदृश दूसरी विशिष्ट जाति का मिश्रण हुआ था।

किरात प्रजाति पश्चिमी चीन में यांग सी-क्यांग नदी के उद्गम स्थान की मूल निवासी थी। इसकी दो शाखाएँ दक्षिण में गई। एक दल था थाई जिन्होंने हिन्द चीन बसाया। दूसरी वाली ब्रह्मा या भोट-ब्रह्म जिसमें भोट ब्रह्मावासी थे मिलाकर सब किरात जनजाति आ जाती है।

पाँचवा आर्य प्रजाति का सिद्धान्त सब विख्यात है। अपना उद्गम इससे मानकर यूरोपीयों ने इसे आसमान पर चढ़ा लिया है। अनेक जगह इसका आदि निवास-स्थान बताया गया है जहां से ये उत्तर पश्चिम से हिमालय को पार करके भारत में आए थे।

इसका अर्थ यह हुआ कि उपयुक्त जलवायु, मिट्टी जल आदि के होते हुए भी भारत में मानव के नाम पर शून्य था। रामापिथेकस और शिवपिथेकस की कड़ी लुप्त हो गई थी। जितनी भी जनजातियां यहाँ थी वे सब बाहर से आई थीं। प्रत्यक्षत यह सिद्धान्त बिल्कुल नहीं जमता।

आखिर भारत में बाहर से आई विभिन्न प्रजातियाँ दिखाने का लाभ क्या है? एक पिता की दो सन्तानें एकसी नहीं होतीं तो एक प्रजाति में विशेष गुण कम देख जा सकते हैं। प्रजाति और राष्ट्रीयता के नाम पर कम खून बहे है यह

हम अच्छी तरह जानते है। भारनाय मस्कृति म इसका बिलकुल उलटा है। यह बात नहीं कि यहा पर जनजातिया म युद्ध न हुए हा।

विख्यात पृथिवीसूक्त के ऋषि के अनुसार यह हमारी मातृभूमि अनेक प्रकार के जन का धारण करती है। यह जन अनेक प्रकार की भाषाए बोलने वाल हैं और नाना धर्मों का मानने वाल है।

जन बिभ्रति बहुधा विवाचस नाना धर्माण पृथिवी यथौकसम्।

(अथर्ववेद १२ | १ | ४५)

इस विभिन्नता स भारत की जनता कभी आक्रान्त नहा हुई बल्कि इसमे भारतीय जावन और सस्कृति म सम्पन्नता आई समृद्धि आई। जनवध (Genocide) के स्थान पर हमने भाइचारे को अपनाया।

जनजाति

जनजाति कबीला tribe यह हर देश का एक सवसिद्ध तथ्य है और भारत इमसे अछूता नहीं है। भारत का प्राचीन साहित्य (जा सवसम्मति स विश्व का प्राचीनतम साहित्य है) इन जनजातिया के वणन स भरा पडा है। और आज भी भारत म सकडा जनजातिया मौजूद है। भारत म प्रसिद्ध है कि अढाई काम चलने पर बानी बदल जाती है। इन्हा जनजातिया द्वारा भारतीय सस्कृति अगीकार करन पर आज भारत म ३००० स अधिक जातिया (castes) हैं जिन्ह किसी भी प्रकार चार वर्णों म वर्गीकृत नहा किया जा सकता है।

जनजातिया (आग स इन्ह जातिया लिखग tribes कबील के रूप म castes के रूप म नहा) बनन के कई कारण है। किसी का कोई वृक्ष पशु या प्राकृतिक साधन उपासना की वस्तु बन जाता है और जाति उसका नाम धारण कर लती है। इसे टाटम (totem) कहत है। काई जाति पीपल के पास रहती है उसकी तना चलाता है उसके पत्ते काम म लाती है अर्थात् उसी पर निर्भर हो जाती है तो वह जाति पीपल का नाम धारण कर लेती है।

काई जाति नाग स भय खाती है उसके काट स अपना जन मरते देखती है। वह उसकी पूजा करन लगती है। नाग क नाम स प्रसिद्ध हा जाती है। कोई वायु का प्रकोप देखती ह तो वायु का पूजन लगती है।

इस प्रकार भय आवश्यकता निरीक्षण आदि मानव मनोवेगा से जातिया का जन्म होता है।

एक टोटम या गणचिह्न दूसर गणचिह्न का विरोधी होता है तो उनके मानने वाल गण भी आपस म लडत ह। जस नाग गरुड मूषक बिडाल हाथी मगर आदि। पर यह हमारा मस्कृति का बडप्पन है कि शीघ्र ही पुरा इतिहास काल म ही इन टाटमा म समन्वय हो गया। विष्णु की पूजा न नाग और गरुड को मिला लिया। शिव की उपासना म सप मूषक और मयूर सब मिल गए।

हमार प्राचीन इतिहास म सकडा जनजातिया का वणन ह जिनम प्रमुख है— नाग गरुड, सुपण श्यन, देव असुर दत्य, दानव, यक्ष गधव, किन्नर, किंपुरुष राक्षस ऋक्ष वानर निषाद, आदि। नाग मुख्य जाति के अन्दर भी पचासियो उप जातिया के नाम ह। यही हाल अन्य जातियों के साथ है। सस्कृति के सुदूर प्रभात म इनमे खूब युद्ध हुए किन्तु धय हो हमार मुनि-तपस्वी ऋषियो का जिन्होन इन सबकी मान्यताएँ एक करके एक मानव जाति खडी कर दी।

नाग जाति सबसे पहले प्रसिद्ध हुई थी क्योकि यह जल के किनार रहती थी। जब देव घुमक्कड पामीर (पायमेरु—सुमेरु) के पठार स उतरे तो सबसे पहल उनका सम्बन्ध नागो और गरुडो से पडा था। नीलमत पुराण के अनुसार प्राचीन काल मे कश्मीर म ५०० स अधिक नाग जातिया रहती थी।

यक्ष जाति भी बडी प्राचीन जाति थी जो हिमालय म अन्य किरात वशी जातियो गन्धव किन्नर वानर ऋक्ष आदि के साथ रहती थी। यक्ष जाति की विशषता यह थी कि यह सबस पहले सभ्य हुई थी। जब अन्य जातिया शिकारी या आहार सग्रहकर्ता की स्थिति म था उस समय यह जाति सस्कृति की प्रथम पदान पर पहुँच चुकी थी। वृक्ष क विभिन्न उपयोग इसने जान लिये थ। कुबेर पहला व्यक्ति था जिसन स्वण और उसका उपयोग ढूढ निकाला था। य बडे धनी थ बडे व्यापारी थे, वृक्षो और वत्यो की पूजा करते थ।

माना जाता है कि चीन म सवप्रथम मानव दक्षिणी चीन म रहता था जिसका स्रोत भारतीय था।[1] य किरात (यक्ष) ही थ।

यक्ष जाति का हमार दिन प्रतिदिन जीवन पर प्रभाव तथा हमारे धम को देन यथास्थान वर्णित है।

आवागमन

इन जनजातियो के आवागमन के तथ्य स इन्कार नही किया जा सकता। आरम्भिक अवस्था म ये सब यायावर थी और भोजन की तथा अपने पशुओ के चरागाह की तलाश म इधर उधर घूमती रहती थी। उस समय उनके मस्तिष्क म अपने देश की सकल्पना भी नही थी। कुछ जनजातियो का सौभाग्य था कि व नदी और पहाड की उपजाऊ भूमि पर पहल जा पहुची और वहा पेट भरने के प्रचुर साधन पाकर वहा स्थिर हो गई। इस आदिम भूख से समय मिलन पर उन्होने इधर उधर का सोचना आरम्भ कर दिया और सस्कृति का आरम्भ हो गया।

पर यह आवागमन रुका नही न तब और न आज तक यह रुका है। जनसख्या बढन पर, और भूमि की भूख के कारण, व्यापार के कारण यह लगातार चलता रहा। जनजातियो का टकराव होना रहा, मिश्रण होना रहा और सस्कृति बढती

1 मेकगा मिथ्स आफ चाइना एण्ड जापान पृष्ठ 22

रही।

पामीर के दक्षिण में असुर और देव जनजातियां रहती थीं। भारत के मैदानी भाग और कश्मीर में नाग निषाद आदि जनजातियां फैली थीं। हिमालय की तीनों श्रेणियों में किरात जनजातियां बसी थीं। असुर फारस और पश्चिमी भारत में अपने पश्चगामी आभीर, शक जत कुषाण, सफेद हूण (हूणगण) की तरह उतर आए थे और बस गए थे। जनसंख्या वर्द्धन के कारण देव जनजाति का एक भाग स्वायम्भुव मनु के नेतृत्व में हिमालय के सहारे उतरता उतरता हरियाणा में आ बसा था।

भारत में प्रचुर भूमि थी प्रचुर भोजन के साधन थे। वनों से भूमि पटी पड़ी थी असंख्य पशु पक्षी थे। अपने जैसे दो पैरों के प्राणी से कोई डर नहीं था, न लड़ाई का कारण था। और तभी ३१०२ ई० पूर्व का भयंकर प्रलय आई। मैदानी भाग में जलप्लावन हो गया। समस्त जनजातियों ने हिमालय में शरण ली। वहां यक्ष गन्धर्व आदि किरात जनजातियां पहले रहती थीं। मैदानी और पर्वती जनजातियां एक दूसरे के घनिष्ठ सम्बन्ध में आई। उनका सौभाग्य था कि उन्हें सातवें मनु वैवस्वत मनु जैसा महान् नेता मिल गया। वह जीनियस था अद्भुत बलशाली था अनुपम प्रतिभावान् था। उसने सब जनजातियों की संस्कृति को आत्मसात् किया नई मानव जाति मानव सभ्यता दी। वही धीरे धीरे विकास करके आज की भारतीय संस्कृति और सभ्यता बन गई।

इसमें आर्य और द्रविड प्रजाति का कोई सवाल नहीं उठता। चाहे कोई प्रजाति हो उनकी जनजातियां में संस्कृति और सभ्यता भारत भूमि पर ही उत्पन्न हुई और फली। भारत भूमि मुगलों क्या अंग्रेजों के जमाने तक अफगानिस्तान से श्रीलंका तक फैली हुई थी।



प्राचीन तिथिक्रम

यक्ष जाति का वर्णन करने से पहले भारतीय इतिहास का अनुमानित तिथिक्रम समझना आवश्यक है। इससे हमारा विषय आसानी से प्रत्यक्ष होता चला जायगा।

यूरोपीय इतिहासकारों के अनुसार भारत की पहली ज्ञात तिथि सिकन्दर के भारत आक्रमण की है। उससे पहले सब गपोड़शंखी है। फिर बाद में कुछ अनुवात दूरी (leeway) देने के उपरान्त यह समय बुद्ध की जन्मतिथि तक खिंच गया।

पुराणों, वेद और महाकाव्यों में जो घटनाएँ वर्णित हैं, जो व्यक्ति दर्शित हैं, वे सब काल्पनिक हैं, मिथ हैं। उनका भारत के इतिहास में कोई स्थान नहीं है। धर्म की विशेषता दिखाने के लिये उन्हें घड़ लिया गया है। यह आज हर पढ़े लिखे का मन्तव्य बन गया है क्योंकि हमें शिक्षा इसी प्रकार दी जाती है।

लेकिन यह वास्तविकता से कोसों दूर है।[1] अपने प्राचीन साहित्य के आधार पर हम भारत के प्राचीनतम इतिहास का तर्कोचित कालक्रम बना सकते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण

आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार भारतीय कालक्रम का आधार सिकन्दर का भारत पर आक्रमण और सण्ड्राकोटस का चन्द्रगुप्त से मिलान है। इस आधार पर महापद्मनन्द, जिन्होंने नन्द वंश का आरम्भ किया की राज्यारोहण तिथि ३८२ ईसा पूर्व आती है। पुराण के अनुसार महाभारत का युद्ध नन्द के राज्यारोहण से १०१५ या १०५० वर्ष पूर्व हुआ था। सो भारत युद्ध की तिथि लगभग १४०० ईसा पूर्व आती है।[2] काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार भी कृष्ण का समय १४०० ईसा पूर्व था।[3]

उपनिषदों और ब्राह्मणों में वर्णित वंश सूची

उपनिषदों और ब्राह्मणों में सुरक्षित गुरु शिष्य-परम्परा के वंशों के अनुसार डा० अल्टेकर ने भी महाभारत युद्ध की यही तिथि ठहराई है। शतपथ ब्राह्मण, शांखायन आरण्यक, बृहदारण्यक उपनिषद् और जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में पाए जाने वाले वंशों में जनमेजय के पुरोहित से लेकर इन ग्रन्थों के रचयिताओं

---

1 देखिये अरुण : भारतीय पुरा इतिहास कोश और ऐतिहासिक भ्रान्तियों का कोश
2 पार्जिटर : द डायनस्टीज़ ऑफ द कलि एज पृष्ठ 58 तथा 74
3 इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली १ : १९२९ पृष्ठ 268

के समय तक २० पीढ़ियाँ बीती हैं। प्रत्येक गुरु की पीढ़ी का आसत ४० वर्ष (ऋषि होने के कारण) और इन ग्रन्थों की रचना का अनुमानित अन्तिम समय ५५० ईसा पूर्व से अर्थात् ४० × २० + ५५० = १३५० ई० पूर्व, जनमेजय का समय निकल आता है जो अर्जुन का पड़पोता था।[1]

पुराणों में वैवस्वत मनु या प्रलय का समय

पुराणों में वैवस्वत मनु से भारत युद्ध के नायकों तक ९५ पीढ़ी के नाम दिये हुए हैं। विश्व भर में एक पीढ़ी का समय १८ वर्ष औसत और माना जाता है। ९५ × १८ + १४०० = ३११० ईसा पूर्व की तिथि वैवस्वत मनु के लिए प्राप्त होती है।

आर्यभट द्वारा प्रतिपादित ज्योतिष परम्परा के अनुसार ३१०२ ईसा पूर्व कलियुग का आरम्भ माना गया है। सातवीं शताब्दी के पुलिकेशिन द्वितीय के एहोल अभिलेख में ३१०२ ईसा पूर्व को महाभारत युद्ध का काल बताया जिसके बाद कलियुग आया। ८००० वर्ष के अन्तराल ने यह भुला दिया कि ३१०२ ईसा पूर्व में क्या हुआ था लेकिन यह निश्चित है कि उस वर्ष कोई महत्त्वपूर्ण घटना घटी थी। बहुत सम्भव है कि उस वर्ष शतपथ ब्राह्मण में वर्णित प्रलय आई थी। प्रलय का नायक वैवस्वत मनु था और इस प्रकार दोनों उल्लेखों के मिलान से ३१०२ ईसा पूर्व प्रलय की तारीख पता चल जाती है।

बेबीलोनिया के रिकार्ड

यह प्रलय विश्व व्यापक थी और इस प्रलय का संसार की समस्त प्राचीन सभ्यताओं में वर्णन पाया जाता है। बेबीलोनिया में आई प्रलय का समय भी लगभग ३१०० ईसा पूर्व वहाँ पाए गए कीलाकृत लेखों में मिलता है।

आइने अकबरी

आइने अकबरी में अबुल फज़ल संवत् १६५२ में लिखता है कि नगर बल्ख (बाह्लीक) का ग्रन्थकार अबू मशर जलप्लावन की जो तिथि लिखता है उसके अनुसार जल प्लावन को ४६९६ वर्ष हो गए हैं। ४६९६ − १६५२ = ३०४४ विक्रमी संवत् पूर्व + ५७ = ३१०१ ईसा पूर्व।

मलाबार का कोल्लम आण्डु

मलाबार में कोल्लम आण्डु या परशुराम काल प्रचलित है। कोल्लम का अर्थ पश्चिमी और आण्डु का अर्थ काल है। इसका आरम्भ परशुराम के केरल आने पर हुआ था। इसमें १००० वर्ष के चक्र हैं। शक संवत् ७८७ में चतुर्थ

---

1. गुरु शिष्य की वंश सूची जो शतपथ ब्राह्मण सांख्यायन आरण्यक और बृहदारण्यक उपनिषद् में दी गई है का सूक्ष्म अध्ययन करके डा० अल्टेकर ने महाभारत युद्ध का समय लगभग आता है। — डा० पुसल्कर एपिक्स् एण्ड पुराणस् पृष्ठ 47-49

चक्र का प्रथम कोल्लम वर्ष था। इसका आरंभ अर्थात् परशुराम या उनके वंशज का केरल में आगमन ३००० — ७४७ = २२५६ शक पूर्व हुआ। तथा प्रलय के ३१०२ ईसा पूर्व की तिथि मानने से परशुराम का समय पुराण-वंशानुक्रम के अनुसार लगभग २८६० ईसा पूर्व आता है। (i) परशुराम अत्यन्त दीर्घजीवी थे। (ii) उनका समय मैंने और मोय हर पीढ़ी की औसत १८ वर्ष से लगाया है जो कमती बढ़ती हो सकता है और (iii) साढ़े चार हज़ार वर्ष के अन्तराल में १८०–२०० वर्ष का अन्तर अर्थ नहीं रखता।

'सुमतितन्त्र' का प्रमाण

नेपाल के राजगुरु प० हेमराज शर्मा के पास एक ग्रन्थ सुमतितन्त्र है। यह ग्रन्थ सन् ५७६ के आस पास लिखा गया था। उसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूज़ियम में भी है।[1] उसमें लिखन की तारीख वर्णित है— युधिष्ठिर राज्याब्द २००० नन्द राज्याब्द ८००, चन्द्रगुप्त राज्याब्द १३२ शूद्रकन्य राज्याब्द २४७ वर्ष, शक राज्याब्द ४९८। शक संवत् सन् ७८ से आरम्भ हुआ तो ग्रन्थ लिखा गया ७८ + ४९८ = ५७६ ई० इस हिसाब से युधिष्ठिर का राज्यारोहण २००० — ५७६ = १४२४ ईसा पूर्व हुआ।

वेद वेदांगों का समय

यदि हम वेद वेदांगों पर विचार करें तो भी यह कालक्रम कसौटी पर खरा उतरता है। इसके लिये हम नीचे से चलें।

बुद्ध और महावीर छठी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं। बौद्धों और जैनों ने उपनिषदों और वेदांगों का निर्देश किया है इससे पता चलता है कि उनसे पहले वे लिखे जा चुके थे। उपनिषदों को लगभग आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में रखा जाता है। उसी समय यास्क ने वेदों के अर्थ जानने के लिए प्राचीन निघण्टुओं के आधार पर अपना निरुक्त और निघण्टु रचा। उसके समय में ही वेद मन्त्रों का अर्थ कठिन हो गया था (समय बीतने के कारण) यहां तक कि जैसा यास्क ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है कि उसमें पहले के एक निघण्टुकार ने यह लिख मारा कि वेद निरर्थक है।

उपनिषदों से कुछ पहले आरण्यक और कल्पसूत्र आदि लिखे गए थे। उनसे पहले ब्राह्मण लिखे गए थे और ब्राह्मणों से पहले वेद एकत्रित किए गए थे। हरेक में १००–२०० वर्षों का समय देकर हम १६५० ई० पू० के पास पहुँच जाते हैं जो पुराण के अनुसार महर्षि वेदव्यास का समय है।[2]

---

1 नेपाल का कालक्रम बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी का जर्नल भाग 22 अंक 3 पृष्ठ 191–95

2 डा० भगवत शरण उपाध्याय प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ 36–45

अठारहवा सदी का प्रमाण

सर विलियम जोन्स के गुरु प० राधाकान्त शर्मन ने एक पुस्तक 'पुराण अथ प्रकाश' भागवत पुराण के आधार पर लिखा थी। इसमें भागवत मित्र' जो किसी गोस्वामी का रचित था का एक श्लोक दिया है कि भगवान बुद्ध के प्रगट होने से १००२ वर्ष पूर्व कलियुग लगा था।

मय सभ्यता का कलण्डर

कलण्डर रखने का सबसे पहला सामान्य अमरीका का वनासियो मय सभ्यता का है। उनकी लम्बी गिनती का कलण्डर एक शून्य तारीख से आरम्भ होता है जो गणना करने पर ३११३ ईसा पूर्व की तारीख पर पहुचती है।

ज्योतिष का दूसरा मत

ज्योतिष के हिसाब से दो मत भारतीय कालक्रम के विषय में प्रचलित हैं। एक तो प्राचीन परम्परात्मक मत ३१०२ ई पू से कलियुग का आरम्भ हुआ का समर्थक है। दूसरा मत कलियुग का आरम्भ चौदहवी शताब्दी ईसा पूर्व में होने का समर्थक है। इस मत के कुछ प्रमुख विद्वानों के नाम हैं— श्री एस बी राय १४८६ ई पू जी एस डी शर्मा ११६७ ई पू श्री कालब्रुक १३२६ ई पू डा आर पी पोद्दार १४२७ ई पू आदि।

लोहे *का मिलना*

रायचौधरी के एम मुशी प्रभृति इतिहासकार महाभारत युद्ध को आठवी सदी ई पू म मानते हैं क्योंकि इसमें लोहे के अस्त्रों का वर्णन है और लोहे का प्रयोग भारत में १००० ई पू के पास होना खुदाई में मिला था। किन्तु अब अतरजीखेड़ा भगवानपुर आदि अनेक स्थानों में खुदाई में लोहे के मिलने से यह समय १४०० ई पू से पहले चला गया है।

डायनोसियस का प्रमाण

यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त मौर्य को डायनासियस का १५३वा पीढ़ी में बताया है। मेगास्थनीज द्वारा वर्णित प्राचीन भारत पृष्ठ ११५ पर यह उद्धरण है— उस (बक्स) से सिकन्दर महान तक ६ ४५१ वर्ष ३ मास गिनाये जाते हैं। इस बीच में १५३ राजाओं ने राज्य किया। यह महामहोपाध्याय काणे ने हिन्दू धर्मशास्त्र भा ३, पृ ९०१ पर उद्धृत किया है। प्लिनी ने १५४ राजा बताये हैं। मक्रिंडल द्वारा अनूदित दूसरी शती ईसवी की एरियन की इण्डिका पृ २०३ *म उद्धरण है— डायानिसयस से सण्ड्राकोटस तक भारतीय १५३ राजा गिनते हैं।* डायनासियस किसी इन्द्र का नाम था जिसे बक्स भी था। इन्द्र का स्वर्ण युग प्रलय से पहले था। प्रलय ने उनकी शक्ति तोड़ दी थी और मिली जुली मानव संस्कृति बनी थी। एक पीढ़ी का औसत २० वर्ष लगाकर १५३ × २० + ३२२

ई पू चन्द्रगुप्त की राज्यारोहण की तारीख मिलाकर डायनासियस इन्द्र का समय लगभग ३३८३ ई पू (सौ दो सौ वर्ष इधर उधर) है।

प्राचीन कालक्रम

इस प्रकार हमारे पुरा इतिहास का कालक्रम ठीक बैठ जाता है। ससार की सबसे पुरानी तीन सभ्यता है— भारतीय, मिस्री और मसोपोटामियन। इनमे से दो मे प्रलय की तारीख ३१०२ ईसा पूर्व है। जल ऊपर चढ़ता है सारा समतल जल मे निमग्न हो जाता है। वैवस्वत मनु अपने साथियो के साथ पर्वतो मे यक्ष नगरी मे शरण पाता है। यही भारतीय इतिहास का सक्रान्ति स्थान है। अनेक सस्कृतियाॅ के जन एक जगह शरण लेते हैं। और एक नई सस्कृति जन्म लेती है— सबकी अच्छाइयाँ लेकर विशेषकर यक्ष सस्कृति से प्रभावित— जो मनु के कारण मानव सस्कृति नाम से प्रसिद्ध होती है।

इस आधार पर हमारे इतिहास के हर चक्रवर्ती और सार्वभौम राजा का समय सरलता से लगभग निश्चित किया जा सकता है —

लगभग ३१०२ ई पू	वैवस्वत मनु	
" ३०१० "	ययाति	(पाचवी पीढी)
" २७४० "	मान्धाता	(बीसवी पीढी)
" २५४२ से २५०० ई पू	अर्जुन कार्तवीर्य अगस्त्य, वसिष्ठ, विश्वामित्र जमदग्नि, परशुराम और हरिश्चन्द्र	(इकत्तीसवी से तैतीसवी पीढी)
" २०५० "	सगर	(४१वी पीढी)
" २३०० "	दुष्यन्त और भरत	(४४वी पीढी)
" १९३० ई पू	राम	(६५वी पीढी)
" १९०० "	ऋग्वेद का सग्राम और दशराज युद्ध	(६८वी या ६९वी पीढी)
" १४२० "	महाभारत	(९८वी पीढी)[1]

1 इसका क्रमबद्ध इतिहास पढिए— अरुण भारतीय पुरा इतिहास कोश।



सुसंस्कृत और समृद्ध यक्ष जाति

भारतीय साहित्य में यक्ष और उनकी पूजा किसी समय सबसे अधिक फैली हुई थी। एक ओर यक्षों का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, उपनिषद, गृह्यसूत्र, पुराण, जातक, दीघनिकाय, पालि के अन्य ग्रन्थ, जैन आगम साहित्य, भाष्य, चूर्णिकथा, संस्कृत के अनेकानेक काव्यों और कथा ग्रन्थों में आता है, दूसरी ओर आज भी इनकी पूजा बंगाल से गुजरात, सिंध, बिलोचिस्तान तक और हिमालय से कन्याकुमारी पर्यन्त वीर, ब्रह्म के रूप में फैली हुई है। इस प्रमुख जन जाति के ऊपर सबसे पहले डा० आनन्द कुमारस्वामी ने 'यक्ष' नामक ग्रन्थ दो भागों में लिखा था। पहला भाग १९२८ में और दूसरा भाग १९३१ में छपा था जिनमें अनेक चित्र भी थे। इस स्टडी को आगे किसी ने नहीं बढ़ाया।

एक समय यक्ष सबसे प्रमुख जाति मानी जाती थी। जब देव जाति का साहित्य प्रकाशित हुआ तो यक्ष को दबा दिया गया। परन्तु जैसा हम आगे देखेंगे आज इन्द्र, अग्नि, वायु को कोई नहीं पूछता और यक्ष जनजाति के देवताओं कुबेर, गणेश, स्कन्द, ब्रह्मा, लक्ष्मी ने एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया है।

यक्ष को पालि में यक्ख और प्राकृत में जक्ख कहा गया है। लोक में इनके जख, जखैया शब्द प्रचलित हैं। (शिमला का जाखू का टिब्बा और हरियाणा का जाखल नगर क्या यक्षों से सम्बन्धित हैं?) यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में बहुत मतभेद है। रामायण के अनुसार प्रजापति ने जल उत्पन्न किया और उसकी रक्षा के लिए कुछ सत्त्व बनाए। उनमें से कुछ ने 'यक्षाम' का वक्तव्य अपना बताया। ऐसा कहने वाले यक्ष हुए।[1] कुछ ने 'वयं रक्षामि' का वक्तव्य। वे रक्ष या राक्षस कहलाये।

यक्ष नाम का अर्थ कुमारस्वामी ने खाने वाला या भटकने वाला बताया परन्तु वह भक्ष और यक्ष में गड्डमड्ड कर गए। बल्कि यक्ष धातु का अर्थ भोजन न होकर पूजा या किसी का सम्मान करना है। कीथ यज धातु से यक्ष शब्द बनाते हैं जिसका अर्थ हुआ यजन करने योग्य। हिलब्रान्ट बल्कि यक्ष का [illegible] से सम्बन्ध बताते हैं जिसका अर्थ है मान देना।

वास्तव में हम उल्टा चलते हैं। संस्कृत को पुरानी भाषा मानकर उसका अर्थ ढूँढने का प्रयत्न करते हैं जो जैसा हम अपने भाषा और यक्ष के अध्याय में

1 वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग 4

दिखायेंगे, निरर्थक हैं। असली शब्द किरात भाषा का यक्ख या जक्ख है जिसे सुसस्कृत कर यक्ष बनाया गया। किरात शब्द यक्ख या जक्ख का अर्थ अभी हम मालूम नहीं।

यक्षों की उत्पत्ति के बारे में चार मत हैं —

(१) ब्रह्मदेव के सकेत से यक्षों की उत्पत्ति हुई।

(२) कश्यप ने उपासना के लिए यक्ष उत्पन्न किए।

(३) यक्ष प्रचेता के पुत्र थे।

(४) जैसा हम पहले कह चुके हैं प्रजापति ने जल और प्राणी का निर्माण किया। उनके सरक्षण के लिए उसने मानव के समान जीव उत्पन्न किए। उनमें से कुछ ने कहा "वय रक्षाम।" वे राक्षस हुए। जिन्होंने कहा "वय यक्षाम" वे यक्ष हुए।[1]

वदिक सहिताओं में यक्षों को अद्भुत सुन्दर स्वरूपवान् महान् और पुजारी देव माना गया। उनमें ब्राह्मण में उपनिषद् में बौद्ध साहित्य में, कहीं न कहीं हर वैदिक देवता को यक्ष कह कर पुकारा गया है। आगे चलकर बुद्ध और महावीर को भी यक्ष का सम्मान दिया गया है।

ऋग्वेद में उनके विलक्षण रूप का वर्णन है— हे मित्र और वरुण तुम्हारी वे प्रजाएं सब बुद्धि से अमूर्च्छित हैं जिनमें न कोई विचित्र आश्चर्य और न यक्ष देखा जाता है।[2] दूसरे मत्र में कहा गया है— हे अद्भुत शक्तिवाले मित्र और वरुण, हम अपने शरीर में यक्षों का आविर्भाव न देखें।[3]

यह अपने से सभ्य पड़ोसी जन के प्रति आदर और आश्चर्य का भाव था। एक अन्य सूक्त से पता चलता है कि कुछ देव पथभ्रष्ट होकर यक्षों की मान्यता मानने लगे थे और उनमें जा मिले थे। यदि कोई पड़ोसी या हमारा सम्बन्धी यक्ष सदन (स्थान) में जाता है तो हे अग्नि तुम कहीं उसके यहां छिपकर मत जाना।[4] यक्षों को नीचा दिखाने के लिए एक मत्र में अग्नि को इतना शक्तिशाली बताया है कि लोग उसे यक्षों का भी अध्यक्ष मानने लगे थे।[5]

यक्ष शब्द ऋग्वेद अथर्ववेद ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में आया है। उसका अर्थ कुछ भयानक या अद्भुत है या जादूगर या अदृश्य दैविक बर्बर शत्रु।[6] ऋग्वेद ४ ३ १३ अग्नि! यक्ष से सबध न रखो ५ ७० ४ हे सर्वशक्तिमान् देवता! कहीं हमें यक्ष न मिल जाय। ७ ५६ १६ यज्ञपो यक्ष को देख पाना क्योंकि यक्ष अदृश्य है, ऐसा उल्लेख है। ७ ६५ २ तथा ८८ ६, और दीघ निकाय २ २०४ में यक्षों का उल्लेख है। वरुण यक्ष कहा गया है। अथर्व

1 भारतीय सस्कृति कोश (मराठी) खण्ड 7 पृष्ठ 591
2 7 | 61 | 5
3 5 | 70 | 4
4 ऋग्वेद 4 | 3 | 13
5 ऋग्वेद III | 88 | 13
6 यक्ष 2 पृष्ठ 1

में ११ २ २४ में भी यक्ष का उल्लेख है।[7] १० ७ ३८ अथर्ववेद में वरुण, ब्रह्म अथवा प्रजापति के संबंध में कहा गया है एक महान् यक्ष, सृष्टि मध्य में जलतल पर तपसनिरत उसी में समस्त देवता निहित जैसे तने में पेड़ की शाखा ।

यक्ष वनस्पति का स्वामी है।[8] शतपथ १ १ तैत्तिरीय ३ १२ ३ १ ब्राह्मणों में उल्लेख है— मैं तप करके यक्ष बन गया।[9] बृहदारण्यक उपनिषद् ५ ४ में कहा गया है— जो महान् यक्ष को आत्मिक भाव जानता है कि ब्रह्म सत्य है— वह विजय प्राप्त करता है। केनोपनिषद् ३ जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४ में भी यक्ष का उल्लेख है।[10]

यक्ष इच्छारूपधारी है अर्थात् तथा महायोद्धा है। बाद में द्वारपाल (पुण्यजन) बने गये हैं। ये लोकपालिकाओं के रक्षक हैं। गुप्त काल ४०० ईसवी में बृहत्संहिता में वर्णित गणेश भी यक्षों के निकट का देवता है।[11]

कुबेर गुह्यपति है। कुछ यक्ष स्कंद के अनुचर हैं जिन्हें यहाँ-वहाँ गुह्य कहा गया है।[12]

कुबेर सोने को मदन पत्थर पिघलाने वाला था। मदुरा की मीनाक्षी पहले कुबेर की पुत्री या यक्षिणी हुई। मातृका, जोगिनी डाकिनी इत्यादि स्त्री देवता यक्षों से संबंधित हैं?[13]

यक्षिणी अस्समुखी अर्थात् अश्वमुखी कही गई है।[14] बौद्ध साहित्य में इंद्र भी यक्ष कहा गया है।[15] बौद्ध महावंश में लंका के आदिवासी यक्ष कहे गये हैं।[16] संतानों का विश्वास है कि अच्छे आदमी मरकर वृक्ष बनते हैं।[17] (ऊपर वृक्ष से यक्ष का संबंध बताया गया है।) यक्ष वेदी आयतन चैत्य पेड़ के नीचे पत्थर रखकर ही बन जाता है। संभव है महाभारत १२१ २१ में वर्णित चारदार मन्दिर जिसमें मूर्तियाँ तथा घंटा का वर्णन है यक्षायतन ही था। न्यग्रोध इन चैत्यों का पवित्र वृक्ष है।[18]

यक्ष वृक्ष देवता कहे गये हैं। द्रविड तथा सुमेर में भी वृक्ष से संतान कामना की जाती थी।[19]

चैत्यों पर यक्ष गंधर्व नाग का पुष्पार्चन किया जाता था।[20] यक्षों तथा *राक्षसों की बलि मन्दिर और मांस है। यही मनु ने भी कहा है।[21] (यक्षवाद*

7 वही पृ० 2
8 वही पृ० 2
9 वही पृ० 3
10 वही पृ० ४
11 वही पृ० 7
12 वही पृ० 8
13 वही पृ० 9
14 वही पृ० 10
15 वही पृ० 11
16 वही पृ० 13
17 वही पृ० 14
18 वही पृ० 17
19 वही पृष्ठ 32
20 वही पृष्ठ 24
21 वही पृष्ठ 25

भक्तिवाद है °) कुबेर भागवत कहा गया है (महाभारत)। उसे बुद्ध भी कहा गया है। ■ यक्ष मूर्ति मदिरा को देखकर गंध, फूल वस्त्र चढाया जाता था। घटानान लीला नाटक तीव्र मन्गि घम, पशु-बलि का भी उल्लेख है।[24] शिव नन्र कार्तिकेय इत्यादि महामायूरी सूची म यक्ष कहे गये है। [5] यक्ष भी बुद्ध की भांति पद्मपाणि कहा गया है। बौद्ध वज्रपाणि जब इन्द्र से भिन्न मिलता है तब वह यक्ष का ही वर्णन है।[26] वज्रपाणि यक्ष है ग्या गाधार चित्रो म मथुरा म मिला है।

वदिन काल न अन्त म देवो ने यक्षो का सम्मान के आसन से उतार कर भय और घृणा की वस्तु बना लिया। यह सब जलन के कारण था सूक्तो म साफ झलकता है। '(हे अग्नि) किसी चापलूस ठग चालबाज पडोसी आदि के यक्ष से सहगमन मत करना। —ऋग्वेद ४ ३० ४ 'ओ महान् शक्ति के देवता हमारा किसी यक्ष से पाला न पडे। —ऋग्वेद ७ ५६ १६ यक्ष का अहृश्य बताया उसे दुसाध्य जाने वाला प्राणी कहा। यह स्वाभाविक है जब अपने जन दूसरे जन से अधिक प्रभावित होने लगता हर प्रकार का बुरा भला कहा जाता है।

अपनी पडोसी जनजाति असुरो स लडने के लिये पहले यक्ष और अन्य गणो से सहायता मागी गई। स्कन्द के नेतृत्व म यक्षो क एक भाग ने यव रक्षाम कहकर देवो का सेनापतित्व करके असुरो को बुरी तरह हराया तो वह यक्ष का भाग रक्ष या राक्षस आदि के प्राणी होगये, स्कन्द को इन्द्र पद पर भी चुन लिया गया। लेकिन राक्षसो की शक्ति बढ़ने पर उनसे भी लडाई हागई। वे भी असुरो के पर्यायवाची होगए। वेद के एक स्थल पर स्कन्द को चोरो का राजा बताया है। यक्ष और राक्षस सम्मान के पद स गिर गए।

किन्तु यह कही कही है। धर्मि साहित्य म यक्ष के सुदर रूप का अनेक स्थनो पर वर्णन है। ऋग्वेद म[27] उल्लेख है— 'जो मरुद्गण अश्वो के समान वेग से गमन करते ह वे यक्षो के समान सुदर सुशोभित होते है। गृह्य सूत्रो म कहा है — 'वन्दि चरण म मन प्रवेश करता हुआ ब्रह्मचारी इस प्रकार की भावना करे कि मैं भी परिषद् की दृष्टि म यक्ष के समान प्रिय बनू। बाद के साहित्य म 'यक्ष के समान सुन्दर लगने वाले की कल्पना जगह जगह पाई जाती है। किसी भी अपरिचित सुन्दर नारी को देखकर पूछा जाता था— क्या तुम यक्षी हो ?[28] जमिनीय ब्राह्मण म यक्ष को 'अद्भुत जीव कहा गया है।

महाकाव्यो म यक्षो का वर्णन अधिक है। रामायण म देवता का आशीर्वाद

---

22 वही पृष्ठ 27 | 24 वही पृष्ठ 27 | 26 वही पृष्ठ 30
23 वही पृष्ठ 27 | 25 वही पृष्ठ 29 | 27 7 56 16
28 महाभारत आरण्यक पर्व 50 13 61 114

या अग्नि तक देखा जा सकता है, जिनका जल से निकट संबंध है।[1] यक्ष तथा मिथुन का बहुत संबंध है।[2] मिलिन्दपन्ह में देवसम्प्रदायों की सूची दी गई है जो इस प्रकार है मणिभद्द, पुराणभद्द, चंदिम, सूय्य, सिरि (श्री) देवता कलि देवता (५ १ रानी), शिव, तथा वासुदेव और ये समस्त सम्प्रदाय गुप्त हैं। इनके रहस्य सम्प्रदाय के लोगों को ही बताये जाते हैं, तथा बाहर वालों से छिपाये जाते हैं। सिंहली टीकाकारों ने इन देवताओं के उपासकों को भक्तों की श्रेणी बताया है। मनी उपनिषद् में भी (१ ४, ७, ६ तथा ८) यक्ष देव सूची में गिनाये गये हैं।[3] कुबेर का लक्ष्मी से भी संबंध बताया गया है (महाभारत, ३ १६८ १५)[4] कुबेर की पत्नी भद्रा (महाभारत १ १९९ ६) तथा ऋद्धि (म० १३ १४६ ४) भी कही गई है।

शतपथ ब्राह्मण में वरुण के गंधर्वों का उल्लेख है। गंधर्व सोम के रक्षक कहे गये हैं (शतपथ ब्रा० ३ ३ ३ ११ काण्व शाखा)। इन्द्र गंधर्वों का विरोधी बताया गया है (ऋग्वेद ८ १ ११ तथा ६६ ५)। गंधर्व कृपानु सोमपाल है (ऐत ब्रा ३ २६ ३ २)। न्यग्रोध, उदुंबर, अश्वत्थ प्लक्ष आदि वृक्ष गंधर्वों तथा अप्सराओं के घर कहे गये हैं (यजुर्वेद ३ ४ ८)। यक्ष और नागों को अमृत मास का रक्षक कहा गया है। वरुण का वाहन मकर है। कामवेतन गंगावाहन, यक्ष यक्षी वाहन का उल्लेख है।[5] यक्षों का मकर से विशेष सम्बन्ध है। अमरावती के एक चित्र के दृश्य में एक यक्ष ने मकर को दबा लिया है। दूसरा और तीसरा यक्ष मकर को कमर खाने से रोक रहे हैं। चित्र के दाहिने हाथ पर एक आकृति है। यह विचित्र पशु है। इसका मुख गरुड़ जैसा है। माटी चोंच तथा शरीर सिंह जैसा है। इसका समय लगभग २०० ईसवी माना गया है। गरुड़ का संबंध भी इन्हीं जातियों के संबंध में आता है। सुपर्ण श्येन अनव नामों से गरुड़ को सम्बोधित किया गया है।[6]

यक्ष जाति के अन्य नाम

यक्ष जाति का सबसे महत्त्वपूर्ण पर्याय ब्रह्मा है। किरात प्रजाति की जो जनजातियाँ जो दक्षिण की ओर बनी उनका नाम था बोद ब्रम्हा' या 'भाट ब्रह्म'। भाट तिब्बत और भूटान में बसे हुए थे। भूत उन्हीं का पर्याय था। बर्फ पर उनकी छाया बड़ी दिखाई देती थी। बर्फ पर ही पैर के निशान में आगे की ओर उंगलियों के निशान जल्दी मिट जाते थे सो भूत को तीन उंगलियों के पैर वाला बताया गया है। कुछ देर में वे भी गायब हो जाते थे, केवल एड़ी का निशान बना हुआ रह जाता था, सो जनता में भूत उल्टे पैर वाला और निशान रहित

1 वही पृष्ठ 16
2 वही 23
3 यक्ष 2 पृष्ठ 6
4 वही 4
5 वही पृष्ठ 35
6 यक्ष 2 चित्र 37

वाला प्रसिद्ध हुआ। यक्ष जाति ब्रह्म जाति का दूसरा नाम था। सम्भवत इसी कारण बौद्धों ने यक्षों और भूतों का एक साथ वर्णन किया है। इनके नेता कुबेर ने संसार में सर्वप्रथम व्यापार आरम्भ किया और सोना खोज निकाला। ब्रह्मपुत्र और ब्रह्मा (बरमा) (Burma) में यक्ष जाति का नाम अंकित है। इस वर्ष 1989 में ब्रह्मा सरकार ने अपने देश का नाम बदलकर मयन्मा (म्यन्मा) कर दिया है।

महाभारत में यक्षमह (आज तक मनाया जाता मेला जिसमें यक्ष की पूजा जाता है) के लिये ब्रह्ममह शब्द आया है। बक नामक राक्षस के मरने पर एक चक्रा नगरी में सब चारों वर्णों के निवासियों ने मिलकर ब्रह्ममह का आयोजन किया था। विराट देश में भी ब्रह्म का बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता था जिसका पूरा प्रबन्ध राजा विराट करते थे।

आज भी लोक में यक्ष पूजा को वीर बरम्हा पूजा कहा जाता है। काशी जनपद में हरिकेश यक्ष का बड़ा स्थान आज हरसू ब्रह्म के नाम से विख्यात है।

अथर्ववेद में यक्षों के निवास स्थान को ब्रह्मपुर कहा गया है। इस पुरी की विशेषता यह थी कि इसमें अमृत का निवास माना जाता था। यक्षों का सम्बन्ध अमृत से है इसी कारण ब्रह्मपुरी को अपराजिता भी कहा गया है। माना गया है कि इस पुरी में हिरण्य का कोश था। कुबेरपुरी में सुवर्ण का अक्षय कोश माना जाता था। इस ब्रह्मपुरी में विशाल शरीर वाले यक्ष रहते थे।[1]

'महत्' विशेषण भी यक्ष के लिये प्रयोग में लाया जाता था। अथर्ववेद का सूक्त है— महद् यक्ष भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्र भृतो भरन्ति।[2] (भुवन के बीच में कोई महत् यक्ष भरा है उसे सभी राष्ट्रधर बलि देते हैं।) अथर्ववेद में ही महद् ब्रह्म महद्यक्ष के लिए आया है।[3] दीघनिकाय में महत् नामक देवता के उपस्थान का वर्णन है। (भागवत बुक देवनागरी संस्करण पृष्ठ १३) गौतम बुद्ध ने महदुपट्ठान या यक्षपूजा को तिरच्छान विज्जा और मिच्छाजीवा बताया जो जनसाधारण में फैली हुई थी।

यक्षों का तीसरा पर्याय राजा था। इस शब्द का सबसे प्रसिद्ध प्रमाण कालिदास के मेघदूत में है जहाँ उसने कुबेर को राजराज अर्थात् यक्षों का राजा कहा है।

आत्मविद्या ही का नाम राजविद्या राजगुह्य है जैसा स्वयं कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा है—

---

1 अथर्ववेद 10 | 2 | 29 33
2 अथर्ववेद 10 | 8 | 15
3 अथर्ववेद 1 | 32 | 1 | 4

इद तु त गुह्यतम प्रवक्ष्यामि अनसूयव,
नान विनानसहित, यत् नात्वा माक्ष्यमेऽशुभात् ।
राजविद्या राजगुह्य पवित्र ऽद उत्तमम्,
प्रत्यक्षावगम धर्म्य सुसुख कर्तुमव्ययम् ॥

राजयाग का अथ राजाओं द्वारा प्रदत्त नान नहीं है— राज यक्ष के लिए जगह जगह प्रयुक्त हुआ है— यक्षों का नान । गीता के चौथे अध्याय म लिखा है कि आदि काल म ब्रह्मा न यह ज्ञान विवस्वान् को दिया और विवस्वान् ने अपन पुत्र वैवस्वत मनु को ।

योगवासिष्ठ[1] मे भी राजविद्या का महत्त्व दर्शाया है । और ब्रह्मा का नाम राजविद्या क जनक क रूप म आया है ।

पौराणिक रूपक म ब्रह्मा का नाम उस पदाथ का है जिसको साख्य म महत्तत्त्व और बुद्धि-तत्त्व भी कहते हैं ।[2]

ब्रह्मा की प्रकृति का पहला आविर्भाव हुआ ब्रह्मा जसे सागर म लहर ।

अपारे ब्रह्माणि ब्रह्मा, स्वभाववशत स्वय
जात स्पदमयो नित्यम्, उर्मि अबुनिधो एव ।
(योगवासिष्ठ)

जातकों म वर्णित 'स्थापत्य सम्राटो तथा वास्तु विद्याचाय' को मौय युग म राज तक्ष' या राज शिल्पिन् कहा गया है । क्या राज शब्द उनका यक्ष सम्बध दिखलाता है जो महान् शिल्पी प्रसिद्ध थे ? क्या इसीलिये आज भी घर बनान वाल को राज कहा जाता है ?

इसी प्रकार महाराज शब्द है जिसका अथ है महा (बडा) यक्ष । यह भी कुबर क लिए प्रयुक्त हुआ है । कुबर को दी जाने वाली बलि महाराज बलि नाम से वर्णित है । पाणिनि न अपन ग्र थ म महाराज नाम के दवता का वणन किया है ।[3] इस देवता की भक्ति करने वाल भक्त 'महाराजिक' कहलात थे ।[4] पालि साहित्य म चारो दिशाओं क लोकपाल, चार महाराजिक कहलाते थ । उनम गन्धर्वों के अधिपति धृतराष्ट्र पूव दिशा क रक्षक, कुभाण्डो के अधिपति विरूढक दक्षिण दिशा के रक्षक, नागो क अधिपति विरूपाक्ष पश्चिम दिशा के रक्षक और यक्षो के अधिपति वैश्रवण (कुबेर) उत्तर दिशा के रक्षक थ । बस य चारो यक्ष के रूप म ही पूजे जात थ । भरहुत की वेदिका पर इन्ह यक्ष बताया गया है ।

---

1 2 11 16 17 18

2 महाभारत शांति पव अ० 308 वायु पुराण पूर्वार्ध अध्याय 4; अनुगीता अ० 26

3 पाणिनि अष्टाध्यायी 4 | 2 | 35

4 पाणिनि अष्टाध्यायी 4 | 3 | 97

अलका

यक्ष लोक का शासन-केन्द्र अलकनन्दा पर बसा अलकापुरी था। कुबेर वहाँ के गणपति थे। हिमालय में आज भी अलकापुरी नामक प्रदेश है। अलकनन्दा की धारा ने इस तीन ओर से घेरा हुआ था। अलकापुरी के निवासियों की आनन्दमय क्रीडाओं का साधन होने के कारण ही वह अलकनन्दा कहलाई। अलकापुरी से लेकर कुमाऊ और गढवाल का प्रदेश कुबेर का गणराज्य था। कुबेर की सम्पत्ति स्वर्ग की गरिमा थी। कुबेर के राज्य के एक ओर प्रवेश द्वार हरद्वार था तथा दूसरी ओर सिंधुकोष (हिन्दुकुश) से अमरावती जाने वाला व्यवसायी वर्ग के निमित्त खुला हुआ मार्ग था। दोनों मार्गों पर लगा प्रवेश शुल्क कुबेर को अपरिमित आय प्रदान करता था। इस साधन से उपलब्ध धन राशि उसके वैभव का अंग थी।

यक्षो की विशेषताए

यक्षो को विशाल शरीर वाला बताया गया है। वे ताड के वृक्ष के समान लम्बे होते थे। सबसे प्राचीन शिल्प भारत में यक्ष मूर्तियाँ हैं और वे सब विशाल हैं। वे महाबली होते थे और मृत्यु से न दबने वाले। अग्नि और सूर्य के समान उनकी कान्ति दमकती रहती थी। यह वर्णन महाभारत में यक्ष युधिष्ठिर संवाद के समय का है।[1] इस वर्ष केदारनाथ की यात्रा में मन्दिर के सामने दो पुरुष दिखाई दिए थे बिल्कुल इस वर्णन के प्रतिरूप साढे छह फीट लम्बे चमकते ताम्रवर्णी।

महाभारत के अनुसार ब्रह्मा ने कुबेर को तीन वरदान दिए— अमरत्व धन का आधिपत्य और लोकपालत्व।[2] इसमें यक्ष की विशेषताओं का वर्णन है। अमरत्व के बारे में जनता में यह विश्वास था कि यक्षो के पास अमृत है जिसे वे अपने भक्तों को प्रसन्न होकर प्रदान करते हैं।

महाभारत में इस अमृत का वर्णन है— "यह एक प्रकार का पीला मधु है जिसे मक्खियाँ नही बनाती। वह घडे में बन्द है सर्प उसकी रक्षा करते हैं। कुबेर का वह अत्यन्त प्रिय है। जम्भ (एक यक्ष देवता) के साधक ब्राह्मण कहते हैं कि उस मधु को खाकर मर्त्य पुरुष अमर हो जाते हैं वृद्ध युवक हो जाते हैं और अन्धो को नेत्र मिल जाते है।[3]

इसी कारण यक्षो की मूर्तियों में उनके बाए हाथ में अमृत घट दिखाया जाता है।

उत्तर दिशा के लोकपाल कुबेर धनद करके प्रसिद्ध है। उनके पास सुवर्ण

1 आरण्यक पर्व 297 । 20-21
2 258 । 15
3 उद्योग पर्व 62 । 23-25

का अथाह कोश है। अथर्ववेद म उनकी नगरी ब्रह्मपुरी म सुवण का कोश वर्णित है। उत्तर दिशा म ही सुवण का पवत मेरु है और हाटक प्रदेश भी वही है। जाम्बूनद स्वण, पपीलिक स्वण और अष्टापद स्वण— तीनो प्राचीन स्वण उत्तर दिशा म पाए जाते थे। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस न भी हिमालय पवत म स्वण की खुदाई का वणन किया है। स्वण के कारण ही कुबेर के पीले वस्त्र चमकते है। यही सकल्पना विष्णु और कृष्ण के पीताम्बर मे आई, साथ ही लक्ष्मी म।

यक्ष की एक अन्य विशेषता उसको तुदियल दिखाने म है जैसे कोई तुदियल व्यापारी बैठा हो। कैसा जीवन्त चित्रण है! कुबेर सेठो का सेठ है। हर मूर्ति म उसके तोद दिखाई जाती है। जब उसने गणेश का रूप धारण कर लिया तो तोद और प्रमुख हो गई। चतुर विद्वान वह बहुत है हाथी भी बहुत समझदार कहा जाता है। साथ ही हाथी कुबेर का वाहन भी है, सो उसको गणेश के रूप मे बदलने म हाथी का मुख कर दिया गया।[1] वह उत्तर दिशा का दिग्गज (दिशा का हाथी, बुद्धिमान) है। जितने यक्षो की मूर्तिया विभिन्न कालो की आज हम प्राप्त हुई है सबके तोद है। हो सकता है अधिक धन होने के कारण एव व्यापारी रूप म बदनाम होने के कारण कुबेर ने गणेश का मगलमय रूप धारण कर लिया और लक्ष्मी जो आरम्भ म कुबेर की पत्नी होकर कुषाण काल तक पूजित थी (भारत म प्राचीन मूर्तिया मथुरा सग्रहालय म ईसा पूव पहली शताब्दी की कुबेर और लक्ष्मी की युगल मूर्तिया हैं जिनम लक्ष्मी की मूर्ति के नीचे कुबेर की पत्नी लिखा है) बाद म आज तक यक्षपूजा (दीपावली) के दिन गणेश के साथ जोडा बनाती है। आज भी हर काय श्री कुबेराय नम या श्री गणेशाय नम लिखकर आरम्भ किया जाता है। वह कर नहीं लिखकर म बडा तथ्य छिपा है। यह द्योतक है कि लिपि का आविष्कार भी यक्ष जाति न किया था। तभी उसका नाम ब्राह्मी लिपि है। महाभारत लिखने के लिए भी वेदव्यास को गणेश का सहारा लेना पडा था। आखेटक, पशुपालक या कृषक अवस्था म मानव को लिखने की आवश्यकता नही होती, जब वह व्यापारी अवस्था म आया तभी स्मरण के स्थान पर लिखा-पढी की जरूरत पडी। मध्य पूव की पुरानी सभ्यताओ म भी सबसे पहले फिनीशियन[2] जाति म लिपि का आविष्कार हुआ जो भूमध्य सागर तट के समुद्री व्यापारी थे।

---

1 लगभग 200 ईसवी पूव आंध्र प्रदेश में अमरावती के शिल्पों में एक हाथी के सिर वाले यक्ष की मूर्ति है।

2 फिनीशियन जाति उस जगह की नेटिव नहीं है। वह बाहर स आई है परन्तु कहा से यह मिस्र और मेसोपोटामिया के प्राचीन वणनों में नहीं पता। वेद में कुछ स्थलो पर पर्णों का पुण्यजन कहा गया है। कृष्ण के द्वारका पहुचने पर पुण्यजन राक्षसों से युद्ध हुआ था जो समुद्री व्यापारी थे। साथ ही वेद में व्यापारी पणि का जगह जगह वणन है। इसी शब्द स पणिक (वणिक) पण्य (मुद्रा) पण्यस्थल (बाजार) आदि शब्द बने।

फलान यक्ष के यहाँ या फलाने यक्ष के चत्य म विश्राम करत और रहते वर्णित हैं। बुद्ध महावीर के काल म पूर्वी भारत म यक्षपूजा का बहुत प्रभाव था।[1]

यक्षों की सम्पन्नता

यक्ष वृक्ष की पूजा करत थ। वृक्षा की उपज, जडी, बूटी आदि का व व्यापार करते थे और प्राचीन भारत की सबस धनाढ्य जनजाति थे।

कुबेर उनका राजा था यह उसके पद यक्षराज, यक्षन्द्र, महाराज, राजराज स पता चलता है। वह उत्तर दिशा का दिक्पाल करके प्रसिद्ध था। वह शक्ति और उत्पादिता का देवता था और धनागार के निय धनद और वसुद करके पूजित था। उसका निवास स्थान कलास पवत पर अलकमन्दा या अलकापुरी था जो भव्य प्राचीरा से घिरा नगर था जिसम यक्ष के अतिरिक्त किन्नर मुनि[2] गन्धव और राक्षस रहत थ। बद्रीनाथ स चार किलोमीटर उपर माणा गाँव है जो भारत चीन सरहद का अन्तिम भारतीय गाव है। इसका पुराना नाम मणिभद्रनगरी कहा जाता है। इस वष बद्रीनाथ स आगे चलकर जब माणा गाँव पहुचा तो आश्चय चकित रह गया। विशाल लम्बी चौडी घाटी ११००० फुट की ऊंचाई पर बसी दोना ओर ऊंचे बर्फीले पवता क सिलसिले और सामने ठोस खडा कलास का प्रतिरूप एक तिकोना पवत जस किसी ने घाटी की भूमि पर उसे लाकर स्थापित कर दिया हो। उसके पीछे बर्फीले पवत चल गए थे, लेकिन सामने स वह अलग थलग खडा था, मानसरोवर के पास के बर्फील कलास का प्रतिरूप। जाडे म वह भी बर्फ स ढक जाता होगा। मरे मन म कौंधा— कुबेर की अलकापुरी कलास की तलहटी म अलकनन्दा क किनारे। यही असली कलास है। यहा चप्प चप्प पर महाभारत की मुहर लगी है। बद्रीनाथ स १२ किलोमीटर नीचे पाण्डुकेश्वर है गोविन्द घाट का गाव जहाँ पाण्डु ने अपना शिविर लगाया था और पाचो पाण्डव पदा हुए थ। इस यक्षभूमि का व अपना पतृक स्थान मानते थ और बार बार लौटकर आते थ। स्वर्गारोहण भी उन्होने यहा माणा स आग चलकर सतोपथ ग्लेशियर पर किया था जहाँ से अलकनन्दा और सरस्वती नदियाँ निकली है जो माणा म सगम करती है।

मानसरोवर और रावण ह्रद के पास वाले कलास पवत का वणन महाभारत म सबस पहले रावण की शिव की घोर तपस्या के समय आता है।[3] रावण न ही उस प्रसिद्धि दी हो शायद इसी कारण मानसरोवर के पास वाली उससे भी विशाल झील रावण ह्रद या राक्षस ताल करके प्रसिद्ध है।

---

1 विस्तार में वणन के लिए देखिए कुमारस्वामी यक्ष भाग 1 और 2

2 मुनि का यक्ष क साथ सम्बन्ध है जैसे ऋषि का देव जनजाति और तपस्वी का शिव के पूजकों के साथ है। नारद मुनि करके प्रसिद्ध है वे यक्ष ही होगे घूमने फिरने के शौकीन।

3 महाभारत वन पव 139 अध्याय

कुबेर जब भी देव-सभा में भाग लेने जाते थे तो उनके साथ यक्षों का दल रहता था जिन्हें वैश्रवण-कायिक-देव (कुबेर के अंगरक्षक) कहा गया है। कुबेर अनेक प्रासादों, वनों और वाटिकाओं का स्वामी था। चैत्ररथ उसके प्रसिद्ध निकुंजों में एक था जिसके वृक्षों पर पत्तों के रूप में बहुमूल्य मणि लटकती थी और फलों के रूप में सुन्दर रमणियां। इसी ने शायद बाद की अरब दंतकथाओं के वाक्वाक् पेड़ को जन्म दिया।[1]

यक्षों ने सबसे पहले स्वर्ण खोज निकाला था। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि कुबेर ने अग्नि और वायु की सहायता से स्वर्ण चमकाया। अर्थात् धौंकनी की वायु से आग बहुत तेज करके अयस्क से स्वर्ण निकाला। यही वर्णन महाभारत में आया है।[2]

उशीरबीज नामक एक झील उत्तर दिशा में है, जहां से सोना निकलता है। हिमालय में वहाँ दो जीमूत (सोने की खानें) हैं। सर्प वहां चोरी करते थे। किम्पुरुष जाति के द्रुम नामक राजा के शासन क्षेत्र के उत्तर में जहाँ से सोना निकलता था गुह्यक हाटक की रक्षा किया करते थे। गुह्यक पृथ्वी और पर्वतों पर रहते थे।[3]

हिरोडोटस की स्वर्ण खोदने वाली चींटियों की किंवदंती एक रहस्यमय जंतु की ओर इंगित करती है। यह असल में तिब्बती नस्ल की जाति (यक्ष) थी। अब भी बहुत से तिब्बती परिवार मिलते हैं जो समूहों में रहते हैं, सोना खोदते हैं और भयानक सर्दी में चमड़े से बाना तन अपने को ढक लेते हैं। उनके रक्षक उनके भयानक और बलिष्ठ बड़े कुत्ते होते हैं। वे लम्बी लोहे की कुदालों से खुदाई करते हैं क्योंकि सोना उस स्थान पर बहुतायत से पाया जाता है।[4]

यक्ष रूप बदलने वाले

प्राचीन साहित्य में यक्षों को मनचाहे रूप धारण करने वाला बताया गया है और यहां राक्षस को बताया गया है। जैसा रूप धारण करना चाहें वे कर सकते थे। यह उनका मुखौटा लगाने का व्यवहार बताता है। आजकल भी दक्षिण में कथाकलि नृत्य में मुखौटा लगाकर नृत्य किया जाता है इसी प्रकार पूर्व भारत में भी (उड़ीसा का छऊ नृत्य)। यक्ष गन्धर्व आदि आमोदप्रिय जाति थी। साथ ही युद्ध के समय भयंकर आकृति का मुखौटा लगाकर शत्रु को आधी जान तो वैसे निकाल देते थे। आज भी विजयदशमी आदि त्योहारों पर पूरे भारत में तरह-तरह के मुखौटे बिकते हैं जिन्हें बच्चे लगाकर बहुत खुश होते हैं।

1 कुमारस्वामी यक्ष पृष्ठ 6
2 हॉपकिन्स एपिक माइथालॉजी पृष्ठ 146
3 एपिक माइथोलॉजी पृ० 145
4 सिविलाइज़ेशन इन एन्शियेंट इंडिया ऑफ बायन फोटस— डा० बहल, पृ० 173

गुह्यपति

कुबेर को गुह्यपति भी कहा गया है। गुह्य एक जाति थी जो यक्षों के साथ अलका में रहती थी। इन्हें कुबेर के खजाने का रक्षक कहा गया है। कुबेर के उन्नत महल को गुह्य सहारा देने वाले थे।

निर्माता

यक्ष निर्माण करने वाले भी प्रसिद्ध थे। कुबेर के प्रासाद धनागार वन निकुंज सब विख्यात थे। इनके भवन चैत्य आयतन प्रसिद्ध थे। राजतरंगिणी के अनुसार अशोक के पुत्र जालौक के वंशज दामोदर द्वितीय ने जल-प्लावन शांत करने के लिए यक्षों की सहायता ली— यक्ष हिमालय की पर्वतीय जाति थी। वे निर्माण कला में दक्ष थे। शक्तिशाली थे। उनका शरीर पुष्ट था। वे शारीरिक परिश्रम सुगमतापूर्वक कर सकते थे। वास्तु एवं स्थापत्य कला में उन्होंने विशेषता प्राप्त की थी। हुएन त्सांग ने पाटलिपुत्र के ध्वसावशेषों के बारे में लिखा है कि ये भवन यक्षों के बनाए हुए थे।[1]

दुर्बलता

यक्ष लोहे और पत्तिया-ताड़ से डरते थे। इससे यह दन्तकथा भी ठीक ठहरती है— काशी यक्षों की नगरी थी। शिव के गण भी काशी में आ गए। दोनों में झगड़ा हुआ। शिव को मध्यस्थ बनाया गया। उनके निर्णय देने पर यक्ष काशी से बाहर चले गए। शिव को मानने वाली बहुसंख्यक जनजातियाँ (गण) थे जिनमें नागों के अनेक गण थे। ये मध्य भारत और नदियों के किनारे फैले हुए थे जहां लोहा पाया जाता है। लोहे के कारण ही यक्ष उनसे हार और काशी त्याग गए।

यक्षों का विलास

भारतीयों के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य में यक्षों का अखण्ड विलास बिखरा पड़ा है। यक्षी मूर्तियां में सब सयोनि हैं। कालिदास के समय में भी काम पूजा तथा यक्षों का काफी उल्लेख मिलता है। मथुरा की मदिरा पीती यक्ष मूर्ति बोधिसत्व के उस रूप की बराबर याद दिला देती है जिसे देखकर एक किंवदन्ती के अनुसार स्वयं वसिष्ठ चमत्कृत हो गए थे।[2]

बाद में वज्रयान के काल में कुरुकुल्ला और महाकाल के अतिरिक्त जम्भल की पूजा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया। जम्भल धन का देवता है वह प्रसन्न बैठा है। उसके हाथ में प्याला है।[3]

---

1 Beal S Buddhist Records of the Western World from the Chinese of Hiuen Tsang London 1984

2 रांगेय राघव प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास पृ० 456

3 साधनमाला जिल्द 2 पृ० 573–74

आज

किरात दक्षिण हिमालय म अब किराति या किराती कहलाते ह। नेपाल की दुदकोसी और करकी नामक नदिया के बीच किरात देश है। अब खम्भू लिंबू और याखा (यक्ष) जातियाँ इन्ही मे परिगणित होती है। दनोर, ह्यु, यामि जातियाँ भी किराती बनती है, वसे खम्भू, लिंबू और याखा अपने को ऊँचा समझ कर इस बात से इनकार करते है।[1]

---

1 द वाइल्ड ट्राइब्स इन इण्डियन हिस्ट्री पृ० 2-

कुछ परिशिष्ट

यक्ष कौन है ?

यह कथा केनोपनिषद् से ली गई है।

कथा है कि एक बार देवताओं और दानवों में घोर युद्ध छिड़ गया। अंत में जीत देवताओं की हुई। अग्नि, वायु और इन्द्र अपने आपको दूसरे देवताओं से अधिक पराक्रमी और शक्तिशाली मानने लगे। उनको गर्व हो गया कि इस जीत के कारण वे ही हैं। सर्वसमर्थ ब्रह्म ने उनके इस गर्व को ताड़ लिया और उसने अपनी शक्ति को देवताओं के अन्दर से खींच लिया। उनके सामने अब ब्रह्म एक यक्ष के रूप में खड़ा था।

देवताओं की समझ में नहीं आया कि यह यक्ष कौन है ?

अग्निदेव! आप जाकर पता लगाइये कि यह कौन है ?

अग्नि दौड़ कर यक्ष के सामने पहुंचा। यक्ष के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया कि मैं अग्नि हूं।

तेरी क्या शक्ति है ? तू क्या कर सकता है ? यक्ष ने पूछा।

पृथिवी पर जो कुछ भी है उसे जला कर भस्म कर सकता हूं।

अग्नि के सामने यक्ष ने एक तृण रख दिया। अच्छा तो जला इसे।

अग्नि ने अपनी सारी शक्ति लगा दी उसे जलाने में पर उसे वह नहीं जला सका और वहां से अपना सा मुंह लिये लौट आया। यक्ष का पता लगाना उसके लिये संभव न हुआ।

वायुदेव! आप पता लगा कर आइये कि यह यक्ष कौन है देवताओं ने वायु से कहा।

वायु वहां पहुँचा।

'तू कौन है ? यक्ष ने पूछा।

मैं वायु हूँ।

क्या शक्ति है तुझ में ?

मैं चाहूं जिस वस्तु को उड़ा ले जा सकता हूं— बड़े बड़े पहाड़ों को भी।

अच्छा तो इस तिनके को तनिक उड़ा दो।

वायु ने अपना सारा बल लगा दिया पर वह तिनका टस से मस नहीं हुआ। वह भी निराश लौट आया बिना यह जाने कि वह यक्ष कौन है ?

अब इन्द्र की बारी थी। देवताओं ने उसे भेजा इस विश्वास से इन्द्रदेव अवश्य ही यक्ष का पता लगा लेंगे।

इन्द्र वहा पहुँचा, तो यक्ष अतर्धान हो गया। न जाने कहा छिप गया।

इन्द्र अतरिक्ष मे यक्ष को खोजने लगा, पर वह कहा था। खोज म उसे एक स्त्री दिखाई दी परम सुदरी और ऐसी शुभ्र जसे हिमलता हो। उसने अपना नाम बतलाया 'उमा हैमवती ।

इन्द्र ने उससे पूछा, "कौन था यह यक्ष ?

'यक्ष यह ब्रह्म था। तुम देवगणो की शक्ति असल म ब्रह्म की ही शक्ति है तुम्हारी अपनी नही।

देवताओ की आखें खुल गइ। उनका गव चूर चूर हो गया। उमा ने उनको सुझा दिया कि सारा बल और सामथ्य तो वास्तव म ब्रह्म का ही है।

यक्ष पर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार

ईसवी सन् के आरम्भ म "शताब्दियो के परिचित यक्षो और गन्धर्वो ने भारतीय धम साधना को एकदम नवीन रूप मे बदल दिया था। इन आर्येतर जातियो के उपास्य वरुण थ कुबेर थे, वज्रपाणि यक्षपति थे।' [1]

यक्ष मणियो और रत्नो का सधान जानत थ, पृथ्वी के नीचे गडी हुई निधियो की जानकारी रखत थे।'[2]

महाभारत म ऐसी अनेक कथाएँ आती है जिनम सतानार्थिनी स्त्रिया वृक्षो के अपदेवता यक्षो के पास सतान कामिनी होकर जाया करती थी। भरहुत बोधगया, साची आदि म उत्कीण मूर्तियो म सतानार्थिनी स्त्रियो का यक्षो के सान्निध्य क लिए वृक्षो के पास जाना अकित है।"[3]

'आय इस देश म उसी तरह नवागतुक थ, जिस प्रकार शक हूण आदि अन्यान्य विदेशी जातियाँ समय समय पर आयी और अपने सारे आचार विचार के साथ यही की हो रही। उपनिषदो का बहुधा विज्ञापित 'अध्यात्मवाद' आय की अपेक्षा आर्येतर अधिक है। वतमान भारतवष का धममत अधिकाश मे आर्येतर है। (हजारी प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवदी ग्रन्थावली खण्ड ६, पृष्ठ १९७–९८)

'परन्तु सबसे अधिक आर्येतर-प्रभाव साहित्य और ललित कलाओ के क्षेत्र म हुआ। अजता म चित्रित, साँची, भरहुत आदि म उत्कीण चित्र और मूर्तियाँ कालिदास के काव्य भारतीय नाटयशास्त्र आर्यो को दिया नही है। (वही, पृष्ठ १९८) ब्रह्मा ने नाटयवेद नामक पाँचवें वेद की सृष्टि की का अथ ही यह है कि यह वेद से बाहर की चीज थी।

1 हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के फूल पृ० 10
2 हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के फूल 13
3 हजारी प्रसाद द्विवेदी अशोक के फूल 12

असुरा ने नागों को बन्दी बना कर दास बना लिया था।[1]

शंख जटी नागों को रावण ने जीता था नाग मुदरिया को बन्दी बना लिया था। नागाह्वय नगर में धर्म चक्र का प्रवर्तन हुआ था। परवर्ती काल में नागाह्वय हस्तिनापुर को कहते थे। नागाह्वय का वर्णन है वह गोमती तीर पर था।[2]

पर्वत में कुबेर के स्वर्ण तथा धन की रक्षा करने में नाग भी नियत थे।[3] बाल्मीकि— नाग— दवरूप है। यक्षों के महेन्द्र पर्वत पर नाग मिले हैं।[4] वरुण के दरबार में नाग दैत्य कुबेर के राक्षस, यक्ष गुह्यक गंधर्व अप्सरा, शिव यम के ब्राह्मण महात्मा तथा ऋषि और इन्द्र के गंधर्व तथा ऋषि एकत्र होते थे।

राक्षस पहले देवों के सहायक थे बाद में शत्रु हो गये। उनके वर्णना में पहले वे सुन्दर हैं। बाद में कुरूप हैं। पहले हारते हैं फिर हराते हैं। वे यक्षों से अलग हैं। फिर उनमें ही घुलमिल मिलते हैं। उनमें यही गुण विद्यमान हैं। दक्षपुत्री खसा के पुत्र ही यक्ष और रक्ष थे। यक्षों के लाल नेत्र काले शरीर हैं वे कुबेर के रक्षक हैं। एक ही राक्षस हैं। राक्षस का अर्थ रक्षक है। राक्षस पौलस्त्य और यातुधान हैं।[5] ब्रह्मा का चौथा बेटा पुलस्त्य था। राक्षस पौलस्त्य भी थे, नैऋत भी। अधर्म की पत्नी से नैऋत हुए।[7]

कुबेर उत्तर का महाराजा था। वह नरवाहन था। किन्नर गुह्यक गंधर्व भी इसके साथ थे। क्रमशः शिव के समान वह भी संसार का महाराजा है। उसका नगर अलका— विटपा है। पद्म और शंख उसके महाकोषरथ, जो साक्षात् खजाने थे।[8] नन्दन राक्षस उसके पुष्पक विमान को खींचते थे।

बौद्ध ग्रंथों में वर्णित जनजातियां

गन्धर्व— अंगुत्तरनिकाय में कहा गया है कि गन्धर्व असुर और नाग के साथी हैं। ये पूर्व दिशा के लोकपाल धृतराष्ट्र के शासन में हैं। धृतराष्ट्र के अतिरिक्त गन्धर्व-लोक के अन्य राजा हैं— पनाद उपमञ्ज मातलि चित्तसेन नल और जनसभ।

पञ्चसिख नाम का गन्धर्व बुद्ध का कृपापात्र था। उसने वीणा पर एक प्रेम गीत बुद्ध को सुनाया। शायद एक उपजाति (class) जो अपने बाल पांच गांठ बांध कर रखते थे। (बुद्धघोष)

कुम्भण्ड— ये नाम इसलिये पड़ा क्योंकि इनका पेट बहुत बड़ा होता था

1 वही पृ० 51
2 वही 28
3 एपिक माइथालाजी पृ० 27
4 वही पृ० 28
5 वही पृ० 61
6 वही 38 39
7 वही 41
8 वही 142

और इनके जननाग मटकी जसे होते थे। य दक्षिण म रहते थे और इनका राजा विरूळ्ह था।

नाग— यह भारत की प्राचीन जाति थी। इसके कई निवास स्थान दिए हैं। सुमरु पवत के नीचे मजेरिका भवन। हिमालय म दद्दर पवत की तलहटी म दद्दर भवन, यमुना के जल म धतराट्ठनाग, नमम भील म नामसा नागा और वेसाली तच्छक और पयाग मे भी नाग रहते थे। विनय पिटक नागा के चार राजकुल बताता है— विरुपक्ख, इरापथा छब्यापुत्ता और कण्हगोतमका।

बुद्ध को कई जगह नाग कहा गया है। बोधिसत्त्व कई बार नागा के राजकुल म पदा हुए जसे अतुल, भूरिदत्त महादद्दर, आदि।

सुपण्ण— जिनकी नाग से बहुधा लडाई रहती थी और जिनसे नाग बहुत घबराते थ। इनकी एक जाति करोटि थी। इनके कइ राजाओ का मिथीकल वणन है। दो गरुड राजाओ न वाराणसी के राजा स जुआ खेला था। बोधिसत्त और सारिपुत्त पहले गरुड राजा होकर जन्मे थे।

किन्नर— पहाड पर और नदी के किनारे बसते थ। बुद्ध को मानते थे।

यक्ख— य अक्सर अमनुस्स कहे गय हैं और इनका देवा राक्खसा दानवा, गधर्वो किन्नरा और नागा के साथ वणन किया गया है। य लाभदायक भी दिखाय गय हैं और हानि पहुँचाने वाले भी। कुछ यक्षा को रुख दवता भी कहा गया है। य सब यक्ख प्रजाति के देवताओ का कहा गया है जिन्ह मानवा न भी पूजना शुरू कर दिया था।

वेस्सवण को यक्खा का राजा कहा गया है जो देवा के आपस के झगडे सुलझाता है। यक्खा का सेनापति इस काम म उसकी सहायता करता है।

कभी कभी मानवा की यक्खिनिया स शादी भी दिखाई गई है। जस विजय ने लका की यक्खी राजकुमारी कुवणी स शादी की थी।

यक्ख को अच्छा भी बताया गया है और भूत क समान भी बताया गया है। पर ज्यादा यक्खा और नागा का पुण्यजन कहा गया है।

असुर— असुरा को सयुत्तनिकाय म पूवदेवा कहा गया है। वे देवा म पहले स्वग म रहत थ। जब वे नशिकता स गिर गए और देवा स लडने लग तो उनका स्वग-मन्न समाप्त हो गया और असुर बन गए।

यक्ष

प्रागैतिहासिक धर्मिक प्रथा म कुछ अमानवी प्राणिया 'य ' का वणन मिलता है लकिन ये ' ' न थम। ये रग के बराबर धनवान और बुद्धि भी नहीं बताए गए हैं। शतपथ ब्राह्मण म उत्तर दिशा के नायक कुबेर को रक्षा (राक्षसा) का राजा भी कहा गया है तथा उसका दूसरा नाम वश्रवण से पुकारा गया है। महाकाव्या म यक्षा का भला

आदमी और आधे देव मान लिया गया है तथा कुबेर की रक्षा के राजा रावण से लड़ाई दिखाई गई है। कुबेर और मणिभद्र को रामायण में महात्मन् कहा गया है। महाभारत के यक्ष प्रश्न से पता चलता है कि उस समय यक्षों का कितना आदर होने लगा था। यहां तक कि कुबेर को चार लोकपालों में से एक लोकपाल बनाया गया। भरहुत साँची मथुरा आदि में प्राप्त यक्षिणी मूर्तियों की गढ़न और बनावट देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यक्ष जाति पहाड़ी थी। हिमालय का प्रदेश ही गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास भूमि है। वे नाच गान में कुशल थे। यक्ष तो धनी भी थे। वे लोग वानरों और भालुओं की भांति कृषिपूर्व स्थिति में भी नहीं थे और राक्षसों और असुरों की भांति व्यापार वाणिज्य वाली स्थिति में भी नहीं। वे मणियों और रत्नों का सन्धान जानते थे पृथ्वी के नीचे गड़ी हुई निधियों की जानकारी रखते थे और अनायास धनी हो जाते थे। सम्भवतः इसी कारण उनमें विलासिता की मात्रा अधिक थी।

यक्ष महान् व्यापारी थे और अत्यन्त धनवान भी। उनके देवताओं कुबेर और लक्ष्मी का धन का देवता स्वीकार किया गया। दीवाली का पुराना नाम यक्षरात्रि था जिसमें कुबेर और लक्ष्मी की पूजा होती थी। जब अनेक जनजातियों से मिलकर आज का भारत जनपद बना तब इस प्रमुख त्योहार माना गया और भगवान् राम के विजय प्रवेश से इसे मिला दिया गया। जैसे २४ दिसम्बर को सूर्य के अयन परिवर्तन के पगन त्योहार को (जिस दिन से दिन बड़ा होना शुरू होता है) बाद में ईसाइयों ने क्रिसमस करके मनाना शुरू कर दिया था।

यह भी मानी हुई बात है कि शिकारी या किसान की बजाय व्यापारी को बोली और लिपि अर्थात् भाषा की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। भारत की सबसे पुरानी भाषा पुरानी प्राकृत सम्भवतः यक्षों की ही थी।

प्रलय के बाद वैवस्वत मनु ने एक अविस्मरणीय काम किया था— समस्त जनजातियों को मिलाकर एक करने का प्रयत्न उन्हें जनजातियों के आधार पर न बांटकर काम के आधार पर बांटने का प्रयत्न। इस काम ने धीरे धीरे गति पकड़ी। भारत इतना बड़ा देश है कि इस नियम की प्रगति हम पूरे ऐतिहासिक युग में देख सकते हैं और यह आज भी जारी है। जिन जनजातियों ने या अनजाने महापुरुषों ने राज्य स्थापित किए और न्याय और धर्म से शासन आरम्भ किया उन्हें क्षत्रिय वर्ण में स्थान दिया गया और पुराने वीरों से उनके वंश को सम्बन्धित दिखाया गया जिससे वे उनके पदचिह्नों पर चल सकें।

यह नियम बाद के मौर्य सातवाहन पल्लव कदम्ब वाकाटक गुप्त और अनेक राजपूत वंशों पर ही नहीं लगाया गया मेरे विचार से पुराणों के जब नए संस्करण हुए तब पुराने वीरों पर भी लगाया गया। केवल अयोध्या का इक्ष्वाकु वंश ऐसा है जिसकी दो हज़ार वर्ष से ऊपर की वंशावलि हमारे पास है। ययाति

पुरु के सोम वंश को, जो पूर्व में इलाहाबाद के पास प्रतिष्ठान में राज्य कर रहा था ऐक्ष्वाक मांधाता ने उखाड़ फेंका। अनेक साल बाद चार सौ मील पश्चिम में एक अनजान वीर दुष्यंत (पर्वत से सम्बंधित, क्या यक्ष?) ने नागों से गंगा तट का उनका नगर नागवहपुर (उसका हस्तिनापुर नाम तो उसके छठे वंशज हस्तिन् ने दिया) छीनकर अपना राज्य स्थापित किया तो उसे पुरु और तुर्वशु के सम्मिलित वंश का बताया गया। दुष्यंत के बेटे भरत पर यह वंश भारत वंश कहके चला जिसे कभी-कभी पौरव भी कहा गया और समाप्त हो गया। अनेक वर्ष बाद कुरुजांगल की एक जनजाति के वीर कुरु ने हस्तिनापुर जीतकर अपना कौरव राज्य स्थापित किया तो उसका वंश भी भरत से जोड़कर प्राचीन सोम वंश बना दिया गया। महाभारत में धृतराष्ट्र आदि को कौरव पौरव, भारत सब कहा गया, अयोध्या के राम के वंशजों को मांधात्रेय सागर या रामेय क्यों नहीं कहा गया (महान् मांधाता सगर और राम के ऊपर जिन्होंने पुरु आदि से अधिक वीरता के काम किये थे)?

बुद्ध और महावीर की जनजाति

यही ऊपर वाला फार्मूला महावीर और बुद्ध पर लगाया गया। महावीर को ब्राह्मण कन्या देवनन्दा का पुत्र बनाया गया और कहा गया कि उनका भ्रूण देवनन्दा के गर्भ से निकालकर त्रिशला के गर्भ में स्थापित कर दिया गया। उनके पिता सिद्धार्थ और त्रिशला को वज्जि वंश के ज्ञातृ गोत्र का राजा बताया गया जो इक्ष्वाकु वंश का बताया गया। इसी प्रकार गौतम बुद्ध को शाक्यों के राजा शुद्धोदन का पुत्र बताया गया जो इक्ष्वाकु वंश का था।

हम जानते हैं कि वैशाली और कपिलवस्तु दोनों जगह प्रजातन्त्र था। वहाँ राजा होने का प्रश्न ही नहीं उठता था। वहाँ राजा उन्हें कहा जाता था जिन्हें सभा में मिलने और बाँटने का अधिकार था। वे अनेक भूमिपतियों या गद्दियों में से एक होते थे।

ये इक्ष्वाकु कुल के नहीं थे मेरे विचार से प्राचीन महान् यक्ष जाति के थे।

१ दोनों के साहित्य में यक्ष चैत्य महत्वपूर्ण स्थान लिए है।

२ दोनों यक्षों से परिचय हो जाता दिखाते उत्तरी भारत के अनेक यक्ष चैत्यों और आयतन के भी नाम मिलते हैं जिनको लेकर जन सूत्र। सो से ऊपर चैत्यों के नाम हम अलग अलग दोनों सम्प्रदायों के साहित्य में मिलते हैं। कुछ नाम समान भी हैं जैसे वैशाली का बहुपुत्त।

३ दोनों महावीर और बुद्ध अधिकतर नगरों में जाकर उद्यान (उद्यान) में स्थित यक्ष चैत्यों में ठहरते थे और वहां अपना उपदेश देते थे जो नागों के मठों में या मंदिरों में उसमें न थे बराबर।

४ जैनों ने प्राचीन प्राकृत में (अर्ध मागधी और पालि जिसकी आगे चलकर शाखा बनी) उपदेश दिये जो सम्भवतः महान् यक्ष जाति की भाषा थी। अपने प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम के पूछने पर महावीर ने उत्तर दिया था कि जनता की भाषा अर्ध मागधी वास्तव में देवताओं की भाषा है।

५ *मणिभद्र यक्ष जिनके चैत्य मिथिला और वर्धमानपुर में वर्णित हैं और* जिसका पूजन युधिष्ठिर ने भी किया था यात्रियों और व्यापारियों का देवता था। बौद्ध सूत्र उसका चैत्य गया में भी बताते हैं। यह यक्ष भी जैनों का पूज्य है। (सम्भवतः यक्ष चैत्यों और आयतनों से ही हिन्दू मन्दिर का आरम्भ हुआ हो।)

६ यक्ष महान् व्यापारी और सट्टी थे। अधिकतर जैन आज भी अपने को वैश्य मानते हैं। मध्य काल में गुजरात और दक्षिण के इतिहास में भी हम जैनियों को व्यापारी और सट्टी पाते हैं।

७ दोनों के साहित्य में कुछ देवकुल (मन्दिर) भी वर्णित हैं परन्तु दोनों भगवान् वहां ज्ञान और उपदेश देने से कतराते थे।

८ यह मानी हुई बात है कि यक्ष-पूजा वास्तव में अवैदिक है और सम्मिश्रण के उपरान्त ही यक्ष देवताओं को आदर मिला है। शिव, गणपति स्कन्द दुर्गा ऐसे ही देवता हैं जो बाद में मानव धर्म में पूजे गए। वेद और वेदांग में मन्दिरों का वर्णन नहीं है और यक्षों में आरम्भ से देवताओं का वर्णन है जिन्हें फूल पत्ती चन्दन और अगर से पूजा जाता था। यह मानी हुई बात है कि मूर्तिपूजा एक अनार्य प्रथा थी जो यक्षों से मानव धर्म में अपनाई गई। मूर्तिपूजा भी प्राचीन वृक्ष पूजा से निकली क्योंकि हर तीर्थंकर एक विशेष वृक्ष से सम्बन्धित दिखाया गया है। प्राचीन चैत्य भी पूजे जाने वाले वृक्ष के चारों ओर ईंटों का गोल घेरा या स्तूप था। संस्कृत में चैत्य का अर्थ ही पवित्र वृक्ष है। धम्मपद में उज्जैन और गौतमक पूजास्थलों को रुक्ख चेतिय (वृक्ष चैत्य) कहा गया है। इन्हीं चैत्यों में आगे चलकर बुद्ध के अवशेष पूजने के लिये रखे गये और फिर तीर्थंकरों और बुद्ध की मूर्तियां।

९ मूर्तियों में भी लगता है कि वे वस्तुतः सम्भव है यक्ष जाति के थे।

१० यक्षराज कुबेर जैनियों और बौद्धों के सबसे अधिक पूज्य देवता हैं यह दोनों के साहित्य से स्वयंसिद्ध है।

११ जैनियों की सबसे पुरानी रामायण पउमचरियं में विमलसूरि ने वाल्मीकि को राक्षसों को निर्दयी दिखाने की बुराई की है। राक्षस (यक्षों की एक शाखा) रावण कुम्भकर्ण आदि को उसमें शाकाहारी विद्याधर दिखाया है जो अहिंसा में विश्वास करते थे। भगवान महावीर की जनजाति को उन्होंने बुरा नहीं दिखाया।

१२ क्रिसमस की तरह पुरानी यक्षरात्रि को मानवों ने राम की विजय में

अयोध्या वापसी मानकर दीपावली मनाकर पूजा। उसके संस्कार यहां के निवासियों के मन में इतने गहरे थे कि महावीर जी के मरण दिवस का रूप लेकर वह जनियों का भी पर्व बन गया।

१३ प्रमुख शिष्यों को गणधर कहा गया है जिसका अर्थ है जनजाति (कबील) का मुखिया।

१४ बौद्धों और जैनों का दक्षिण में इतनी जल्दी प्रचार कैसे हुआ यह आश्चर्यजनक है। प्रत्यक्ष लगता है कि मगध और पूर्वी उत्तर प्रदेश वासियों का एक बहुत बड़ा भाग दक्षिण में रहता था जो उनकी जैसी भाषा बोलता था और जिनके वैसे ही रीति रिवाज थे। क्या यह यक्षों के दक्षिण पलायन का सबूत नहीं है? क्या यक्षों में पला ब्रह्मवाद दक्षिण से भक्ति का रूप लेकर फिर लौटकर उत्तर विजय करने नहीं आया?

१५ वीर या बरह्म आज भी लोक में यक्ष देवता को पुकारा जाता है। हनुमान को पूजने पर महावीर नाम मिला (बड़ा यक्ष)। इसी प्रकार जैनियों के बारहवें तीर्थंकर वर्धमान जब कैवल्य को प्राप्त हुए तब जैनों ने उन्हें महावीर (बड़ा यक्ष) का नाम दिया। वानर और रक्ष तो यक्षों की उपजाति थी, क्या नाग भी यक्षों का एक कुल था?

१६ गौतम बुद्ध के उत्पन्न होने पर उनके पिता शुद्धोदन उन्हें शाक्यवर्धन यक्ष के चैत्य में आशीर्वाद दिलवाने ले गए थे।

द्रविड

तमिळ के व्याकरणाचार्य ने अपने व्याकरण में यहां तीन ही जातियों का उल्लेख किया है— मवक्कल, देवर और नक्करर या नागर। शुद्ध द्रविड या तमिळ लोग मक्कल कहे गये हैं। देवर ब्राह्मणों के लिए आया है और नागर यहां के आदिवासियों के लिये, जिनमें नाग जाति के लोग भी सम्मिलित हैं। किसी समय दक्षिण में नाग जाति का बहुत प्रभाव था और वे बड़े शक्तिशाली थे। परन्तु धीरे धीरे द्रविडों ने उनको आत्मसात् कर लिया और आज उनका नाम ही अवशेष रह गया है। कुछ आदिवासी जातियां आज भी पहाड़ों और जंगलों में निवास करती हुई पाई जाती हैं जैसे नीलगिरि की टोडा जाति जो संभवत प्राचीन नागर जाति के वंशज हैं।

आज भी दक्षिण भारत में तीन प्रकार की मुखाकृति के लोग मिलते हैं जिससे उनकी जाति का भान होता है। आर्य लोग जिन्हें देवर कहा गया है अपेक्षाकृत गोरे रंग के होते हैं। उनका कद लम्बा होता है नाक ऊंची और नुकीली होती है होठ पतले और बाल लम्बे तथा मुलायम होते हैं। शुद्ध द्रविड लोग आदिवासियों से भिन्न हैं। वे न अधिक गोरे न एकदम काले पर गहरे या

लाल रंग के मझोले कद के लम्बे सिर और ऊँची नाक वाले होते हैं। ये स्परग म दक्षिण के आदिवासियों की अपेक्षा आर्यों से अधिक मिलते जुलते हैं।

आदिवासियों में भी अनेक जातियों के लोग मिलते हैं। नीलगिरि के टोडा लोग सावले रंग के हृष्ट पुष्ट होते हैं। उनकी नाक मोटी ललाट भरा हुआ और शरीर बालों से भरा हुआ होता है। इसके विपरीत मरवर बन्ना, कुरवर आदि जातियों के लोग काले नाटे चौड़ी नाक और मोटे होठ वाले होते हैं और कुछ बातों में अफ्रीका की नीग्रो जातियों से मिलते जुलते होते हैं।

तालरप्पियर ने मनु के आठ प्रकार के विवाह गिनाये हैं। उनमें द्रविड़ देश में गान्धर्व प्रकार का विवाह प्रचलित है जो गायन में और विवाह प्रथा में हमारे साथी हैं। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के तमिल रिसर्च के भूतपूर्व प्रोफेसर एस राघव आयंगर ने History of Tamil में तमिल प्रजाति को गन्धर्वों (यक्षों) की एक शाखा माना है उनमें गायन कामजीवन शिल्प और कला की समानता देखकर। विवाह की यही विशेषता यक्ष (रक्ष) संस्कृति की थी। शूर्पनखा ने राम से विवाह का निवेदन अपनी कुल प्रथा के अनुसार किया था। सारे पश्चिमी संसार में यह प्रचलित है।

मनु ने आपसी छाँट से विवाह को गान्धर्व विवाह नाम दिया लेकिन इसको वासना से प्रेरित कहकर इसकी बुराई की है।

शिल्प और कला द्रविड़ भाषा के शब्द हैं। (पुरानी प्राकृत या यक्ष भाषा के) जो बाद में संस्कृत में प्रयुक्त हुए।

दक्षिण में जो कुछ है वह आर्यों से पुराना है आर्य उसे नहीं ले गए। कार्तिकेय (सुब्रह्मण्य या षण्मुख) आर्य नहीं यक्ष देवता है और उसकी पूजा यक्ष और राक्षस अपने साथ ले गए जो आज सारे दक्षिण भारत में फैली है।

गन्धर्व

गन्धर्व यक्षों की ही एक उपकुल था। वैदिक युग में २७ गन्धर्वों का उल्लेख है। गन्धर्वों का राजा भी कुबेर ही है। अप्सरा यक्षों के साथ गन्धर्वों में भी मिलती है। स्वयं गन्धर्वी अप्सरा के समान सुन्दरी होती थी।[1] ये मूजवन्त पर्वत पर रहते बताए गए हैं जो कश्मीर के ऊपर है। ये सोम उगाते थे और उसे दवा को बेचते थे।

फिर ये भी नीचे उतर आए थे। हिमालय की तराई में इनके बड़े शक्तिशाली राज्य थे। अधिकतर मानव राजा और सम्राट इन्हें मित्र बनाकर रखते थे। पुरुरवा (लगभग ३०५० ईसा पूर्व) से लेकर अर्जुन, भीम (लगभग १४५० ईसा

1 एपिक मायथोलॉजी पृ० 156-157

पूव) तक इनक शक्तिशाली राज्या का वणन है। गधवराज चित्ररथ अजुन के समान वीर और उसका मित्र था। पाण्डवा के वनवास के समय उसन कण ममत सब कौरवो का हरा कर बदी बना लिया था। विश्वावसु हाहा हूहू अय महान गधवराज थे। सरस्वती पर गधर्वो का तीथ था।

गधव गाने बजाने के बहुत शौकीन थे। राजा विश्वावसु बडा अच्छा नृत्य करता था। सगीत का नाम ही गधव वेद कहा गया है। गधव फूलों तथा रेशम के बहुत प्रेमी थे। वन तथा गुहाआ म रहत थ। य भी यक्षा के समान वृक्ष-पूजा करत थे।[1]

पण्डिता न ठीक ही सुझाया है कि गधव और कन्दप वस्तुत एक ही शब्द के भिन्न भिन्न उच्चारण थे। बाद म कन्दप गधव दवता मार या कामदेव का नाम हो गया। न जान किस बुर मुहूत्त म मनोजन्मा दवता काम न शिव पर बाण फेंका था। शरीर जलकर राख हो गया आग 'वामन-पुराण (पष्ठ अध्याय) की गवाही पर हम मालूम है कि उनका रत्नमय धनुप टूटकर खण्ड-खण्ड हो धरती पर गिर गया। जहाँ मूठ थी, वह स्थान रुक्म मणि से बना था, वह टूटकर धरती पर गिरा और चम्पे का फूल बन गया। हीरे का बना हुआ जो नाह स्थान था, वह टूटकर गिरा और मौलसरी के मनोहर पुष्पा म बदल गया। अच्छा ही हुआ। इन्द्रनील-मणिया का बना हुआ कोटि-देश भी टूट गया और सुदर पाटल-पुष्पा म परिवर्तित हो गया। यह भी बुरा नही हुआ। लकिन सबस सुन्दर बात यह हुई कि चन्द्रकान्त मणिया का बना हुआ मध्य-दश टूटकर चमली बन गया और विद्रुम का बनी निम्नतर कोटि बला बन गयी— स्वग का जीतन वाला कठोर धनुप जो धरती पर गिरा तो कोमल फूला म बदल गया।

इसस पता चलता है कि गधर्वों को पुष्प बहुत प्रिय थ और उन्हान ही भारतीया का विभिन्न पुष्पो से परिचित कराया।

किन्नर

किन्नर भी यक्ष, गधव के समान किरात प्रजाति के पावत्य लोग हैं। महाभारत के वन-पव म इन जातिया की चर्चा है। किराता को नुकीली चोटी वाल, सोने के रग के, कच्चा मास और मछली खान वाला बताया गया है।

किन्नर हिमालय म रहत थ। जानका क अनुसार व चन्द्र पवत गधमादन मन्दारगिरि और त्रकूटक पवता पर रहत थे।[3] जातक हो बताते हैं कि व जाग

1 एपिक माययालॉजी पृ० 145–157

2 कालिदास कुमारसभव I 8

3 जातक सम्पादक कॉवल खण्ड 4 न० 485 पृ० 180 182

में घूमते थे और बाण के लेखन में किन्नर युगल पाया जाता है।[1] प्राचीन इण्डोनेशियन मंदिरों में भी वे दो जोड़ों के रूप में 'किन्नर युग्म युग्म' दर्शाए गए हैं।[2] एक जातक कथा में किन्नर किन्नरी का असीम प्रेम दिखाया गया है। दूसरी कथा में माता पिता के वन जाने के उपरान्त शिशु को किन्नरों द्वारा चुप कराना उनकी सहृदयता दिखाता है।

किन्नरों का अधिकतर शिल्प में घोड़े के मुख वाला मानव या मानव के मुख वाला घोड़ा दिखाया गया है। इसी कारण मोनियर विलियम्स, डाउमन और पिननौट ने उन्हें काल्पनिक प्राणी माना है। उनके दृष्टिकोण की आनन्द कुमार स्वामी ने आलोचना की है। हमारे साहित्य में भी अश्व मानव का वर्णन है। दध्यञ्च मुनि हैं जिनके अश्व का सिर था और जिन्होंने अश्विनीकुमारों को मधु विद्या सिखाई थी। अश्विनों को भी जगह जगह अश्व के मुख वाला कहा गया है। कुमारस्वामी ने अश्व मुखी पुरुष-नारायण और विष्णु के हयशिरस रूप को खोज निकाला। बोध गया साँची और पाटलिपुत्र के शिल्पों में यक्षिणी अश्वमुखी उनकी आँखों में न छिप सकी।

बाण की कादम्बरी में वन में आखेट करने किन्नर और किन्नरी अश्व मुखी हैं।[3] कालिदास ने किन्नरों को *मानव शरीर पर घोड़े के मुख वाला बताया है*[4] और यही अमरकोष में लिखा है।[5] माघ ने शिशुपालवध में किन्नर घोड़े के मुख वाले और घोड़े के मुखौटे के साथ दर्शाए हैं।[6]

इन और अन्य उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि यह किरात-कुल मानव था और अश्व का मुखौटा पहनकर विचरण करता था। उसी प्रकार जैसे वानर कुल बन्दर का मुखौटा लगाता था और ऋक्ष कुल रीछ का। ये दोनों भी किरात प्रजाति के थे जो रामभा का अनुसरण कर दक्षिण में पहुँच गए थे। जब बहुत समय बीत गया और देव यक्ष गन्धर्व किन्नर का भेद मिट गया केवल मानव जाति रह गई तब समय की दूरी के कारण ये काल्पनिक प्राणी बन गए और कुछ कलाकारों ने अश्व मुखी मानव के स्थान पर मानव मुखी अश्वों को शिल्प में उकेरा। अन्य ने मानव मुखी अश्व के स्थान पर पक्षी का निचला धड़ बनाया। समय की इसी दूरी ने देवों यक्षों गन्धर्वों आदि को स्वर्ग में पहुँचा दिया और

1 कादम्बरी पृ० 239–40
2 Alfred Foucher Beginnings of Buddhist Art पृ० 241 फुटनोट 1
3 कादम्बरी पृष्ठ 240–41
4 कुमारसम्भव I 16
5 अमरसिंह अमरकोष 1–2
6 माघ शिशुपालवध 4 | 3 –38

देवा की अमरावती अफगानिस्तान के स्थान पर यक्षा की लीलाभूमि गगा के विभिन्न स्थाना के मध्य स्थापित कर दी।

किन्नर वाद्य के शौकीन थे। वे सिर पर मुकुट पहनते थे और उनके हाथ म वीणा थी।[1] इसी भाति अग्नि पुराण ने भी किन्नरा के हाथ म वीणा दी है।[2] पत्थर म किन्नर बासुरी लिए भी उकेरे गए ह और पाल सेन काल के शिल्प न उनके हाथ म शख और झाम मजीर दर्शाए हैं। विष्णुधर्मोत्तर ने किन्नर के हाथ म किसी विशेष वाद्य का सम्बन्ध नहा बतलाया है केवल इतना लिखा है कि किन्नरा को गीतवाद्यसयुक्त सगीत के वाद्या का पकडे दिखाया जाना चाहिए।

किन्नरा का शिव की दक्षिणा मूर्ति का पूजक बताया गया है।[3] कुछ स्थला पर वे कुबेर के अनुचर बताए गए है।[4] अन्य स्थला पर व सुब्रह्मण्य के परिवार देवता दिखाए गए है।[5] कुछ स्थाना म वे कृषि-क्षेत्रा के रक्षक माने जाते ह।[6] जैना न उन्ह अपन व्यानर देवा की सूची म सम्मिलित किया है और विशेष महत्त्व की बात यह है कि तीथकर धमनाथ स सम्बन्धित यक्ष को किन्नर नाम दिया गया है।

किन्नरो को अनक चित्रा म भी दर्शाया गया है। अजन्ता गुफा न० १ म एक किन्नर वीणा बजा रहा है और उसकी किन्नरी मजीर बजा रही है। व बोधिसत्व अवलाकितश्वर जा उनके पास लालित्य से खडे है, का मनोरजन कर रहे हैं। अन्य चित्र नालन्दा, पहाडपुर, एहोल, महाबलिपुरम्, काचीपुरम् रामश्वरम् आदि के मन्दिरा म पाए गए है।

वातरशना

' 'वातरशना कुछ दिगम्बर जमा शब्द है। अथ है हवा ही जिनकी रशना या मेखला है— नग्न। य मुनयो वातरशना (जूति देवजूति, विप्रजूति कृपाणक करिक्रत्व, एतश, ऋष्यशृग) ऋग्वेद १० | ११ | ८ के ऋषि हैं। य अगस्त्य, वशिष्ठ आदि की भाति 'कुम्भज' ह। कुम्भ स्त्री के गर्भाशय का कहते हैं। कोई स्त्री प्रधान समाज (म) जो आर्य सभ्यता के अन्तगत नहा थे, और जहा पिता अज्ञात हुआ करत थ य उत्पन्न हुए होंगे एसा कुछ प्रामाणिक विद्वान मानत हैं। मोहनजो दडो म प्राप्त तालाबो को देखकर अनुमान किया गया है कि य किसी

1 H Krishnasastri South Indian Images of Gods & Goddesses p 251

2 अग्नि पुराण अध्याय 15 श्लोक 17

3 G N Rao Elements of Hindu Iconography Vol II Part I p 277

4 G Albert Buddhist Art in India p 47 f n 2

5 जी एन० राव वही Vol II Part II पृष्ठ 44

6 दासगुप्ता गन्धर्व एण्ड किन्नर इन इंडियन आर्कोलॉजी पृष्ठ 44

पुरा इतिहास मे यक्ष

भारत का पुरा इतिहास जानने के लिए पुराण और महाकाव्य भण्डार गृह हैं। पुराण म गर्वोक्ति है और सही है कि पुराण का पारायण किय बिना वद का अथ नही समझा जा सकता। वदव्यास ने लिखा है जो कोई सागोपाग वेद को तो पढे परन्तु पुराणो का अध्ययन न करे, वह विद्वान् नही हो सकता। वद ललित साहित्य है, काव्य है। उसमे जो कही-कही इतिहास का वणन है या समय का वणन है या लखक का वणन है वह बिना पुराण मे वर्णित इतिहास का मम जाने बिना समझ म नही आ सकता। जिन वेदव्यास न वद का सकलन किया है, उन्होने ही पुराण का,[1] और बिना सोचे समझे उन्होने इतनी गहन बात नही कही होगी।[2]

पुराणो का बीज वैदिक काल म भी विद्यमान था। पुराण की परम्परा तब भी थी—

'ऋच सामानि छदासि पुराण यजुषा सह। (अथववद ११ | ७ | २४)

अर्थात् वेदमन्त्रो की रचना म पहले पुरानी कथाओ का कहना का चलन था।' उन्ही कथाओ को एकत्र करके वेदव्यास न पुराण सकलित किया।

पुराने ग्रन्थ म कहा गया है कि जो वद, वदाग उपनिषदा के साहित्य को तो जान, पर पुराणो को न जाने, वह विचक्षण नहा हो सकता। इतिहास और पुराणो के अनुशीलन से वदो की छानबीन करनी चाहिए। जो व्यक्ति इतिहास पुराण की परम्परा को कम जानता है— अल्प-श्रुत है—उसस वद डरा करता है क्योकि वह समझता है कि यह अल्पज्ञ मुझे चोट पहुँचायगा।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् सागोपनिषदो द्विज ।
न चेत् पुराण सविद्यान्न स स्याद् विचक्षण ।
इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामय प्रहरिष्यति ।[3]

---

1 महाभारत आदि पव 63 अध्याय 105 अध्याय वायु पुराण 60 | 11-12 विष्णु पुराण 3 | 4 | 2; कूम पुराण 1 | 52 | 10 इत्यादि

2 देखिए ग्रन्थ भारतीय पुरा इतिहास कोश

3 वायु पुराण 1 | 200-201 पद्म पुराण 5 | 2 | 50-52 शिव पुराण 5 | 1 | 35, इत्यादि

पुराण शब्द का अर्थ पाणिनि ने 'पुरा भवम्' अर्थात् प्राचीन काल में होने वाला बतलाया है। 'पुरा नव भवति' अर्थात् जो पुराना होकर भी नया होता है वह पुराण है— यह महर्षि यास्क का कथन है। वायु पुराण में लिखा है 'पुरा अनति' जो प्राचीन काल में जीवित था। पद्म पुराण के अनुसार 'पुरा परम्परा वष्टि कामयते'। इसका अर्थ है जो प्राचीन परम्परा की कामना करता है वह पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण की व्याख्या सबसे सटीक बैठती है— 'पुरा एतत अभूत।' अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ था।

श्री राघवाचार्य अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन' में पृष्ठ ४ पर याज्ञवल्क्य स्मृति व छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य देकर लिखते हैं कि "विश्व की अष्टादश विद्याओं में एक विद्या के रूप में उन्होंने (विद्वानों) ने उस (पुराण) की गणना की और समाजधारक धर्म के चतुर्दश सिंहासनों में एक पर उसको स्थापित किया। अपौरुषेय (वेद) मान के समकक्ष उसकी प्रतिष्ठा की। परम्परा क्रम से उसका अध्ययन व अध्यापन चलता चलता रहा। युग युग में उसका संकलन और सम्पादन होता रहा।"

पुराण में क्या होना चाहिए यह उसी में वर्णित है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

पुराण के पांच लक्षण हैं— (१) सृष्टि की उत्पत्ति (सर्ग) (२) प्रलय और फिर सृष्टि (प्रतिसर्ग) (३) देवताओं की उत्पत्ति और वंश परम्परा, (४) मन्वन्तर (विभिन्न मनुओं का काल) (५) मनु के वंश का विस्तार। ये सब प्राचीन इतिहास के भाग हैं।

पुराणों का जिन विद्वानों ने गहन अध्ययन किया है वे महान् पुराणज्ञ पार्जिटर आई सी एस के कथन से सहमत हैं कि मूल पुराण वेदव्यास द्वारा सम्पादित एक था। सैकड़ों वर्षों बाद ब्रह्मा विष्णु महेश की पूजा के प्रवेश के बाद उनके अनुयायी पण्डितों ने उसे अपने इष्टदेव की पूजा में बनाकर अनेक ग्रंथ रच डाले।

पार्जिटर और अन्य विद्वानों ने एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात बताई। मूल पुराण *किसी और भाषा का ग्रंथ था। आज जो अठारह पुराण पाए जाते हैं वे इसका* संस्कृत में अनुवाद हैं। यह उन्होंने पुराणों की संस्कृत में काव्यगत अनेक कमियों को दर्शाते हुए सिद्ध किया। वैदिक भाषा पढ़े लिखों की भाषा थी और पुराण जन भाषा थी। तभी बाद में पण्डितों ने कहा कि पुराण वेद के गहन तत्त्वों को जनता को समझाने के लिए रचे गए थे।

मूल पुराण की भाषा क्या थी? वेदव्यास ने लिखा है कि सूत और मागध

का वक्तव्य था कि वे पुराण को कण्ठस्थ रखें। ये दोनों जानियाँ वेद-बाह्य थीं। क्या इनकी भाषा मागधी थी, मूल प्राकृत ? हिंदी के पाणिनि महान् वैयाकरण, किशोरीदास वाजपेयी ने सिद्ध किया है कि हिंदी संस्कृत से निकली भाषा नहीं है क्योंकि दोनों की व्याकरण भिन्न है। प्रारम्भ में एक भाषा थी मूल प्राकृत कह सकते हैं क्योंकि प्राकृत बाद में भी हमारे सामने आती है। वह प्राकृतिक भाषा थी, उसे सुसंस्कृत करके संस्कृत बनी, पर वह ऊपर के तबके की भाषा रही। मूल प्राकृत अनेक जन-जातियों में बोली जाने के कारण अर्ध मागधी पालि प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं में परिवर्तित होती रही।[1] डॉ० रामविलास शर्मा ने अपने महान् ग्रन्थ 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, ३ खण्ड' में यह दिखलाया है कि मूल प्राकृत से ही तमिळ, आदि तथाकथित द्रविड भाषाएं निकली हैं। और आज के कुछ दक्षिणी विद्वानों की भी यही प्रतिस्थापना है। हो सकता है यह भाषा यक्षों की हो और उन्हीं के साथ दक्षिण गई हो। वहां अलग थलग पडकर उसका स्वतन्त्र रूप से प्रस्फुटन हुआ हो।

कुबेर

यक्षों के अधिराज कुबेर का सबसे पहले वेद पुराण और महाकाव्यों में वर्णन पाया जाता है। जिस प्रकार मूल इन्द्र ने देव जनजाति को अपनी सहचर असुर जनजाति के पंजे से छुड़ाकर उस संस्कृति की पहली सीढ़ी पर पहुँचाया था उसी प्रकार कुबेर ने यक्ष जनजाति को व्यापारी बनाकर स्वर्ण की खोज कर सभ्यता और समृद्धि की चोटी पर पहुँचाया। उसके निवासस्थान को अथर्ववेद में ब्रह्मपुर (यक्ष का ब्रह्म पुराना पर्याय है) कहा गया है। इस पुरी की विशेषता यह है कि इसमें अमृत का निवास माना जाता है। कहा गया है कि इस पुरी में हिरण्य का कोश था। कुबेर के स्थान में सुवर्ण का अक्षय कोश माना ही जाता था।[2]

यक्षों का देव जनजाति पूरा सम्मान देती थी और गन्धर्वों (यक्षों के साथ की जनजाति) के द्वारा उनसे व्यापार करती थी। जो वर्णन कुबेर की राजधानी अलकापुरी का है वही इन्द्र की अमरावती का पाया जाता है सिवाय अमृत और स्वर्ण के कोश को छोड़कर। कुबेर को इन्द्र का मित्र माना गया है और शिव से भी उसकी मित्रता थी।

लेकिन वैदिक काल के अंत में यक्षों से प्रतिस्पर्धा होने पर कुबेर को राक्षस बनाया है, पापियों और डाकुओं का राजा बनाया है।[3] उसके गण बच्चों में बीमारी फैलाते हैं। बाद में यक्षों को रोगों का देवता कहा गया है।

---

1 विस्तार से 'भाषा और धर्म' अध्याय में वर्णन है।
2 वासुदेवशरण अग्रवाल प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ० १२३-४
3 शतपथ ब्राह्मण

गणेश

किरात प्रजाति (भाट ग्रामा) के अनेक गण (जनजातियाँ) उस समय उत्तरी भारत म रह रही थी— यक्ष गन्धर्व किन्नर गुह्यक किंपुरुष, भाट पिशाच आदि। यक्षा के अधिक प्रबल होने पर इन गणा ने भी कुबेर को अपना गणपति या गणेश मान लिया और उसकी पूजा करनी आरम्भ कर दी।[3] महाभारत म कुबेर को कुछ स्थाना पर गणेश कहा गया है।

काशी को भी यक्षा ने बसाया था। वहाँ इनका नाग गरुड सुपर्ण आदि जनजातियों म संघर्ष हुआ जो इनसे किंतनी सभ्य ता नहीं थी परन्तु संख्या म बहुत था। व शिव को पूजते थे। पुराण बौद्ध और जैन ग्रन्थों म इस संघर्ष का वर्णन है जिसम शिव के गण विजयी हुए और यक्षा को काशी नगर की सीमा से बाहर कर दिया। यह एक तरह स धनी और निर्धन का संघर्ष था।

लेकिन थोडे दिना म यक्ष सभ्यता ने इन जनजातिया पर विजय प्राप्त की। कुबेर गणेश का रूप धारण कर फिर पुजने लगे। यहा शिव पुराण की गाथा का अन्तर्भाव लगता है जिसम शिव ने गणेश का सिर काट दिया था परन्तु पार्वती (पर्वत-पुत्री) के कहने पर हाथी का सिर जोड दिया था। कुबेर का हर स्थान पर शिव के बराबर होने का वर्णन है। परन्तु अनुभूति के उपरान्त वह गणेश के रूप म शिव और पार्वती का अयोनिज पुत्र मान लिया गया।[1] पार्वती ने अपने शरीर के उबटन का मूर्ति बनाकर उसे सजीव किया था।[2]

कुबेर के ऋद्धि और सिद्धि दो पत्नियाँ थी। यही गणेश की हैं। वही रंग लाल लम्बा बाहर को निकला हुआ उदर चार हाथ और चारों हाथा म वही कुबेर के पद्म शंख चक्र और अंकुश। गणेश को शुभ का देवता कुबेर के समान माना जाता है। कोई भी काम करने स पहले श्री गणेशाय नमः लिखकर या पूज कर आरम्भ किया जाता है। यही कुबेर के साथ था और आज भी अनेक लोग श्री कुबेराय नमः लिखकर काम आरम्भ करते है। कुषाण काल के शिल्प म कुबेर और उनकी पत्नी लक्ष्मी की मूर्ति पाई गई है। वही गुप्त काल म और आज तक गणेश लक्ष्मी के रूप म दिवाली के दिन पुजते है।

जहा भारत के अधिकतर वासियो के लिए गणेश शुभ के देवता थे वहा देव तथा उनसे सम्बन्धित जनजातियों के लिए व विघ्नकारी कहे गए है। गणेश उनके काम म विघ्न डालते है अर्थात् यक्ष आदि से उनका संघर्ष होकर हार होती होगी।

---

1 ब्रह्म वैवर्त पुराण 3 | 8 शिवपुराण 105

2 पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 43 स्कन्द पुराण 7 | 1 | 38 मत्स्य पुराण 153

कार्तिकेय

गणश तो पूजनीय देवता का नाम है। किन्तु कार्तिकेय हाड माम के मनुष्य हैं। प्राचीन भारत के इतिहास मे यह विशेषता रही है कि जिस व्यक्ति पर बचपन म दु ख पडे हैं या जिसे अपना जीवन स्वय बनाना पडा ह वह महान् व्यक्ति बन गया। इन्द्र को अपन पिता द्यौस से लडना पडा। स्वायम्भुव मनु को अपना नीड नए स्थान पर बसाना पडा। पृथु को पिता वेन की हत्या के बाद छिपकर रहना पडा। ववस्वत मनु को प्रलय का सामना करना पडा। दोनो सावभौम चक्रवर्ती मान्धाता और भरत का बचपन भी दुखो म बीता। मान्धाता को माता की कोख फाडकर जन्म देना पडा जिसम मा मर गइ। भरत का शकुन्तला को दुष्यन्त के न पहचानने के बाद मारीच ऋषि के आश्रम म जन्म हुआ। सगर को भी सौतेली मा न विष देकर मारना चाहा। राम लक्ष्मण को अनेक वष विश्वामित्र के आश्रम म माता पिता म दूर बिताने पडे। इसी प्रकार कार्तिकेय का जन्म गगातट पर एक सरकण्डे के वन म हुआ था। उसके यक्ष माता पिता उस वहा छोड गए थे और उसे छह कृतिका बहना (यक्षा की एक उपजाति) न पाला था। इन माओ के कारण उसका नाम कार्तिकेय पडा। वह बडा हृष्ट पुष्ट बच्चा था, छह माओ का दूध पीन के कारण उसका नाम षण्मुख भी पड गया।[1] आग चलकर वह ब्रह्मा का बेटा ब्रह्मण्य या सुब्रह्मण्य भी प्रसिद्ध हुआ। बस उसका नाम स्कन्द रखा गया। इतन नाम उसके पुराण और महा काव्य म मिलते हैं। साथ ही उत्तरी भारत, दक्षिणी भारत और श्रीलका म भी उसके ये नाम प्रसिद्ध हैं।

स्कन्द आग चलकर यक्षा के एक कुल का नेता बना। उस समय चौथा देवासुर सग्राम हो रहा था और तारकासुर से देवगण हार रह थ। देवा न भिन्न यक्षा स सहायता माँगी। यक्षा न सग्राम म भाग लेन से मना कर दिया, परन्तु कार्तिकेय न 'वय रक्षामि' का नारा देकर सहायता देन का वचन दिया। उसके नेतृत्व म अनेक गणो, कुछ यक्ष गन्धर्व किन्नर नाग, पिशाच भूत आदि ने इन्द्र की सहायता के लिए प्रस्थान किया। वे सब रक्ष या राक्षस कहलाए। इन्द्र ने प्रसन्न होकर कार्तिकेय को पूरी देवसेना का सेनापति बना दिया। भीषण रण हुआ जिसम तारक मारा गया और असुरा की शक्ति तोड दी गइ। देवा न कार्तिकेय को इन्द्र पद क लिए चुन लिया। (इन्द्र चुना जाता था। आग नहुष भी इन्द्र पद पर बठा। तभी किसी ऋषि या राजा के प्रसिद्ध हो जाने पर पुराने इन्द्र को अपन पद की चिन्ता लग जाती थी और वह उस पदच्युत करन किसी अप्सरा को भेजता था। विस्तार के लिय दखिये 'भारतीय पुरा इतिहास कोश'।)

1 वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड सग 37

जिन रक्षा या रा क्षसा न देवा की रक्षा का थी, व ही कुछ समय बाद देवा के लिए भार बन गए। कार्तिकेय ने देव रमणिया के साथ आमोद प्रमोद करना आरम्भ कर दिया।[1] महाभारत म इन्द्र ने वज्र से स्कन्द पर प्रहार किया। उत्तर वैदिक काल म राक्षस असुरा का पर्याय बन गया। उत्तर-पश्चिम भारत म देवो और राक्षसो म शक्ति परीक्षण होने लगा। संस्कृत साहित्य म कार्तिकेय को चारा का सरदार आदि अपशब्द कहे जाने लगे। राक्षसा के दक्षिण जाने के साथ साथ कार्तिकेय की पूजा उधर होने लगी और आज भी वे दक्षिण तथा श्रीलंका के पूज्य देवता ह। गुप्त काल तक उनका प्रभाव मध्य भारत म था तभी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बेटे और पोते का नाम कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त रखा गया था।

दक्ष प्रजापति (लगभग ३१५० ई० पूव)

यक्षा की शक्ति और सभ्यता उत्तर मध्य भारत और पूर्वी भारत म फलती जा रही थी। मनुओ न सरस्वती तट पर पृथूदक (पेहोवा) के पास नई देव बस्तियां बसाई था। प्रलय स कुछ पहले दक्ष प्रजापति के समय शिव की पूजा न करने पर उसके यज्ञ का विध्वंस शिव के प्रधान गण वीरभद्र न किया। 'भद्र यक्षा म देवा के आय वे समान सामान्य जन को सम्बोधित करने का शब्द था।[1] बुद्ध आदि को भी भद्र कहा गया है। संस्कृत नाटको म भी भद्र नाम स पहले सम्बोधन के लिए अनेक स्थलो पर प्रयुक्त हुआ है। कुबेर के प्रधान अनुचर मणिभद्र पूर्णभद्र आदि की पूजा बुद्ध और महावीर क समय तक उत्तर प्रदेश और मगध म अनेक स्थानो पर होती थी। व यक्षा के कुबेर के बाद प्रसिद्ध राजा थ जिनके महान् कार्यों के कारण उनकी पूजा कुबेर के समान होने लगी थी। वीरभद्र भी सम्भवत दक्ष के समय यक्षा का राजा था।

प्रलय (३१०२ ईसा पूव)

३१०२ ईसा पूव म प्रलय हुई। अनेक बस्तियां उजड गइ। कइ जनजातियां नष्ट हो गइ। मत्स्य जनजाति के कारण वैवस्वत मनु ऊचे पवतो पर चला गया शायद तातन के पास।[3] यक्ष गन्धव लोक म उसे शरण मिली। दो महान् सभ्यताओ का सम्मिश्रण हुआ और वहाँ अनेक वष बिताकर मनु पूव की ओर चलता हुआ सरयू के तट पर उतरा जहा उसने अयोध्या नाम की नगरी बसाई। *मनु का किरात कन्या से विवाह हुआ यक्ष सभ्यता ने उस पर बहुत प्रभाव डाला* तथा उसके बौद्धिक क्षितिज को बहुत विस्तृत किया। बडे पुत्र इक्ष्वाकु म यक्ष

---

1 ब्रह्म पुराण 81

2 यक्षा की भाषा पढ ली जाने पर शायद आय प्रजाति क समान एक भन्न प्रजाति का भी जन्म हो जाय।

3 अरुण एतिहासिक भ्रान्तियो का कोश

नाम का प्रतिविम्ब झलकता है।

मनु ने नए मानव वश को जन्म दिया। उनके साथ यक्ष, दव, नाग, गन्धव, गरुड आदि अनक जनजातिया के व्यक्ति उतरे थे। वे सब अलग अलग जातिया कहलाने के स्थान पर मनुपुत्र या मानव कहलाने लगे। इस अन्तर्भुक्ति से अलग-थलग भी जनजातिया रही अपने पुराने नामो के साथ, पर भविष्य इस नई मानव जाति का था।

इस पर सबस अधिक प्रभाव यक्ष सभ्यता का था, फिर नाग सभ्यता का। कुबेर, मणिभद्र, पूर्णभद्र आदि की पूजा फली उधर मणिनाग मनसा आदि की। बाद म यक्ष प्रभाव के कारण ही वेद म ब्राह्मण कर्मकाण्ड की उत्पत्ति हुई। सीधे सादे वैदिक धर्म म कर्मकाण्ड का प्रवेश हुआ।[1]

प्रलय के कुछ वष बाद

प्रलय के बाद मनु अपनी पत्नी को लेकर अयोध्या मे आया। उधर चन्द्र देवकुलगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को भगाकर ले गया और असुरो की शरण मे चला गया। पाँचवा तारकामय देवासुर सग्राम आरम्भ हुआ। प्रलय के कारण देवो की शक्ति क्षीण हो गई थी और युद्ध देवो को भारी पडा। आखिर चन्द्र देवलोक लौटा और तारा बृहस्पति को लौटा दी। उससे उत्पन्न पुत्र बुध को लेकर वह पूर्व म हिमालय के अन्दर शिव की पूजा करने वाले गणो की शरण म चला गया। वहा यक्ष गन्धर्वों के बीच रहकर बुध बडा हुआ।[2]

युवक होकर बुध अपने विभिन्न गणो के साथियो को लेकर हिमालय से नीचे आया और उसने मनु पुत्री इला स विवाह किया। उनके पुत्र पुरूरवा हुआ जिसने प्रतिष्ठान (प्रयाग के पास झूसी) बसाकर चन्द्रवश आरम्भ किया।

इला ससार का स्त्री स पुरुष बनने का पहला ज्ञात केस है। अपने अन्दर कुछ विभिन्न परिवतन अनुभव करके वह बहुधा नगर से बाहर रहकर हिमालय म घूमती थी। वहा एक दिन उसे गुफावासी एक यक्ष और यक्षिणी मिले जिन्होंने उसका इलाज किया और कुछ मास बाद वह पूर्ण पुरुष बनकर राजधानी लौट आई। कुछ साथी लेकर वह पूर्व की ओर नई बसती बसाने चली गई। उसने पुरुष नाम सुद्युम्न ग्रहण किया।[3]

पुरूरवा का उर्वशी स सम्बन्ध कालिदास ने अपनी लेखनी से अमर कर दिया है। वह अप्सरा थी। उसके कारण पुरूरवा का गन्धर्वों से सम्बन्ध बना और उन्होंने उसे तीन अग्नियो का ज्ञान दिया।

1 आगे देखिये यक्ष और धम

2 विस्तार के लिए अध्य भारतीय पुरा इतिहास कोश

3 ब्रह्म पुराण 7 | 1–17 108

यक्षों का भारत में फैलना

यक्षों का मुख्य धंधा व्यापार था। व्यापार के सिलसिले में वह धीरे धीरे सारे भारत में फैलता जा रहा था। व्यापार के कारण वह प्रगति के पथ पर अग्रसर था। उसका धर्म उन्नत था। उसे वृक्षों और वनस्पति का अच्छा ज्ञान था। रत्नों का विपुल भण्डार उसके पास था। व्यापारी सबसे मेलजोल रखता है और सब उसका सम्मान करते हैं। उसका किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं था। वह पूर्व और दक्षिण की ओर फैल रहा था।

उसके पीछे फैल रहा था राक्षस वह था जिसका जन्म ही देवासुर संग्राम में हुआ था वह शक्ति का पुजारी था। स्कन्द के इन्द्र बनने पर राक्षसों ने सत्ताधिकार का आनन्द लिया। उसके पीछे उनकी देवों से लड़ाई हुई और ऋषियों के सूक्तों में ये भी दानव के असुरों के समान हिंस्री रक्तपिपासु कहे गए। वे उत्तर पश्चिमी पर्वतों और काश्मीर से नीचे उतर गए और पंजाब राजस्थान मालवा महाराष्ट्र होते हुए दक्षिण की ओर गए। पश्चिमी घाट से होते हुए वे रावण की लंका तक फैल गए। उनके पीछे पीछे अन्य किरात कुल वानर और ऋक्ष भी दक्षिण पश्चिम में गए। पुराणों में उनके प्रयाण का अच्छा वर्णन है।

पहले यक्षों का वर्णन लें।

दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में एक अति तेजस्वी यक्ष पायस लेकर प्रकट हुआ था जिससे राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। प्राचीन काल से लेकर आज तक यक्षों में सन्तान प्रदान करने की शक्ति समझी जाती है जो पहले जड़ी बूटियों के ज्ञान के कारण थी और फिर बुद्ध के बाद तक आते-आते पूजा का विषय बन गई। हमारी हर भाषा के साहित्य में, विशेषकर संस्कृत पालि और प्राकृत साहित्य में अनेक स्थलों में यक्ष की सन्तान देने की शक्ति का वर्णन है।

रामायण में ही ताड़का प्रसंग में यक्ष का वर्णन है। ताड़का सुकेतु नामक यक्ष की पुत्री थी जो बिहार में बक्सर के निकट चरित्रवन में रहता था। सुकेतु महान् पराक्रमी और सदाचारी था। ताड़का उसकी इकलौती पुत्री थी जिसका विवाह राक्षसराज रावण के एक सेनापति सुन्द से हुआ था। उसके दो पुत्र सुबाहु और मारीच थे। ये तीनों मिलकर विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डाला करते थे। ताड़का और सुबाहु राम द्वारा मारे गए और मारीच भाग गया।[1]

इसके बाद दक्षिण पूर्व में कोलार सोने की खदान तक इनके फैलने का संकेत मिलता है। आन्ध्र प्रदेश में यक्ष किरमीर की आज भी पूजा होती है। किरमीर शायद दक्षिण में पहुँची पहली टोली का नेता था। कोलार से निकले

1 वाल्मीकि रामायण बाल काण्ड

सान ने इह वहा खीचा था ? या कोनार से इन्होने ही सोना निकालना आरम्भ किया था ? धीरे धीरे ये नीचे तक फलत चल गए। जैसे महाभारत म (शल्य पव, ४७ | २७) उत्तर म कुबेर तीथ का वणन है वैसे दक्खन मे गौतमी नदी के तट पर धनद (कुबेर) तीथ का (ब्रह्म पुराण ६७) और गौतमी गगा के तट पर ही कार्तिकेय तीथ का (ब्रह्म पुराण ८१)

श्रीलका मे यक्ष—

यक्ष धीरे धीरे उतरते हुए श्रीलका तक पहुँच गए यह हम सिंहल या श्रीलका के प्राचीन इतिहास के विषय म दीपवस, महावस आदि सिंहली ग्रथो के वणन से पता चलता है।

दीपवस के अनुसार गौतम बुद्ध के समय यहा यक्ष, राक्षस पिशाच आदि अमानवो का निवास था।[1] पाचवी सदी ई० के चीनी यात्री फाह्यान के अनुसार इस द्वीप म मूलत मनुष्य नही रहते थे, केवल यक्ष नाग आदि निवास करते थे। अनेक देशो के व्यापारी यहा आकर निवास करते थे।[2] फाह्यान के कथन से स्पष्ट होता है कि यक्ष व्यापारी थे। और ये यक्ष व्यापारी छठी शताब्दी ईसा पूव म पहले द्वीप के मध्य भाग म केन्द्रित हो चुके थे।

विद्वानों के अनुसार यक्ष श्रीलका के आदिम निवासी थे। के० के० पिल्लई ने इसका समथन किया है।[3] सेलिगमान के अनुसार महावस आदि म उल्लिखित यक्ष वेड्डा ही हैं।[4] पाकर भी यही मानता है कि आज की वेड्डा जाति प्राचीन यक्षो की वशज है।[5] परन्तु यह मत तकसगत प्रतीत नही होता क्योकि प्राचीन बौद्ध साहित्य म वेड्डा और यक्ष का पृथक जातियो के रूप म वणन है। वी० कनकसभाइ का मत ठीक है कि यक्ष प्राचीन एतिहासिक यू ची या पीली जाति के थे।[6] गुनसेकर का भी यही मत है कि यक्ष मगोलियन जाति के थ। वे हिमालय स उतर कर गगा की धाटी म आए और पूर्वी तट से होते हुए श्रीलका पहुँच गए।[7]

श्रीलका का इतिहास लाट (दक्षिणी गुजरात) के राजकुमार विजय के समुद्र प्रयाण स आरम्भ होता है। राजा सिंह ने सबस बडे पुत्र विजय का युवराज

1 दीपवस परिच्छेद 1 गाथा 18 20-21 46-47
2 लेग्गे जेम्स ए रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स पृष्ठ 101-102
3 के० के० पिल्लई साउथ इण्डिया एण्ड सीलोन पृष्ठ 23
4 सेलिगमान सी० जे० द वेड्डाज़ पृष्ठ 132
5 के० के० पिल्लई वही पृष्ठ 23
6
7 ए० दया हो० गुनसेकर सीलोन टुडे (युनाइटेड एशिया) जिल्द 15 स० 2 पृष्ठ 96

बनाया था, परन्तु वह दुष्प्रवृत्ति का और उद्दण्ड निकला। दो बार चेतावनी देने के बाद तीसरी बार विजय और उसके ७०० साथियों को एक जलयान में बिठाकर देश निकाला दे दिया। विजय का जलयान दक्षिणी गुजरात से चलकर सुप्पारक (शूर्पारक, बम्बई के पास सोपारा गाँव, प्राचीन भारत का प्रसिद्ध बन्दरगाह) जा लगा। वहाँ पर भी उसके उद्दण्ड आचरण ने प्रजा को उसे निष्कासित करने पर विवश कर दिया। अपने जलयान पर बैठकर विजय और उसके साथी दक्षिण की ओर चल दिये और महावंस के अनुसार[1] तथागत के महापरिनिर्वाण के दिन ताम्रपण्णी पहुँचे। उसी रात को उन्हें गाने बजाने का स्वर सुनाई दिया। किसी यक्ष सरदार की पुत्री का विवाह मनाया जा रहा था। और यह विवाहोत्सव सात दिन लगातार चलता रहा था।[2]

इस घटना के उपरान्त विजय के साथियों की भेंट यक्षिणी कुवण्णा से हुई। उसके साथी कुवण्णा के पीछे पीछे एक जलाशय तक गए जहाँ उसने इन सबको बन्दी बना लिया। फिर वह एक साध्वी स्त्री का भेष धर कर विजय के पास आई और उसे राजकुमार कहकर सम्बोधित किया। विजय ने समझ लिया कि वह एक यक्षिणी है। उसके केश पकड़कर वह दाएँ हाथ से तलवार उठाकर उसे मारने को उद्यत हुआ। कुवण्णा ने उससे दया की भीख माँगी और उससे विवाह करने, साथियों को मुक्त करने तथा विजय का राज्य स्थापित करने में सहायता देने का वचन दिया।[3]

विजय ने उसे छोड़ दिया। कुवण्णा ने विजय और उसके साथियों को भोजन सामग्री दी और पेय पदार्थ दिए। तत्कालीन यक्षों की राजधानी सिरीसवत्थु (देखिए कपिलवस्तु से साम्य) में एक रात विवाह के अवसर पर यक्ष लोग एकत्र हुए। वहाँ उन्हें मारने में कुवण्णा ने विजय की सहायता की। इस प्रकार विजय ताम्रपण्णी का राजा बना और कुवण्णा रानी।[4] उनके एक लड़का और एक लड़की हुई।

विजय के साथी उसका प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार राज्याभिषेक करना चाहते थे जबकि कुलीना पत्नी पाए बिना विजय अभिषेक नहीं कराना चाहता था। परामर्श करके उन्होंने दक्षिणी मदुरा के पाण्डु (पाण्ड्य) राजा के पास रत्न और भेंट भेजी और विजय के लिए उसकी पुत्री के हाथ की याचना की। राजा ने यह स्वीकार करके अपनी कन्या विजया को ६९९ अन्य कुलीन

1 महावंस परिच्छेद 6 गाथा 47
2 महावंस परिच्छेद 7 गाथा 35–36
3 महावंस परिच्छेद 7 गाथा 22
4 महावंस परिच्छेद 7 गाथा 32

कन्याओ के साथ लका भेजा। उनके साथ अथाह सम्पत्ति, दास तथा कुशल शिल्पी श्रीलका आए। विजय का विवाह हुआ और तत्पश्चात् विधिवत् अभिषेक हुआ। कुवण्णा और उसके बच्चो को घर स निकाल दिया गया। कुवण्णा अपने साथी यक्षो के नगर की ओर लौटी, पर वे उसका राजद्रोह भूले नही थे, उन्होन कुवण्णा को मार डाला।

यही कथा दीपवस म भी दी गई है जो महावस से लगभग सौ साल पहले लिखा गया था। यह महावस म प्रदत्त कथा से समभिन्न है। इसी प्रकार की कथा अनेक जातको म भी मिलती है।[1]

यह करुण कथा अनेक तथ्य दर्शाती है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व म श्रीलका म यक्षो की एक विकसित सभ्यता थी। द्वीप म रहकर वे अलग थलग रह गए थे और उनम भारतीय मुख्य भाग की तरह अनेक जातियो की अतर्भुक्ति, सम्मिश्रण नही हुआ था। विजय के अभियान स भारतीय सभ्यता सबसे पहले पश्चिम स (मिली जुली) वहा पहुँची और फिर पूरब स अशोक के पुत्र और पुत्री के साथ पहुची।

श्रीलका म यक्षपूजा का उल्लेख अत्यत प्राचीन काल स मिलता है। महावस के अनुसार राजा पाण्डुकाभय न यक्ष चित्तराज का एक मन्दिर बनवाया था।[2] कुम्भम्म जातक क आधार पर परनविनान मानते हैं कि इस यक्ष चित्तराज की पूजा भारत म भी होती थी।[3] उसके अलावा श्रीलका म पूजे जान वाले अन्य यक्ष कालवल महेज वश्रवण जुतिधर विभीसन कलसोदर थे। साथ ही यक्षिणी वडवामुखी पच्छिमरजनी चित्ता, वलिया, वस्समुखी आदि भी पूजित थी।[4] जिस प्रकार बुद्ध के समय म पूरे भारत म यक्षपूजा प्रचलित थी, उसी प्रकार श्रीलका म भी। बौद्ध धम फला जन धम फला लेकिन जनता न यक्षो को पूजना नही छोडा। आज भी वीर और वरहा के रूप म विलोचिस्तान स लकर आसाम तक और हिमालय स लेकर सागर तक यह प्रचलित है।

इनके अतिरिक्त स्कन्द या कार्तिकेय का भी स्थान दक्षिण भारत और श्रीलका म बहुत महत्त्वपूर्ण है। तमिल देश म य मुरुग (भोले शिशु) के नाम से जाने जाते हैं। वे उन्हे अपनी जाति भाषा और साहित्य का सरक्षक देवता मानते हैं। श्रीलकावासी उनको इस नाम के साथ कण्डस्वामी तथा कण्डकुमार नाम स भी पुकारते हैं।[5] 'कण्ड' स्पष्ट है कि 'स्कन्द' का स्थानीय रूपातर है।

1 पञ्चुपसनमानव जातक देवधम्म जातक आदि
2 महावस परिच्छेद 10 गाथा 88
3 एस सी रे हिस्ट्री ऑफ सीलोन जिल्द I खण्ड I पृष्ठ 136
4 अदिकारम् अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन सीलोन पृष्ठ 44
5 कनकरत्न पिल्लई तथा चिनैय्या हिन्दू धम पृष्ठ 22

सगम युग में कवि नक्कीरर ने मुरुग का पर्वत तथा वनों के देवता के रूप में उल्लेख किया है। वे युद्ध के भी देवता माने जाते थे। ये सुब्रह्मण्य के नाम से भी जाने जाते हैं। लंका द्वीप के दक्षिण-पूर्व में स्थित कतरगाम तथा उत्तर में जफना क्षेत्र में उनकी विशिष्ट प्रतिष्ठा थी। तिरुवाचिन, वेन्नुवर, वागन आदि में भी स्कन्द पूजा के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं।

कतरगाम का आज भी श्रीलंका में अत्यधिक महत्त्व है। यह कार्तिकेयग्राम का अपभ्रंश कहा जाता है। यह स्कन्द देवता का क्षेत्र माना जाता है जो अत्यन्त प्राचीन इतिहास रखता है और युद्ध का देवता माना जाता है। यह क्षेत्र सभी धर्मों के मानने वालों के लिए समान पावन है। इस देवता को अप्रसन्न करना सिंहलवासी विपत्ति को न्योता देना समझते हैं। दन्तकथा के अनुसार कार्तिकेय मार (कामदेव) के प्रभाव में आकर यक्ष जाति की कन्या वल्लि से दूसरा विवाह करके कतरगाम में बस गए थे। राजावलिय से उल्लेख है कि जब लंका के सुवण्णा के राजकुमार विजय को मारने के प्रयत्न किए थे तब कतरगाम के यक्षकुमार और अन्य देवताओं ने उसके जीवन की रक्षा की थी।[1]

पश्चिम में यक्षों और राक्षसों का प्रवाण

पूर्व की ओर से श्रीलंका तक की यक्ष-यात्रा का वर्णन ऊपर दिया गया है। अब पश्चिम की ओर लें।

कार्तिकेय का देवताओं का पति होना और फिर इन्द्र चुना जाना— इनका वर्णन हो चुका है। परन्तु शीघ्र ही उनके गणों और देवों में लड़ाई ठन गई। जिनका अभिनन्दन किया गया था वही बाद में चोरों का राजा कहा गया। ऋग्वेद में ऋषियों ने पुकारा : हमारे द्रोही राक्षसों से भिन्न गए हैं। अग्नि! तुम उन्हें जला दो। (१ १ १ ४ १२ ५) हमें राक्षसों से बचाओ। (१ १ ३ ८ ३६ १५) "अग्निदेव! राक्षसों, यातुधानों और विघ्नकारक शत्रुओं का नाश करो। (१ १ ३ ८ ३६ २०) अग्नि! राक्षसों का हनन करो। (१ १ ५ १३ ७६ ४)[2]

देवों ने राक्षसों को नीचे धकेला। वे सरस्वती के तट पर जा बसे। महाभारत, शल्य पर्व ३८वें अध्याय में बलराम अपनी यात्रा में सरस्वती तट पर शखतीर्थ गए जहाँ महाशंख नामक वृक्ष था जिसके नीचे अनेक ऋषि (मुनि) यक्ष विद्याधर पराक्रमी राक्षस महाबली पिशाच और हजारों सिद्ध पुरुष रहते थे इनको मनुष्य नहीं देख पाते। (अर्थात् वे अब यहाँ से चल गए थे।) यहीं कौबेर पुरी और कुबेर तीर्थ भी था। हर्षचरित के अनुसार हर्ष के काल में थानेश्वर के चारों कोनों में चार यक्षों की प्रतिमाएँ थीं जिनकी पूजा की जाती थी। तभी

1 सी एस नवरत्नम् : ए शार्ट हिस्ट्री आफ हिन्दूइज्म इन सीलोन पृ० 74

2 विस्तार के लिए देखिए रांगेय राघव : प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास पृ० 160

राक्षसा म सारस्वत नाम भी पडा।

बारह वष तक दव और मानव कुल दुबल पडे रहे। फिर सरस्वती तीर से अगस्त्य न मानव कुला को इकट्ठा करके राक्षसा को हराया। इतना भीषण युद्ध हुआ कि अनेक वष तक सरस्वती का जल लाल रहा। उनके बाद कनौज का राजा विश्वरथ (विश्वामित्र) राक्षसा स लडने सरस्वती तट पर आया। वहा अपना काय पूरा करके वह वसिष्ठ के आश्रम मे ठहरा और उसका गाय पर प्रसिद्ध झगडा हुआ। यह २५४०–२५०० ईसा पूव का काल बडा उथल पुथल का था जब भारत म कोई महान् राजा नही था। उसी समय एक सास्कृतिक क्रांति हुई ऋषिया का युग आया। ऋग्वेद के प्रमुख सूक्त इसी समय रचे गए। हिमालय की तलहटी म एक सत्र हुआ जिसम सात ऋषिया को ज्ञान फलाने का काय सौंपा गया। सप्तर्षि म तीन पुलस्त्य पुलह और क्रतु राक्षसा म काय करने लग। इस बात से उस समय राक्षसा की महत्ता पता चलती है।

वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को राक्षसा ने मार डाला सो उसके पुत्र पाराशर (यह पूववर्ती है, वेदव्यास के पिता नही) न राक्षस-यज्ञ आरम्भ कर दिया।[1] यज्ञ का अथ मानवा को इकट्ठा होकर किसी काम का प्रयत्न करना था जस बाद म जनमजय न नाग-यज्ञ किया था। पिता की हत्या का बदला चुकाने के लिए पाराशर न हजारा राक्षसा को मार डाला। वसिष्ठ न उसे नही रोका अत्रि न आकर रोका पर वह नही माना तब पुलस्त्य पुलह और क्रतु ने आकर इस नाश को समाप्त कराया।

कुछ वर्षो बाद सहस्राजुन कातवीय (लगभग २४०० ईसा पूव) न अपनी राजधानी महिष्मती के तट पर बस हुए राक्षसराज रावण को हराकर बदी बना लिया जिस छुडाने क लिए महर्षि पुलस्त्य का राजदरबार म आना पडा। फिर भी राक्षसा का बल नही टूटा। आज महेश्वर और उसक सामन नमदा क दूसर तट पर बसे नावडा टोली की खुदाई स यह सिद्ध हो गया है कि सहस्रबाहु की महिष्मती के सामन रावण का नगर (नावडा टोली) था।

इस समय यक्ष व्यापारिया का वन म होकर आवागमन जारी था। राह म डाकुओ का बहुत भय रहता था इसस व्यापार म काफी दिक्कतें हाती थी। इसी कारण व भी शक्ति एकत्र करके चलत थ और जहा दिमाग और हाथ मिल जात थे वहाँ विजय निश्चित थी। (भारतीय इतिहास म अधिकतर साम्राज्य साथ के नायका क बनाए हुए हैं चाहे वह चन्द्रगुप्त मौय हो या चन्द्रगुप्त प्रथम या यशोधमन या हषवधन या गुजरात का विमल महता।) य व्यापारी यक्षराज मणिभद्र की पूजा करते थ। यक्ष धन का प्रतीक माना जाने लगा था। ॐ श्री

1 महाभारत आदि पव 184 अध्याय

कुवेराय नम और श्री गणेशाय नम से काय आरम्भ किया जाता था। आज भी व्यापारी यही लिखकर अपने व्यापार के वहीखाता की पूजा करते है और लक्ष्मी गणेश की पूजा करते हैं। जब मन्दराचल पवत पर सब जातियों ने मिलकर अमृत मन्थन किया तब लक्ष्मी देवी को प्राप्त हुई। धार्मिक ग्रन्थों म कुवेर को मन्दराचल पर रहने वाला बताया है। अर्थात् लक्ष्मी पहले कुवेर के पास थी फिर परिश्रम करके सब ने उसे प्राप्त किया।

लगभग २४०० ईसा पूव म वशाली म मरुत्त सिंहासन पर बठा था। पुराण म वर्णित सोलह चक्रवर्तियो म यह एक है।[1] महाभारत म भी इस चक्रवर्ती और पाच श्रेष्ठ सम्राटो म से एक कहा गया है। एतरेय ब्राह्मण म इसे कामप्र का वंशज बताया गया है और संवत द्वारा इसके राज्याभिषेक की कथा भी कही गई है। शतपथ ब्राह्मण म इसे आयोगव जाति मे उत्पन्न कहा गया है। संवत की सलाह से इसने धन के लिए शिव की तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर यक्षो ने इसे हिमालय का एक स्वण शिखर प्रदान किया। फिर इसने यज्ञ किया और जो सोना बाकी बचा वह हिमालय म गाड दिया जो बाद म युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ म काम आया। रक्षो का राजा रावण दक्षिण से इसका यज्ञ देखने और उसे रोकने आया। लेकिन इसके यज्ञ का वैभव देखकर रावण बिना लडे चुपचाप लौट गया।[2] इसी समय सरस्वती नदी का विनाशन स्थान पर लोप हो गया।[3]

इधर पूव म चक्रवर्ती सगर (लगभग २३०८ ई० पू०) ने पुत्र असमंजस को नालायक सिद्ध होने पर देशनिकाला दे दिया था। पुराण के अनुसार असमंजस कुछ दिन ऋक्ष और वानरों म रहा फिर पश्चिम की ओर चला गया।

इसी सूयवंश के रघु की दिग्विजय प्रसिद्ध है जिसम उसने उत्तर के कुवेर को भी झुकाया था। लगता था देवो के समान मूल यक्षो की शक्ति भी समाप्त हो चली थी।

अनेक पीढ़ियो के उपरान्त सावभौम भरत का युग आता है (लगभग २२८० ई० पू०)। भरत अप्सरा शकुन्तला का पुत्र था।[4] महाभारत के अनुसार शकुन्तला ने दुष्यन्त से इसी शत पर विवाह किया था कि उसका जन्मा पुत्र राजा बनेगा। भरत ने एक नई परिपाटी को जन्म दिया कि पुत्रो के योग्य न होने पर उसने ऋषि भारद्वाज को गोद लेकर अपना चक्रवर्ती राज्य उन्हे सौंप दिया।

दक्षिण मे सभ्यता का प्रसार

हो सकता है व्यापार के सिलसिले म उडीसा की ओर से होते हुए यक्ष

1 विस्तार के लिए देख भारतीय पुरा इतिहास कोश पृ० 801-4
2 महाभारत अनुशासन पर्व 259 9-32
3 वही
4 शतपथ ब्राह्मण

व्यापारी दक्षिण में पहुँच गये हों, परन्तु ज्ञात गाथाओं में दक्षिण में सबसे पहले महर्षि अगस्त्य विन्ध्य की राजकुमारी लोपामुद्रा से विवाह करके विन्ध्याचल पार करके पहुँचे थे। अगस्त्य केवल मानव या देवताओं के माने जाते थे बल्कि असुर पुत्रों के ज्ञान उन्होंने सम्मिलित किये थे। अथर्ववेद की आधारशिला उन्होंने ही डाली थी। (लोपामुद्रा की छोटी बहन सभ्मिता का विवाह दध्यङ् आथर्वण से हुआ था जो बड़े प्रसिद्ध अथर्वण ऋषि थे और मधुविद्या के विशेषज्ञ समझे जाते थे। मधु का अर्थ है मूलतत्त्व। संसार का मूलतत्त्व, पृथिवी, पृथिवी का अग्नि इसी क्रम से वायु, सूर्य, आकाश, चन्द्र, विद्युत्, शब्द, आत्मा तथा ब्रह्म की मौलिक एकता का तत्त्व या करोड़ी कड़ी है। मूल तत्त्व का पता लगाने को आत्मतत्त्व का संसार से घनिष्ठ तथा नित्य सम्बन्ध ज्ञात होता है। यह उपनिषद् विद्या का आरम्भ है और अथर्व युग का द्वार। इसी मधु विद्या के सिखाने पर दध्यङ् की इन्द्र से लड़ाई हो गई।)[1] अन्य जातियों के साथ या बर्बरता देने के कारण उन्हें सप्तर्षि मण्डल में स्थान नहीं मिला था। दक्षिण भारत में आज इनके स्थान उत्तर भारत से अधिक हैं।[2] इसी प्रकार पूर्वी भारतीय-द्वीपसमूह (वालिया सुमात्रा जावा स्याम) तक में उनका नाम अत्यन्त सम्मान से लिया जाता है। दक्षिण में तो यह बात यहाँ है कि इन सब स्थानों पर शिव की पूजा होती है। जावा में तो कुबेर की भी पूजा होती है। शायद अगस्त्य का कुबेर और शिव पूजा से कोई सम्बन्ध हो। या यह सारा प्रभाव महायशा सम्राट रावण की दिग्विजय के उपरान्त पड़ा हो।

दो पीढ़ियों बाद परशुराम भी शूर्पारक (बम्बई) होते हुए केरल तक पहुँचे और अपने अनुयायियों के साथ वहीं बस गए। किन्तु उनका प्रभाव सीमित रहा।

अगस्त्य का अनुसरण करता हुआ अगली पीढ़ी में हैहयराज अर्जुन से हार कर राक्षसराज रावण भी दक्षिण में रहने गया था।[3] किन्तु पहले वानर और ऋक्ष जातियाँ भी पहुँच गई थीं। तीन सौ वर्षों से अधिक तक ये अपनी सभ्यता और शक्ति दक्षिण में फैलाते रहे जिसका ठीक ज्ञान हमें प्रबल प्रतापी दशानन रावण के प्रादुर्भाव होने के बाद पता चलता है।

कुछ शब्द पहले रावण के सम्बन्ध में। रावण हम देख चुके हैं अनेक हुए हैं जैसे इन्द्र अनेक हुए हैं। शायद यह एक पद था। एक मत के अनुसार रावण शब्द तमिल के ईरैवण शब्द का अपभ्रंश है जिसका तमिल में तात्पर्य राजा है।[4] मगधी, भोजपुरी या तिरहुती (पुराना प्राकृत) में इसके समान शब्द का अभी

---

1 ऋग्वेद 1 80 14 1 84 13-14 आदि शतपथ ब्राह्मण 14 1 1 18 25 आदि ताण्ड्य ब्राह्मण 12 [illegible] 6 गोपथ ब्राह्मण 1 5 21 बृहद्देवता 3 [illegible] 27

2 अरुण भारतीय पुरा इतिहास कोश पृष्ठ 710-14

3 वायु पुराण 94-35 वही पृष्ठ 725-26

4 अगस्त्य इन तमिललैण्ड पृ० 75

कुवेराय नम और श्री गणेशाय नम से काय आरम्भ किया
व्यापारी यही लिखकर अपने व्यापार के वहीखाता की पूज
गणेश की पूजा करते है। जब मन्दराचल पवत पर सब जा
मथन किया तब लक्ष्मी देवी को प्राप्त हुई। धार्मिक ग्रथा
पर रहने वाला वताया है। अथात् लक्ष्मी पहले कुवेर के प
करके सब ने उसे प्राप्त किया।

लगभग २४०० ईसा पूव म वशाली म मरुत्त सिहासन
म वर्णित सोलह चक्रवर्तियो म यह एक है।[1] महाभारत म
पाच श्रेष्ठ सम्राटो म से एक कहा गया है। ऐतरेय ब्राह
वशज बताया गया है और सवन द्वारा इसके राज्याभिषेक
गई है। शतपथ ब्राह्मण म इस आयागव जाति मे उत्पन
की सलाह स इसन धन क लिए शिव की तपस्या की जिस
इस हिमालय का एक स्वण शिखर प्रदान किया। फिर इ
साना बाकी बचा वह हिमालय म गाड दिया जो बा
यज्ञ म काम आया। यक्षो का राजा रावण दक्षिण से इस
रोकने आया। लकिन इसके यज्ञ का वभव दखकर रा
लौट गया।[2] इसी समय सरस्वती नदी का विनाशन स्था

इधर पूव म चक्रवर्ती सगर (लगभग २३०८ ई० पू
नालायक सिद्ध होन पर दशनिकाला द दिया था। पुराण
कुछ दिन ऋक्ष और वानरो म रहा फिर पश्चिम की अ

इसी सूयवश के रघु की दिग्विजय प्रसिद्ध है जि
को भी झुकाया था। लगता था दवो के समान मूल
हो चली थी।

अनेक पीढ़िया क उपरात सावभौम भरत व
२२८० ई० पू०)। भरत अप्सरा शकुन्तला का पुत्र
शकुन्तला न दुष्यन्त स इसी शत पर विवाह किया था
बनगा। भरत न एक नइ परिपाटी का जन्म दिया
उसन ऋषि भारद्वाज का गोद लकर अपना चक्रवर्ती र

दक्षिण मे सभ्यता का प्रसार

हो सकता है व्यापार के सिलसिले म उडीसा

---

1 विस्तार के लिए अरुण भारतीय पुरा इतिहास कोश

2 महाभारत अनुशासन पव 259 9–32

3 वही

4 शतपथ ब्राह्मण

चेहरे लगाते थे।[1] यह मास्क कहलाते है। तिब्बत, बगाल तथा दक्षिण भारत म अभी तक चेहरे नाच गीतो म चढाये जाते हैं। बाहर यूरोप तक म आज भी नाच गीतो म ये नकली चेहरे लगाए जाते है। खाट जाति सिर पर सीग लगाती है।[2] रामायण मे रावण की सेना चेहरा सहित और चेहरा के बिना भी असली रूप म उल्लिखित है। मास्क लगाने की प्रथा उस समय तक प्रचलित थी जब गाधार-कला भारत म समृद्ध हो रही थी।[3] दक्षिण के कथकलि नृत्यो म अब भी चेहरे लगाते है। भूटान (भूतस्थान) मे द्रविड जाति रहती थी।[4] मास्क बदल देने से चेहरा बदल जाता था। इसी म मास्क धारण करने वाले कामरूपिण अर्थात् इच्छारूप कहलाते थे। राक्षसो के साथ वानर भी ऐसे ही वर्णित थे। वानर हनुमान तो ब्राह्मण बन गये थे। सस्कृत म पडित थे। जान-बूझकर सीता से अशोक वाटिका मे प्राकृत बोले थे, कही राक्षस प्रहरी समझ न जायें।

रावण एक महान् महारथी ही नही राजनीति और रणनीति का प्रकाण्ड पण्डित था। उसने मन्दोदरी से विवाह करके एक ढेले से दो चिडियाओ का शिकार किया था और दो प्रबल जातियो को अपना मित्र बना लिया था। हिन्दू धर्म की पचकन्याओ म एक नाम मन्दोदरी का भी है— अहिल्या कुन्ती तारा द्रौपदी और मन्दोदरी।

प्रात स्मरणीय कन्याए

अहिल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा।

पचकन्या स्मरेन्नित्य महापातकनाशनम्॥[5]

क्या ये सब विरात कन्याएँ थी क्योकि इनम सीता सावित्री आदि का नाम नही है?

रावण ने वेद का सम्पादन किया उस समय वेद ही एकमात्र आर्य साहित्य था— वह भी मौखिक। अपने पिता स उसने वेद पढा था। उन पर विचार किया था। उसी वेद का उसने सम्पादन किया। ऋचाओ पर उसने टिप्पणिया तयार की। मूल मत्रो की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय को बीच बीच म वृद्धिगत किया। इस प्रकार मूल वेद और रावण कृत टिप्पणिया और व्याख्याएँ सब मिलकर वेद का एक ऐसा सस्करण हो गया जो जम्बूद्वीप के सब आर्यो तथा आर्येतरो के लिए मान्य हो गया कुछ तो वेद के नाम से और कुछ रावण के प्रभाव स। आगे चलकर यही रावण भाष्य टिप्पणी सहित 'कृष्ण यजुर्वेद' के नाम

1 अगस्त्य इन तमिलनैड पृष्ठ 75
2 इडिका 5 1929 पृष्ठ 289
3 इण्डिका 5 पष्ठ 287
4 वही पष्ठ 289
5 श्रीमद्भागवत पुराण 9 10 24-28

तमिल म तात्पय केवल 'राजा है'।[1]

जी० रामदास ने 'रावण एण्ड हिज ट्राइ स' नामक लेख म रावण पर विशेष प्रकाश डाला है। जिनासुआ का वह लेख पढना चाहिये।[2] उहाने लिखा है कि वाल्मीकि रामायण मे रावण के एक सिर तथा दो भुजाआ का ही उल्लेख है। जब जब व्यक्ति रूप से रावण का चित्रण हुआ है ऐसा ही रूप मिलता है। लकिन विशेषण के तौर पर उसे दशकठ, विशभुज इत्यादि कहा गया है। रावण की स्त्रियाँ वाल्मीकि रामायण म रावण का एक ही सिर ले गादी म रखकर रोती हैं।

यह निस्सन्देह ठीक है। तुलसीदास ने इस विषय म बहुत भ्रमोत्पन्न किये है। वाल्मीकि रामायण म न अगद की लात से रावण के दस मुकुट गिरत हैं, न रावण के दस सिर एक के बाद एक उगने है जिन्ह राम न काटा था। रामायण युद्धकाण्ड ४१ | ६६ म राम न जब अगद को दूत बनाकर भेजा है तब कहा है कि मैं तेरा राज्य भोगना नही चाहता। तब अगद आया। उसकी बात सुनकर रावण क्रोध से भर गया। उसने अगद का बन्दी बनाने की आना दी। अगद न प्रासाद का एक कगूरा गिरा दिया और भाग गया (८५, ८६ ८७)।

रावण का नाम क्या था पता नही। दशानन शायद उसका सस्कृतीकृत रूप है। इसका अथ यह नही कि वह दस सिर वाला था या उसके बीस भुजाए थी। विशेषण म आज भी कहा जाता है फलाने म दस हाथिया का बल है काम करते समय उसके चार भुजाए हो जाती है। दशानन उसकी बुद्धि और द्विश भुजा उसकी रण म भुजाआ की चपलता तीव्रता दिखाते हा। कुछ विद्वाना के अनुसार जस सिंह को पचानन (चारा दिशाआ और ऊर्ध्व का एक साथ देखन वाला) कहा जाता है और कार्तिकेय को षडानन (चारा दिशाआ और ऊपर नीचे) उसी प्रकार रावण को दशानन (चार वद और छह वेदाग को जानन वाला) कहा जाता है।

वाल्मीकि ने रावण की रूपाकृति का वणन हनुमान स कराया है जब पहली बार वह रावण को दखता है— अत्यधिक सुदर तजयुक्त और प्रभावशाली व्यक्तित्व। रावण वसत क समान शोभायमान था। उसकी अमृतकुण्डी नाभि कही गई है। वह योगसिद्ध पुरुष था। किसी यौगिक क्रिया को जानता होगा जिसम प्राणवायु को पर्याप्त समय तक नाभि म केन्द्रित रखा जा सके। योगशास्त्र म माना जाता है कि शरीर की समस्त नाडिया का केन्द्रबिन्दु नाभि है।

रावण रूप बदल लता था अर्थात् मुखौटा लगाता था। शायद वह दस मुख का नकली मुख लगाता हा। जी रामदास के अनुसार राक्षस अपन चहरा पर नकली

1 अगस्त्य एन तमिललैण्ड पृ० 75

2 ? इंडिका 5 1929

चेहरे लगाते थे।[1] यह मास्क कहलाते हैं। तिब्बत, बगाल तथा दक्षिण भारत मे अभी तक चेहरे नाच गीतो म चढाय जात हैं। बाहर यूरोप तक म आज भी नाच गीता म ये नकली चेहरे लगाए जात हैं। खाड जाति सिर पर सीग लगाती है।[2] रामायण म रावण की सेना चेहरा सहित और चेहरा के बिना भी असली रूप म उल्लिखित है। मास्क लगाने की प्रथा उस समय तक प्रचलित थी जब गाधार-कला भारत म समृद्ध हो रही थी।[3] दक्षिण के कथकलि नृत्या म अब भी चेहरे लगाते है। भूटान (भूतस्थान) म द्रविड जाति रहती थी।[4] मास्क बदल देने से चेहरा बदल जाता था। इसी से मास्क धारण करने वाले कामरूपिण अर्थात् इच्छारूप कहलाते थे। राक्षसा के साथ वानर भी ऐसे ही वर्णित थ। वानर हनुमान तो ब्राह्मण बन गय थे। सस्कृत म पडित थे। जान बूझकर सीता स अशोक वाटिका म प्राकृत वाले थे, कही राक्षस प्रहरी समझ न जायें।

रावण एक महान् महारथी ही नही राजनीति और रणनीति का प्रकाण्ड पण्डित था। उसन मन्दोदरी से विवाह करके एक ढेले स दो चिडियाओ का शिकार किया था और दो प्रबल जातिया को अपना मित्र बना लिया था। हिन्दू धम की पचकन्याओ म एक नाम मन्दोदरी का भी है— अहिल्या कुन्ती तारा द्रौपदी और मन्दोदरी।

प्रात स्मरणीय कन्याएँ

अहिल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा।
पचकन्या स्मरेन्नित्य महापातकनाशनम्॥[5]

क्या ये सब किरात कन्याएँ थी, क्याकि इनम सीता, सावित्री आदि का नाम नही है?

रावण ने वेद का सम्पादन किया उस समय वेद ही एकमात्र आय साहित्य था— वह भी मौखिक। अपन पिता से उसन वेद पढा था। उस पर विचार किया था। उसी वद का उसन सम्पादन किया। ऋचाओ पर उसन टिप्पणिया तैयार की। मूल मत्रो की व्याख्या की। व्यवहार अध्याय को बीच बीच म वृद्धिगत किया। इस प्रकार मूल वेद और रावण कृत टिप्पणिया और व्याख्याएँ सब मिलकर वेद का एक एसा सस्करण हो गया जो जम्बूद्वीप क सब आर्यों तथा आर्येतरा के लिए मान्य हो गया कुछ तो वेद के नाम स और कुछ रावण के प्रभाव से। आगे चलकर यही रावण भाष्य टिप्पणी सहित कृष्ण यजुर्वेद' के नाम

1 अगस्त्य इन तमिललैण्ड पृष्ठ 75
2 इंडिका 5 1929 पृष्ठ 289
3 इंडिका 5 पृष्ठ 287
4 वही पृष्ठ 289
5 श्रीमद्भागवत पुराण 9 10 24-28

से विख्यात हुआ।[1]

कृष्ण यजुर्वेद में पशुवध मद्यपान स्त्री समर्पण, शिश्नपूजन, गौवध, नरवध ब्राह्मण वध कुमारी वध आदि का विधान सम्मिलित हो गया जो वास्तव में बहिष्कृत आर्यों एवं असुरों की परिपाटी थी।

रावण शिवोपासक था। वह जहाँ जहाँ जाता एक स्वर्ण निर्मित लिंग साथ ले जाता— उसे बालुकी वेदी पर स्थापित करके लिंग-पूजन करता था। मध्य प्रदेश के विदिशा जिले में गाँव है — रावण। यहाँ रावण की आराधना भक्तजन उसी श्रद्धा और भक्ति के साथ करते हैं जिस श्रद्धा भक्ति से राम का पूजन होता है। विदिशा ग्यारसपुर मार्ग में लगभग पाँच किलोमीटर दूरी पर बसा यह गाँव विदिशा से तीस किलोमीटर दूर पड़ता है।

वाल्मीकि रामायण में एक स्थान पर यह प्रसंग आता है कि मधु नामक एक राक्षस रावण की बहन का अपहरण करके उसे अपने साथ ले गया था। बाद में मधु से रावण की मित्रता हो गई थी। इस राक्षस का राज्य मथुरा से विदिशा तक विस्तृत था। रावण गाँव इस दृष्टि से उसी राज्य का हिस्सा हो सकता है।

रावण गाँव के बाहर वृक्ष के नीचे लेटी हुई अवस्था में रावण की प्रतिमा स्थित है जो पाँच मीटर लम्बी व ईसा पूर्व की निर्मित बताई जाती है। उसी गाँव में रावण ग्राम देवता के रूप में पूजा जाता है और बच्चों के मुंडन प्रतिमा के पास ही कराए जाते हैं। यही नहीं नव विवाहित जोड़े शादी के तुरंत बाद रावण के पास धोक देने भी जाते हैं।

कारकू जनजाति में प्रचलित एक जनश्रुति के अनुसार रावण एक अत्यंत शक्तिशाली राजा था। सम्पूर्ण धरा पर उसका एकछत्र शासन था। सतपुड़ा की उपत्यका में भ्रमण करते समय वह यहाँ के वन उपवन पशु पक्षी व नदी झरना को देखकर अत्यंत प्रफुल्लित हुआ। परंतु यह जानकर उसे दुख हुआ कि यह सुन्दर भूमि निर्जन है। इस पर उसने इस क्षेत्र को मानवयुक्त बनाने का प्रण लिया। उसने महादेव की आराधना की और इस प्रदेश को बसाया।

द्रविड़ों में जो कृष्ण यजुर्वेद अब तक प्रचलित है उसमें हिंसामय यज्ञ सुरापान मांस भक्षण स्त्री सहवास नरबलि और शिश्न पूजन का विधान विहित है।

इसमें सन्देह नहीं कि यह वेद की सर्वप्रथम व्याख्या है। इसमें मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग का एक साथ मिश्रण कर दिया गया है।

मूल वेद और रावण कृत व्याख्या दोनों मिलकर एक रूप धारण कर गये और अब यह निर्णय ही नहीं किया जा सकता कि इस तैत्तिरीय शाखा में कौनसा

1 देखिये कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण और उस पर सायण भाष्य।

मत्र भाग है और कौनसा ब्राह्मण भाग ।

मत्र ब्राह्मण मिलाकर इस सहिता म १८ हजार यजु पढे जाते हैं। परन्तु शुक्ल यजुर्वेद की सख्या केवल १९०० मत्रा की है जिनका द्रष्टा वाजसनेय ऋषि है।

कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा म एक नवीनता यह है कि जहा अाय परम्परा के अनुसार यज्ञ कराने के लिये चार विद्वाना की आवश्यकता होती है, जो एक एक वेद के ज्ञाता होते हैं वहा कृष्ण यजुर्वेद की परम्परा म उक्त चारो ऋपिया के स्थान पर केवल एक चरक ही आचाय का काम चला देता है। बृहदारण्यक उपनिषद् म लिखा है कि चरक मद्र देश म घूमते हैं। यजुर्वेद के ब्राह्मण भाग मे दुष्ट कम करने वाले को चरक कहा है।

वदिक परिपाटी म शाखा भेद भी ह। वद पठन-पाठन की अनेक विधिया निर्धारित है— उन्ही विधिया को शाखा भेद कहत ह। कृष्ण यजुर्वेद की कोई शाखा नही है। इसलिये द्रविडा मे जहाँ इसका प्रचार है, न शाखा भेद है न गोत्र विस्तार। शाखा भेद के स्थान पर अनुवाका की सख्या का भेद रखा गया है। इसके अनुसार ६४ अनुवाक द्राविडा के ८० आन्ध्रा के ४७ कर्नाटका के और ८६ तलगान्कि के हैं।[1]

विजय-यात्रा म उसके हाथ स युद्ध करता हुआ सूपनखा का पति मारा गया। इससे अनुतापित होकर उसन सूपनखा को दक्षिण भारत का दण्डकारण्य दे दिया और अपन भाई खर को वहा का गवनर तथा दूषण को सेनापति तथा उसका सरक्षक बनाकर १८ हजार राक्षसा की सेना उन्ह दे दी।

उसन सहस्रा राक्षसा को यह आदेश दिया कि जहाँ कहीं आय ऋषि रावण विरोधी विधि स यज्ञ कर रहे हो वहाँ व बलपूवक बलि-मास और मद्य की आहुति देकर उसकी बताई विधि का प्रचार प्रसार करे।

रावण स्वय ही शिवभक्त दिखाया गया है। राक्षसा और द्रविडो म शिवोपासना और लिंग पूजन एक समान प्रचलित था। इसस इगित होता है कि किरात परिवार तथा द्रविड परिवार म साम्य था। व सस्कृति और विश्वासा म एक-दूसर स दूर नही थे। यही मरी स्थापना को बल दत हैं कि यक्ष और राक्षस न अय किरात परिवारा तथा आग्नेय परिवारा (नाग, आदि) के साथ दक्षिण म द्रविड (धनवान) साम्राज्य स्थापित किए। उस द्रविड शब्द का लेकर विशप काल्डवल न पिछली शताब्दी क मध्य म एक नई भाषा और जाति उत्पन्न कर दी जिसे मान्यता दन के लिए नृवशशास्त्रिया को जानी पहचानी चार प्रजातिया म एक नई प्रजाति जोडनी पडी जो वज्ञानिक अनुसधाना स अलग नहा थी, केवल

1 तैत्तिरीय आरण्यक

वाम्या और नारन्ती अप्सराएँ नाचने लगीं। परम्परा ने पुरानी अप्सराओं को भी गिनाया है— स्वर्ग की कल्पना— मनका सहजन्या वर्णिका पुञ्जिकस्थला ऋतुस्थली घृताची विश्वाची पूर्वचित्ति उम्लोचा प्रम्लोचा तथा उर्वशी गान लगीं। ये ग्यारह स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सराएँ थीं।

कुन्ती ने तीन बार इसे पुनः उत्पन्न करना ठीक बताया। चौथी बार स्त्री व्यभिचारिणी कहलाती थी।

उस समय उत्तर कुरु में यह प्रथा थी। आज भी हिमालय प्रांत में इस प्रथा को मानने वाली पहाड़ी जातियाँ हैं जिनके यहाँ अतिथि को घर की लड़की हर प्रकार से सत्कार करती है। जौनसार के वासी तो अपने को अब भी पाण्डव-वंशज कहते हैं। उनके यहाँ एक एक स्त्री के अनेक पति होते हैं। दक्षिण भारत में भी ऐसी जातियाँ हैं।

कुछ लोग यह सकते हैं कि अधिकांश लोग पाण्डवों के देवताओं के द्वारा जन्म लेने की कथा पर विश्वास नहीं करते प्रश्न है कि फिर अल्प मत ने ही क्या स्वीकार कर लिया? इसका तात्पर्य स्पष्ट है। कुन्ती के सब पुत्र मनुष्य-पुत्र थे और पाण्डव शतशृंग में पले जो उत्तर कुरु की सीमा था। उत्तर कुरु में स्त्री पुरुष स्वतन्त्र थे। यक्षवाद को ऊपर रखा जा चुका है। प्राचीन परम्परा के रूप में आया ने इसे स्वीकार कर लिया। पति के रहते कुन्ती ने जो नियोग से गर्भ धारण किए उन्हें तो उसने स्वीकार कर लिया किन्तु जो उसने कानीनावस्था में किया था उसे वह समाज के डर के मारे न कह सकी।

१२७ अध्याय में पाण्डु के मरने पर सिद्ध ऋषिगण यक्षों के साथ पाण्डु तथा माद्री का शव पहुँचाने हस्तिनापुर गए थे।

कीचक वध प्रकरण में द्रौपदी ने अपने पाँच गन्धर्व पति बताए थे।

९ महाभारत आदिपर्व १७३ अध्याय में गंगा किनारे अंगारपर्ण गन्धर्व का राज्य था। अर्जुन का उससे युद्ध हुआ। गन्धर्व मनुष्यों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। उसने अर्जुन को घोड़े दिए। अर्जुन ने उसे अपनी अस्त्र विद्या सिखाई।

१० द्रौपदी के पाँच पाण्डवों के विवाह के समय वेदव्यास ने कुन्ती से कहा था कि यह विवाह सनातन धर्म के अनुकूल है। आदिपर्व २०१ अध्याय में भगवान् शंकर को धर्म अधर्म का जिम्मेदार बताया गया। यह विवाह शंकर का विधान ठहराया गया। शंकर के मुख्य पार्षद यक्ष और राक्षस थे।

११ राजसूय यज्ञ से पहले दिग्विजय के लिए अर्जुन उत्तर दिशा में गए। सभा पर्व अध्याय २६ २७ २८ में इसका वर्णन है। किंपुरुषखण्ड जीतने के बाद अर्जुन यक्षों के द्वारा सुरक्षित हाटक (सोने का केन्द्र) नाम के स्थान को साम नीति से जीतकर मानसरोवर गए। वहाँ मुनि-कन्याएँ देखीं।

१२ वन पर्व के १३९ अध्याय में पाण्डवों के श्वेतगिरि और मन्दराचल

के मध्य गमन का वणन है। वहा मणिभद्र यक्ष यक्षराज कुबर गधव किंपुरुष यक्ष और राक्षस रहत थे। यक्ष और राक्षस बहुत बली थ। वहा रौद्र और मत्र राक्षस भी थ।

उसके उत्तर म कैलास था। वहा यक्ष राक्षस किन्नर गरुड तथा गधर्वो का निवास था। कैलास की तलहटी म मानसरोवर के पास की उससे भी बडी झील आज भी रावणह्रद या राक्षसताल के नाम स विख्यात है। इसी के तट पर रावण न घोर तपस्या करके शिव को प्रसन्न किया था।

१८० अध्याय म भूत गण (भाटा) का वणन है। १८४ म म्लेच्छ विद्याधर, किन्नर वानर किंपुरुष तथा गधव इत्यादि का वणन है।

१५४ अध्याय म भीम का यक्षा स युद्ध हुआ लेकिन अन्त म मित्रता हो गई।

१५७ अध्याय म पाण्डवा को बदरिकाश्रम मे जटासुर नामक राक्षस मिला। इस स्थान पर युधिष्ठिर न कहा है धम का मूल राक्षस हैं। वे उत्तम रीति से धम को जानते हैं। इसम प्रत्यक्ष है कि महाभारत काल म भी यक्ष और राक्षसा द्वारा सस्थापित धम प्रचलित था (जो आज भी चल रहा है) देवा का आदिम धम पिछड गया था।

१७८ स १८२ अध्याय म फिर इन जातियो का तथा हिमालय म उनके स्थान का विस्तार म वणन है। यहा मणिमान् कुबर के सेनापति का उल्लेख है जो मगध म भी पूजा जाता था।

१३ युद्ध के बाद अश्वमेध पव म ६ और ६४ अध्याय म फिर यक्षा और किन्नरा और भूता का वणन है। भूतगण यक्ष मणिभद्र या त आ य यक्ष पतिया का पूजन मास तिल और घडा म भर भात भेट किया। युधिष्ठिर मुञ्जवान् पवत पर जाकर (६४ अ०) धन ले आया। इस धन की रक्षा किन्नर करत थ (३ अ०)।

१४ वन पव १५० अध्याय म हनुमान न भीम को उत्तर दिशा का पथ बताया है। सौगन्धिक वन (शायद पूना की घाटी) की रक्षा यक्ष और राक्षस किया करत थ। और वह कुबर का बाग समझा जाता था।

१५ आरण्य महत्त्वपूण यक्ष के द्वारा युधिष्ठिर स पूछे गये प्रश्न हैं। इसम यक्ष को मानवोत्तम जाति दिखाया गया है।

१६ राजा द्रुपद की पुत्री शिखण्डिनी को जिस पुत्र क समान पाला गया था। स्थूणाकण यक्ष न इसकी चाहा करन की इच्छा स इस पुरुष बना दिया और इसका नाम शिखण्डी हो गया।[1]

---

1 महाभारत आदि पव 63 125 उद्योग पव 191 अध्याय

तरह से भयानक मान जाने पर भी ब्राह्मणों के साहित्य में यक्षों को इतना बुरा नहीं कहा गया है।

यक्षों के समाज में स्त्री से घृणा करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। यक्षों में जादू आदि का प्रचलन था। मुर्गे की बलि दी जाती थी। वे मदिरा पीते थे।

जयद्रथगाथा में कहा है कि बोद्धों की अहिंसा से चिढ़कर यक्ष वज्र क्रुद्ध हुए और बुद्ध (शाक्यमित्र) की हत्या करने के लिए आदमी को उसके पास हिमालय भेजा जिसे सफर (बुद्ध) ने उगल दिया।[1] राजतरंगिणी में यक्षों के कश्मीर में रहने के विवरण हैं।[2]

भरहुत स्तूप में यक्षों तथा देवताओं के नाम खुदे हैं— सुपावसु यक्ख विरूधको यक्ख गंगित यक्ख सुचिलोम यक्ख कुपिरो यक्ख अजकालको यक्ख सुदसन यक्खि चन्दा यक्खी सिरिमा देवता चुलकोक देवता महकोक देवता आदि।[3]

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यक्ष चैत्य लगातार विश्राम स्थल के रूप में वर्णित किए गए हैं जहां बौद्ध और जैन गुरु और भिक्षु बहुधा ठहरते हुए और प्रवचन करते हुए बताए गए हैं। वर्णन किया गया है कि वे फलाने फलाने यक्ष के भवन में या फलाने यक्ष चैत्य में ठहरे थे। बौद्ध साहित्य में वर्णित कुछ चैत्यों का उदाहरण दिया जाता है — (१) वैशाली के वज्जियों (लिच्छवियों) द्वारा बुद्ध को दिया गया चापाल चैत्य।[4] (२) यष्टिवन में स्थित सुपतिट्ठ चैत्य जहां बुद्ध अपने पहले प्रवास पर ठहरे थे। बताया गया है कि यह एक बरगद के वृक्ष देवता सुपतिट्ठ का भवन है।[5] (३) बुद्ध द्वारा वर्णित वज्जियों के चैत्य जब वे वज्जियों को सावधान करते हैं कि उन्हें प्राचीन चैत्यों की पूजा और सत्कार को भूलना नहीं चाहिए यदि वे अपना कल्याण चाहते हैं।[6] बुद्धघोष ने इन्हें यक्ष चैत्य माना है[7] और इसमें कोई संदेह नहीं है। वैशाली के सारन्दद चैत्य के संदर्भ में जहां बुद्ध ने वज्जियों के कल्याण की बातें बताई थीं वह कहता है यह विहार यक्ष सारन्दद की प्राचीन मूर्ति के स्थल पर बनाया गया मन्दिर था।

जैन तामिल कलाभिक जीवक चिन्तामणि में कृतज्ञ जीवक यक्ष सुदत्त के लिए आभार प्रकट करने का एक मंदिर बनवाता है और वहां मूर्ति की स्थापना

1 वही पृष्ठ 131
2 वही पृष्ठ 132
3 आनन्द कुमारस्वामी यक्ष I पृष्ठ 5
4 वाटर्स On Ywang Chwang II 78
5 वाटर्स On Yuang Chwang II 167
6 महापरिनिर्वाण सुत्तान्त और अंगुत्तर निकाय VII 19
7 सुमंगल विलासिनी

करता है तथा उसके रख रखाव के लिए एक नगर भेंट करता है। साथ ही वह यक्षा के इतिहास से सम्बन्धित एक नाटक तैयार करता है। अवश्य वह नाटक विशेष अवसरा पर मन्दिर म मूर्ति के समान खेला जाता होगा।

कथा सरित्सागर भाग एक अध्याय १५ म दिया है हमारे देश म, नगर के अन्दर, एक शक्तिशाली यक्ष मणिभद्र की मूर्ति थी जिसे हमारे पूर्वजा ने बनवाया था। लोग वहा अपनी विपदा सुनाने आते थे, भाति भाति के उपहार भेंट करते थे और तरह तरह के आशीर्वाद माँगते थे।' इसी प्रकार अध्याय ३८ म यक्ष विरुपाक्ष की कहानी है।

इसी समय के हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्वन् म दो स्त्रियो बुद्धि और सिद्धि की कहानी है।

लिच्छवि

लिच्छवि गण सबसे सशक्त था। लिच्छवियो ने बुद्ध के लिए स्तूप बनाया था। इन्होंने महावीर की मृत्यु पर भी दीपक जलाये थे।

रामायण के अनुसार वैशाली, इक्ष्वाकु-पुत्र विशाल ने बसाई थी। यह विष्णु पुराण के अनुसार इक्ष्वाकु वश के निमित्त ने बसाई थी। जो हो, प्रगट होता है कि ये इक्ष्वाकु हो थे।

ये लोग वेदो को नहीं मानते थे। ये व्रात्य थे। महावीर और बुद्ध का इनसे सम्बन्ध था।

ये लोग मुर्दे को जानवरों के खा डालने के लिए टाग देते थे।

लिच्छवि वज्जि सघ म थे। वज्जि— लिच्छवि वज्जि, तीरभुक्त इत्यादि थे। ये आठ कुल थे— ये सब एक समान रहते थे। लिच्छवि सुन्दर थे।

इनमें दार्शनिक और धार्मिक स्वभाव काफी थी। वज्जि प्रदेश वही था जहा प्राचीन काल म सम्राट जनक और याज्ञवल्क्य के शुक्ल यजुर्वेद पर विवेचन होते थे। बाद म यह गण बन गया था। यहा यक्ष (यम) शारनवाद की उपासना प्रचलित थी।

चैत्य *विशेषतया वृक्षपूजा थी। बौद्ध पूर्वोपासना थी। सम्भवत यह यक्षा* का प्रभाव अवशिष्ट था। यही भूभाग पहले यक्षा का क्षेत्र भी था।

मल्ल

मल्ल पूर्वी भारत का शक्तिमान गण था। भीम ने मल्लो को प्राचीन काल म जीता था। मल्ल कुसीनारा और पावा म बँट गये थे। मनु ने मल्लो को क्षत्रिय और व्रात्य क्षत्रिय की सन्तान माना है। ये अपने को राजा कहते थे। इनका सघ था। मल्ल योद्धा थे। कुश्ती के शौकीन थे। कुसीनारा के एक राजा का बधुल नामक पुत्र तक्षशिला पढने गया था। वहा कोसल का पसेनदी और वैशाली के लिच्छवि राजकुमार महालि साथ पढते थे। मल्ल दार्शनिक चिंतना म

नाग रहते थे। लिच्छवियों की भाँति मल्ल बौद्ध जैन धर्मों के प्रथम पूजक थे। मकुटबंधन उनका एक चैत्य था। जैन धर्म के अनुयायी कई मल्ल थे। पावा में महावीर की मृत्यु हुई थी।

भागवत और भक्त

भागवत और भक्त केवल विष्णु और विष्णु के भक्तों को कहना ठीक नहीं है। यह गुप्त काल में विष्णु से जुड़ा है। उससे पहले न तो यह बौद्ध धर्म और शैव धर्म से जुड़ा था। मज्झिम निकाय १ | १४२ में वह जो मुझमें श्रद्धा रखता है और मुझसे प्रेम करता है स्वर्ग प्राप्त करेगा। और महाभारत में सब प्रकार का अपराध करने पर भी लोग शिव की मानसिक पूजा करने पर पाप से मुक्त हो जाएँगे। भगवद्‌गीता का भाव दर्शन है।

चारों दिक्पालों को जिनमें कुबेर भी एक है विष्णु के साथ भागवत पुकारा गया है (महाभारत)। कुबेर विष्णु से पुराना देवता है। पाणिनि ने भी ४ ३ ९७ में महाराजा के प्रति भक्ति दिखाई है। मथुरा के एक लेख में नाग दधिकर्ण को भगवन कहा गया है। भरहुत के शिलालेख तथा पिपरहवा घट के लेख पर बुद्ध को भागवत कहा गया है। महान् यक्ष मणिभद्र की पवाया मूर्ति के नीचे लेख है जिस पर उस देवता को भागवत कहा गया है और उसका निर्माण करने वाले अपने को मणिभद्र भक्त लिखते हैं।

यक्ष पूजा एक भक्ति सम्प्रदाय था मूर्तियाँ मन्दिर बलियाँ और चढ़ावा के साथ।[1]

---

1 आनन्द कुमारस्वामी यक्ष पृ० 36

ब्रह्मा का दिन इस समय गणना स यश का सम्बन्ध ज्ञिलाता है।) लका का द्वीप भूमध्य रखा स ३० के साथ रखना चाहिए।[1]

प्राचीन काल म य ी रखा विश्व के समय का निश्चित करती थी।

ग्रीनिच समय स भारतीय प्रामाणिक समय ५ घट आग है। ग्रीनिच म जब बारह बजता है तब भारत म पौ फटन लगता है और वह ब्राह्म मुहूर्त कहलाता है (ब्रह्मा का दिन) नया दिन आरम्भ होता है। अग्रजा का नया दिन आधी रात को आरम्भ होता है। इमस स्पष्ट है कि रात दिन के समय का ज्ञान हमारा दिया हुआ है।

आज हम जिसे लका या सीलान कहत है वहाँ रावण का कोई स्मृति चिह्न नही है। उसकी वह स्थिति भी नहीं है वह उज्जैन के देशान्तर पर ठीक भूमध्य रेखा पर स्थित थी। कृष्ण के मरने पर जब प्रलय (लगभग १ ५० ई० पूर्व) हुई तब द्वारका डूब गई तथा दूर की दक्षिण की पुरानी मदुरा डूब गई और की पुरानी महान् सभ्यता नष्ट हो गई यद्यपि उसके ाक द्वीप डूब गए महानिनी द्वीप डूब गया। उन द्वीपो के डूबने से सागर का ज्ञान उस खाली स्थान को भरने भागा। भागा हुआ इनरत भूमि और उमरे साथियो के सामने खाली जगह मिलने आई। यह २० ०० मिनट का काम था। पानी फिर लौट कर समतल आ गया और पीछा करती हुई परोष की सेना डूब गई।

तमिल भाषा म कन्याकुमारी के दक्षिणी भू भाग का वणन है। तमिल के तीन सगम काल का वणन है। पहला और दूसरा सगम (एक प्रकार की परिषद जिसम विद्वान सम्मिलित होकर रहते थे और वे रचनाओ को सुनने पर उन्ह मान्यता प्रदान करते थे)[2] के नगर प्राचीन मदुरा और कपाटपुरम् थे। प्राचीन मदुरा के डूबने पर कपाटपुरम् प्रमुख नगर बना। फिर उसके डूबने पर[3] नई मदुरा (आज भी स्थित) म तीसरा सगम काल आरम्भ हुआ जो इसवी पहली सदी स तीसरी सदी तक था।

रामायण महाभारत स लेकर म यकालीन साहित्य तक म लका और सिंहल अलग अलग मान गए हैं।

१ बाल रामायणकार कवि राजशेखर ने सीता-स्वयवर के अवसर पर सिंहल नरेश राजशेखर के साथ लकापति रावण का सवाद दिखाया है।

२ पुष्पक विमान स आते समय लका स कुछ दूर चलकर विभीषण कहते हैं यह सिंहल है।

३ भागवत पुराण (१ १८ ३०) म शुकदेव जी ने जम्बू द्वीप के आठ उप

---

1 Welford F Asiatic Researches Vol X p 146

2 यही रिवाज मुहम्मद साहब स पहल अरब में था।

3 वाल्मीकि रामायण किष्किंधा काण्ड 41–17

यक्षों से भय था और वे उन्हें भूतों में गिनते थे। उनकी आँखें निश्चल थीं, परछाईं नहीं पड़ती थी और वे निडर और क्रूर स्वभाव वाले होते थे। यक्ष मनुष्य और पशुओं का मांस खाते थे और रेगिस्तान तथा जंगलों, पहाड़ों और नदियों में घूमा करते थे। यक्षिणियों का स्वभाव तो और भी क्रूर होता था और वे अक्सर रूप बदल कर मनुष्यों को फुसलाकर उन्हें अपना शिकार बनाती थीं। यक्ष मनुष्यों पर आते भी थे। बनारस में धर्म में बहुत युग युग तक यक्षों की पूजा होती थी क्योंकि इस युग की बनी हुई परखम की यक्ष मूर्तियाँ भारत कला भवन बनारस तथा सारनाथ संग्रहालय में हैं।

जैन साहित्य से भी इस बात का पता चलता है कि ईसा पूर्व की शताब्दियों में यक्ष पूजा बहुत प्रचलित थी और उत्तर भारत के प्रत्येक शहर में यक्षों के चैत्य होते थे। इस साहित्य से यह भी पता चलता है कि कुछ यक्ष जैन धर्म के भी भक्त थे तथा तपस्वियों का आदर करते थे (उत्तराध्ययन | १८ इत्यादि)। वाराणसी के गंडितिंदुग नाम के यक्ष का नाम उत्तराध्ययन (१२ | १६) में आया है। यह यक्ष मातंग ऋषि के गंडितिंदुग उद्यान की रक्षा करता था। यक्ष अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन लोगों की मदद करते थे। पुत्र-कामिनी स्त्रियों के मानता मानने पर यक्ष उनको पुत्रप्राप्ति का वरदान देते थे। यक्ष लोगों की बीमारियों में भी मदद करते थे। एक जगह कहा गया है कि मणिभद्र यक्ष की प्रार्थना करने पर उन्होंने माता के रोग से नगर की रक्षा की। यक्ष कुमारी स्त्रियों का भी पता पा लेते थे। मणिभद्र और पुण्यभद्र यक्ष उस समय मगध और अंग में पुजते थे।

पर यक्ष केवल दयालु ही नहीं होते थे वे लोगों को मार भी डालते थे और अक्सर जैन साधुओं को रात में भोजन कराके उनका नियम भंग करवा देते थे। यक्ष लोगों के सिर चढ़ जाते थे और भाग्य फूटने के बाद निकलते थे। एक विचित्र विश्वास यह भी था कि यक्ष स्त्रियों से मैथुन भी करते थे। नीची जातियों के यक्ष अलग होते थे। यक्षों के उपलक्ष्य में बहुत से उत्सव भी होते थे।

यक्षों के बारे में जो बातें बतलाई गई हैं उनका सम्बन्ध मगध और अंग के यक्षों से है पर काशी के यक्षों और मगध के यक्षों की पूजा में कोई भेद नहीं था। सम्भवतः काशी में यक्ष अथवा देव पूजा में भेंट बकरा, मुर्गी, सुअर इत्यादि पशुओं और पक्षियों के बलिदान होते थे और पूजा में गंध पुष्प के अतिरिक्त कभी पशुओं के रक्तरंजित शव भी चढ़ाये जाते थे। (जा० १ | १७६ | १२७)

मत्स्य पुराण (अध्याय १८०) में यक्ष हरिकेश की कहानी से काशी की यक्ष पूजा पर काफी प्रकाश पड़ता है और यह भी पता चलता है कि शिव-पूजा के आदान के द्वारा यक्ष-पूजा काशी में कैसे हटी? हरिकेश यक्ष पूर्णभद्र यक्ष का पुत्र था। वह अत्यन्त शुद्ध आचरण वाला और तपस्वी था तथा बचपन से ही शिव भक्त था। हरिकेश के इस आचरण से पूर्णभद्र यक्ष बहुत कुपित हुआ और उसने उसे घर से

निकाल बाहर करने की धमकी दी। पूर्णभद्र की राय में हरिकेश का आचरण यक्षों के आचरण के प्रतिकूल था। यक्ष तो स्वभावतः क्रूर, मांस खाने वाले और हिंसाशील होते थे, क्योंकि हरिकेश को मनुष्यों का आचरण शोभा नहीं देता था। जब हरिकेश ने अपने पिता की बात न माना तो उसे अपना घर छोड़ देना पड़ा और वाराणसी में आकर उसने एक हज़ार वर्ष तक शिव की आराधना की (मत्स्य० १८० | -२०)। शिव ने इस घोर तपस्या से प्रसन्न होकर हरिकेश से वर मांगने को कहा। इस पर हरिकेश ने वाराणसी में सदा स्थित रहने का वर मांगा। शिव ने उसकी इच्छा स्वीकार कर ली और उसे काशी का क्षेत्रपाल नियुक्त किया और उसके सहायक यक्ष दण्डपाणि, उद्भ्रम और संभ्रम यक्ष नियुक्त किये गये (मत्स्य० १८० | ८८ | ६६)। मत्स्य पुराण में एक दूसरी जगह (१८ | ६२ | ६१) वाराणसी के शिव गणों में यक्षों के बहुत से नाम गिनाये गये हैं, यथा विनायक, कूष्माण्ड, गजतुण्ड, जयन्त, मदोत्कट इत्यादि। इनमें कुछ सिंह और व्याघ्र मुख वाले होते थे। कुछ का आकार विकट था और कुछ कुब्ज और वामन होते थे। दूसरे गण नन्दी, महाकाल, चण्डघंट, महेश्वर, दण्ड, चण्डेश्वर तथा घण्टाकर्ण थे। ये बड़े पेट वाले यक्ष वज्रशक्ति वाले होते थे और सदा अविमुक्त तपोवन की रक्षा करते रहते थे।

इस कथा से कई बातों का संकेत मिलता है। सबसे पहली बात तो यह है कि हरिकेश यक्ष की पूजा बनारस में होती थी[1] और इस यक्ष का सम्बन्ध पूर्णभद्र यक्ष से था। दूसरी बात यह है कि जिस समय बनारस में यक्ष पूजा प्रचलित थी उस समय वहां शिवपूजा भी जारी थी। लगता है यक्ष और शैव धर्म में बराबर कशमकश जारी रही। अन्त में दोनों धर्मों में समझौता हो गया था या यों कहिये कि शैव धर्म ने यक्ष धर्म को अपने में मिला लिया और जितने यक्ष थे वे शिव के पार्षद हो गये। मत्स्य पुराण (१८० | ६६) में एक जगह यहां तक कहा गया है कि महायक्ष कुबेर ने भी वाराणसी में अपना स्वभाव छोड़ दिया और गणेशत्व पद को प्राप्त हो गये। शिव के सेवक हो जाने से मुद्गरपाणि यक्ष द्वार द्वार पर रक्षक का काम करने लगे (मत्स्य १८३ | ६६)। शैव धर्म की यक्ष धर्म पर पूर्ण विजय कब हुई यह तो कहना कठिन है पर यह यकायक नहीं हुई यह तो निश्चित है। संभवतः गुप्त काल में शैव धर्म की यक्ष धर्म पर पूर्ण विजय हो गई। कम से कम हम पुरातत्त्व के आधार पर तो इसी नतीजे पर पहुँचते हैं।

पूर्णभद्र और हरिकेश में जब बहस होती थी तब पूर्णभद्र उसको वाराणसी जाने से रोकने का कारण अपना वैभव बतलाता था। बनारस में परम्परा बहुत मुश्किल से मरती है। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी हरिकेश यक्ष आज के दिन

1 इसकी पूजा आज भी हरसू बरम के रूप में बहुत अधिक फैली हुई है।

वाराणसी से थोड़ी दूर पर मंझा में रेणु परत्र के नाम से तथागत के द्वारा आदिवा द्वारा पूरे जाते हैं। आज भी उक्त नाम सबसे माली जाता है तथा रेणु परत्र शिखा के सिर पर आते हैं और भी पवित्र की बातें बताते हैं। … जिन का रेणु वरत्र का ही प्रसिद्ध माने जाते हैं।

धर्म और यक्ष

२१०० ईसा पूर्व में प्रलय आने से पहले ही भारत में जातियों का समन्वय हो गया था। जातियों में युद्ध का सबसे बड़ा कारण भोजन सामग्री होता है किन्तु प्रकृति ने इस भारत को मुक्त हस्त से प्रदान किया था। वेद में वर्णित देवों के समर बहुधा पणियों के गायें भगाकर ले जाने पर या असुरों के पानी न देने पर हुए थे। इन्हीं के कारण जातियों में मित्रता भी बनी थी। और यह मित्रता गन्धर्वों से सोम खरीदने पर तथा यक्षों से व्यापार के कारण बनी थी।

प्रलय के बाद मनु के नेतृत्व में यह समन्वय दिन दूना रात चौगुना बढ़ा। इसका प्रभाव धर्म पर बहुत अधिक पड़ा। आगे चलकर वैदिक काल के धर्म और ईसवी सन् से बाद के धर्म में जमीन आसमान का अन्तर आ गया। यज्ञ का स्थान उपनिषद् और बौद्ध धर्म के मोक्ष ने ले लिया। लेकिन वह भी धीरे धीरे भूल गया। उसका स्थान कर्म के धर्म ने लिया— पूजा और साधना।

यज्ञ आदिम रूप था धर्म का। जो कुछ मिला अग्नि के सामने मिल बैठकर खा लिया। इस बाहरी जीवन के आचार के स्थान पर आंतरिक जीवन के व्यवहार पर जोर आया और मुक्ति ध्येय बन गई। लेकिन उसमें भी संन्यासियों और भिक्षुओं पर जोर था जो मानव को असामाजिक बनाता था। फिर गृहस्थ ही जीवन की धुरी बना। संसार को छोड़कर वन की ओर न भागो। कर्म करते हुए अपना ध्येय अपनी मुक्ति प्राप्त करो। यह कर्म पूजा और साधना से गृहस्थ जीवन में ही पाया जा सकता है। गीता का संदेश आया। भारतीय सभ्यता का अन्तिम ध्येय निर्वाण या मोक्ष नहीं है गृहस्थ जीवन को छोड़ना नहीं, बल्कि अपना कर्तव्य करना है। और यहाँ इस कर्मयोग में आत्मिक सहायता शुद्ध ज्ञान में नहीं बल्कि उच्च शक्तियों की भक्ति में जो व्यक्तिगत रूप से मानी जाने पर तथा अनुकूल पूजा और साधना से उपासना करने पर पाई जा सकेगी।[1]

आरम्भिक वैदिक साहित्य में आज के धर्म के लगभग सभी मूल तत्वों का अभाव है। संसार (जन्म मृत्यु का चक्र) कर्म धार्मिक संन्यास, योग भक्ति इन सब विचारों का ब्राह्मणों उपनिषदों और विशद रूप से महाकाव्यों गीता आदि में प्रचलन हुआ है साथ ही शिव विष्णु यक्ष, नाग की पूजा का भी। प्रत्यक्ष है

---

1 डा० आनन्द कुमारस्वामी यक्ष भाग I पृ० I

कि ये विचार वैदिक परम्परा से नहीं वरन् कुछ अन्य परम्पराओं से आए हैं।[1]

'यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और किन्नर आदि पहाड़ी जातियों की संस्कृति परवर्ती आर्य साहित्य में भरपूर मिलती है। पौराणिक साहित्य में तो इनकी विशिष्ट महत्ता जान पड़ती है— इन्हीं के देवताओं, इन्हीं की पूजाविधि, इन्हीं के विश्वासों और अन्धविश्वासों को सर्वप्रथम मान्यता दी गई है। इनका प्रदेश स्वर्ग और इन्द्रलोक कहलाने लगा। न जाने कितनी मणियां, पर्वतीय फल फूल और अन्य उपज के नाम इन जातियों से ग्रहण किए गए।'[2]

वरुण

वेद में वरुण को सबसे पहला देवता माना गया है जिसकी प्रशंसा में सूक्त कहे गए हैं। वह पृथ्वी पर ऋत को स्थिर रखने वाला है। कुबेर भी वरुण के अधीन माना गया है। बाद में वरुण का स्थान इन्द्र ने ले लिया है।

वरुण जल का देवता है। जल से देवों का कोई सम्बन्ध नहीं था। जल से यक्षों और नागों का सम्बन्ध था। अधुनातन अध्ययनों ने प्रदर्शित किया है कि वरुण नामक वैदिक देवता का सम्बन्ध यक्षों, गन्धर्वों, असुरों और नागों से था। एक स्थान पर ऋग्वेद (७ ६५ २) में वरुण को असुर कहा गया है। अथर्ववेद (१ १०) में भी वरुण को असुर कहा गया है जो देवों पर शासन करता है और जिसके आदेश माने जाते हैं। अयन वाजसनेयी संहिता (३ १५२) में वरुण को असुरों और देवों पर राज्य उल्लिखित है। शतपथ ब्राह्मण (४ ३ ७ ८) में सम्राट वरुण के जन गन्धर्व और साम के अप्सरा बताए गए हैं। ये जल और उर्वरता के देवता बाद में इन्द्र के दरबार के संगीतज्ञ और नर्तकी हो गए। गन्धर्व आरम्भ में सम्राट *वरुण के आदेश पर सोम की रक्षा करते थे* (शतपथ ब्राह्मण III 3 3 11) और इसी कारण इन्द्र के सामन्तों के लिए सोम गन्धर्वों से विक्रय करना पड़ता था (एतरेय ब्राह्मण I 27 1) तथा इसी कारण ऋग्वेद में (VIII 1 11 और VIII 66 5) इन्द्र गन्धर्वों का सामान्यतः रिपु है।

कुमारस्वामी ने सबसे पहले अपनी पुस्तक यक्ष में दर्शाया था कि अथर्ववेद (१० ७ ३८) में वरुण, ब्रह्मा या प्रजापति का जीवन का सर्वोच्च और परम स्रोत बताते हुए कहा है कि एक महान् यक्ष सृष्टि के मध्य में जल के किनारे तमस में लेटा हुआ जन्य अन्य देवता एक वृक्ष के तने से निकली शाखाओं के समान स्थिर थे। यही वर्णन आगे चलकर महाभारत में जल के ऊपर विश्राम करते नारायण और उनकी नाभि से निकलते डंठल पर कमल पर बैठे ब्रह्मा की उत्पत्ति का

1 देखिए डा० कुन्ना पोमा, सनाट, जेकोबी, कीथ, मैक्डानल, वागल, चार्पेंटियर
2 डा० हरदेव बाहरी, भाषा का इतिहास, हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड, पृ० 124

समुद्र रत्नालय है और वरुण समुद्राधिपति। इसी कारण वरुण को लक्ष्मी निधि माना जाता था। बाद म यह शब्द कुबेर का वाचक हो गया। समुद्रोत्पन्न लक्ष्मी का एक नाम वरुणानी भी है जो सत्तपूर्ण है।[1] साहित्य में दो स्थाना पर लक्ष्मी का कुबेर की पत्नी कहा गया है। ईसवी सन् के आसपास की मथुरा म कुबेर और लक्ष्मी की एक साथ मूर्ति पाई गई हैं जिसके नीचे फलक पर कुबेर और कुबेर की पत्नी लक्ष्मी लिखा है। जब कुबेर का स्थान गणेश न ले लिया तब लक्ष्मी गणेश की पत्नी प्रसिद्ध हुई। महाभारत के कुछ स्थाना म उन्ह गणेश की पत्नी लिखा है और शिल्प म भी दर्शाया गया है। आज भी हम दीपावली (यक्षपूजन) के दिन गणेश और लक्ष्मी की पूजा करते है।

वरुण के पाश का पापा के दण्डस्वरूप बताया गया है। यह पाश सूखा (अकाल) है और यक्ष्मा है। यक्ष्मा (टी बी) अमीर आदमिया का रोग है। इसका यक्ष स सम्बन्ध है शाब्दिक भी (यक्ष से यक्ष्मा) कारण से भी (भरपूर भोजन के कारण होता है) और अथ से भी (आज भी यह राज रोग कहलाता है और यक्ष का दूसरा नाम राज पाया जाता है)। इन पाशा से बचन के लिए वरुण की पूजा की जाती थी। यही पाश कुबेर के हाथ म वर्णित तथा शिल्प म दिखाया गया है।

ब्रह्मा

ब्रह्मा भारतीय धम म सजक मान गय हैं विष्णु पालक और शिव सहारक। वस यह इन निर्मूर्तियो की सकल्पना का बहुत सरलीकरण है लेकिन इसम इतिहास छिपा हुआ है। ब्रह्मा को यक्ष के अथ म वेद ब्राह्मण और उपनिषद म माना गया है। यह ब्रम्मा शब्द का सस्कृतिकरण है। तिब्बत से आने वाला नद सागपो असम म उतरकर ब्रह्मपुत्र कहलाया। ब्रम्मा लोगा ने ही पूव म जाकर ब्रह्मा (बरमा इसी साल दिया गया नाम म्यन्मा) को बसाया। जनिया मे भी ब्रह्मा को यक्ष अपनी शक्ति के साथ दिखाया है। हिंदू शिल्प म ब्रह्मा चार मुख वाले, चार हाथ वाले कमल पर स्थित मात हसा की सवारी करते दिखाए गए हैं। उनके कानो म कुण्डल है सीने पर यज्ञोपवीत और बाल जटा मुकुट म बधे हुए। उत्तरीय ऊपर आता हुआ और उदर वध नीचे पड़ा हुआ।

उपनिषदा म ब्रह्म का सवप्रथम वणन हुआ क्योंकि उनम पूव के ऋषियो का नाम है। ब्राह्मण म जो पुरुषमेध अश्वमेध यज्ञ सम्राट वरुण की पूजा के लिए वर्णित हैं उनका बहिष्कार कर मानव कुल के यक्ष ऋषियो न ब्रह्म पर, जो अपने अन्दर स्थित है जोर दिया। साथ ही पश्चिम भारत म भी ब्रह्म का प्रभाव दिखाई

---

1 विस्तार के लिए देखिए आनन्द कुमारस्वामी यक्ष खण्ड 2

देता है— कुरुक्षेत्र के ब्रह्मसर में और अजमेर की पुष्कर झील में। दक्षिण भारत में भी ब्रह्मा की पूजा पाई जाती है।

यज्ञों में सदैव हमारी संस्कृति फली, शायद इसी कारण यज्ञों के देवता ब्रह्मा को सर्जक माना गया है। इसी कारण सम्भवतः सारा ज्ञान ब्रह्मा से उत्पन्न बताया जाता है— वेद से लेकर संगीत शास्त्र, नाट्य शास्त्र, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, वास्तुशास्त्र (मत्स्य पुराण २५२ २), दण्डनीति (महाभारत, शान्ति पर्व ५९ ८०) आदि आदि। हमारी लिपि भी ब्राह्मी कहलाती है। 'ब्रह्मा' भारतीयों के तीन देवताओं में से पहले देवता हैं जिन्होंने सृष्टि रची है। उनका सर्जक रूप दर्शाने के लिए उन्हें प्रजापति, विश्वकर्मा और विधाता भी कहा गया है।[1] उपनिषदों में उन्हें सृष्टि का मात्र कर्त्ता नहीं माना है बल्कि कहा गया है कि सारी सृष्टि में वह सर्वप्रथम उत्पन्न हुए थे। (मुण्डक उपनिषद् १ १ १) और इन्होंने अथर्वन् को ब्रह्मविद्या प्रदान की थी (मु उ १ १ २)। अथर्वन् को वेद के बाहर के ज्ञान का ज्ञाता कहा जाता है। ब्रह्मा ने नारद को भी ब्रह्मविद्या का ज्ञान कराया था (गरुड़ उपनिषद् १ ३)। जैसा हम अन्यत्र लिख रहे हैं नारद मुनि निराले ढंग के थे।

पुराणों में भगवान् विष्णु ने रसातलगामी पृथ्वी का उद्धार किया जिससे आगे चलकर ब्रह्मा उत्पन्न हुआ (मत्स्यपुराण १६९ २, भागवतपुराण ३ ८ १४)। महाभारत में लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्र अन्धकार था। उस समय एक विशाल अण्ड प्रकट हुआ जो सम्पूर्ण प्रजाओं का अविनाशी बीज था। उस दिव्य एवं महान् अण्ड में सत्यस्वरूप ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हुआ। उस अण्ड से ही प्रथम ब्रह्मचारी प्रजापालक देवों के गुरु पितामह ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ।[2]

पुराणों में ब्रह्मा का शिव से विरोध स्थल-स्थल पर वर्णित है जिसमें शंकर ने उनका घमण्ड चूर किया, इनका पाँचवाँ मुख काट लिया और इन्हें न पूजे जाने का शाप दिया। मत्स्य पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के शंकर से कहने पर कि "इस पृथ्वी पर तुम्हारे अस्तित्व होने के पूर्व से मैं यहाँ निवास करता हूँ, मैं तुमसे हर प्रकार ज्येष्ठ हूँ।" शंकर ने क्रोध करके इनके मस्तक को अपने अँगूठे से मसलकर फेंक दिया।[3] इस आख्यान से पता चलता है कि यज्ञों का पहले

---

1 सर्जक के अतिरिक्त कहीं कहीं ब्रह्मा को सृष्टि का संहारक और रक्षक भी कहा गया है— देखिए वि० संवत् 689 का यशोधर्मन् का मन्दसौर अभिलेख। डी भट्टाचार्य कल्ट ऑफ ब्रह्मा पृ० 245

2. महाभारत आरण्यक पर्व 1 31 स्कन्द पुराण 5 1 3

3 मत्स्य पुराण 183 84–86

आविर्भाव हुआ था परन्तु वे शिव के असह्य यक्षों के सामने न ठहर सके और हार गए।

शिव पुराण रुद्र संहिता में लिखा है कि ब्रह्मा एक बार शिवपत्नी सती के रूप-यौवन पर आकृष्ट हुआ जिस कारण शंकर क्रुद्ध होकर इसे मारने दौड़ा। विष्णु ने शंकर को रोकना चाहा फिर भी शंकर ने इसे विरूप और 'ऐंद्रशिव' बनाया जिससे यह संसार में अपूज्य ठहराया गया।[1] अन्यत्र शंकर ने अपनी सन्ध्या नामक सुन्दर कन्या को इसे दिखाया, ब्रह्मा मोहित हो गया और इसके पुत्रों को वह अशोभनीय कार्य दिखाकर शंकर ने इसका उपहास उड़ाया।[2] शतरूपा अथवा सावित्री इसके द्वारा ही उत्पन्न की गई थी। इसने उसे अपनी धर्मपत्नी बनाकर भोग किया।[3] पुराणों से प्राप्त यह कथा वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रजापति द्वारा अपनी कन्या उषा से किये गए 'दुहितृगमन' से मिलती जुलती है।[4]

ब्रह्मा के अपूज्य होने की एक अन्य कथा है। एक बार ब्रह्मा ने यज्ञ की दीक्षा लेकर यज्ञ आरम्भ करना चाहा। तभी उसे ध्यान आया कि सावित्री उपस्थित नहीं है जबकि पत्नी बिना यज्ञ आरम्भ नहीं किया जा सकता। उसने सावित्री को बुलाने भेजा किन्तु उसे आने में देर हो गई। चिढ़कर ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा कि वह और कोई स्त्री ले आए। इन्द्र की लाई ग्वाल की कन्या को गायत्री नाम देकर ब्रह्मा ने उसका वरण किया और यज्ञ आरम्भ किया। कुछ देर बाद सावित्री आई और उसने देखा कि यज्ञ लगभग हो चुका है। क्रोधित होकर उसने ब्रह्मा को शाप दिया कि वह अपूज्य बनकर रहेगा, उसकी कोई पूजा नहीं करेगा।[5]

इन सब कथाओं से ब्रह्मा का यक्ष मूल पता चलता है। यक्षों के विलासी जीवन का उनके देवता में प्रतिबिम्ब है। इसी कारण वह शिव के तपोपूत रूप के सामने न ठहर सका और धीरे धीरे ब्रह्मा मानवों को अपूज्य हो उठा। जैसे गन्धर्वों का कामदेव भी शिव के तीसरे नेत्र से भस्म हो गया था। काम या मार फिर भी मनुष्य के तीसरे पुरुषार्थ का प्रतिरूप था, इसीलिये बार बार हारकर भी वह जीवित रहा। शिव से हारकर वह अनंग हुआ बुद्ध से हारकर वज्रयान में। वरुण और ब्रह्मा की पूजा आज लगभग समाप्तप्राय है किन्तु वे और कुबेर गणेश में परिवर्तित होकर पूज्य रहे। आगे चलकर इन सब सकल्पनाओं का और राम कृष्ण आदि के जीवनों का मिलकर विष्णु की सकल्पना में सम्मिलन हुआ जो शंकर के समान ही पूज्य हो गया।

1 शिव रुद्र सं 20
2 स्कन्द पुराण 2 2 23
3 मत्स्य पुराण 4 3 20 स्कन्द पुराण 5 2 12
4 एतरेय ब्राह्मण 3 333 मैत्रायणी संहिता 4 2
5 स्कन्द पुराण 7 1 165

प्राचीन काल म सरस्वती और दृपद्वती नदिया के बीच की भूमि ब्रह्मावत कहलाती थी। आग चलकर यह स्थल कुछ अन्य भागा के साथ मिलाकर आयावत कहलाया। क्या इसका यह अथ नही है कि ब्रह्म (यक्ष) और आय (दव) म अतर था और पहल ब्रह्म था फिर आय ?

ब्रह्मराक्षस शब्द साहित्य म बहुत आता है। न दिखाई दन वाला शक्तिशाली प्रेत जिस नए बनाए आलीशान घर बहुत पसन्द हैं। इसका मूल क्या है, आज पता नही। और न ब्रह्म भाज के अथ का। आज यह समस्त ब्राह्मणा को या सारे परिवार वाला का भोजन करान का अथ रखता है। क्या इन दाना शब्दा का यक्षा से सम्बन्ध है ? यक्ष प्रसिद्ध शिल्पी हैं।

विष्णु

विष्णु का प्रादुर्भाव काफी बाद का है पर त्रिमूर्ति के सदस्य होन के नाते कुछ शब्द यहाँ पर लिखित हैं। विष्णु की पूजा न ईसवी सन् के आरम्भ म महत्ता ग्रहण की[1] और गुप्त काल म यह प्रमुख मता म स एक मत बन गया।[2] महाकाव्या और पुराणा म इसकी महत्ता का वणन है जिन सब पुस्तका न ईसवी सन् के काफी बाद अपना वतमान कलेवर प्राप्त किया। वरुण ब्रह्मा गणश की सकल्पनाओ का नवीकरण और भारतीय पुरा इतिहास के महामानवा कुबेर, राम, कृष्ण आदि के गुणा स मिलाकर विष्णु की सकल्पना बनी है। वरुण कुबेर, और गणश के समान विष्णु चतुभुज है और वही वस्तुएँ हाथा म लिए है शिल्प म। साहित्य म एक हाथ म कृष्ण का चक्र भी जुडा है। कुबेर के सोने का पीला रग उनके पीताम्बर म झलकता है। मौय युग के बाद के समुद्री व्यापार के कारण सागर का नीला रग उनके शरीर का नीला रग बन गया। सागर की अनन्त लहरा (जो टकरा टकरा कर श्वेत भागा का क्षीर सागर बना रही हैं) पर यात्रा करती उनकी सहस्रफणा की शय्या हो गई और गणश की पत्नी लक्ष्मी की सकल्पना उनके साथ आ जुडी। क्या इसी कारण संस्कृत के एक कवि न और इसका अनुसरण करके हिन्दी कवि ने लक्ष्मी को कहा है— 'पुरुष पुरातन की वधू क्या न चचला होय' ?

विष्णु के महाभारत और वायु पुराण तथा वराह पुराण म दस अवतार गिनाए गए हैं। मत्स्य पुराण म इन दशावतारा म वेद व्यास और बुद्ध का भी नाम है।[3] भागवत मे विष्णु के बाईस अवतार बताए गए हैं जहा कपिल

---

1 जे एन बनर्जी Development of Hindu Iconography पृष्ठ 130-31

2 सुवीरा जयसवाल Origin and Development of Vaishnavism पृष्ठ 180
286 बनर्जी Religion in Art and Archaeology पृष्ठ 18-20

3 म० पु० 47 237 252

त्तात्रेय ऋषभ एव धन्वतरि को भी गिना गया है। हरिवंश पुराणादि म इन अवतारो का सख्या अनन्त बताई गई है—

प्रादुर्भाव सहस्राणि अनीतानि न सशय ।
भूयश्चव भविष्यन्तीत्यवमाह प्रजापति ॥[1]

तुलसीदास जी ने भी कहा है— हरि अनन्त, हरिकथा अनन्ता। विष्णु सहस्रनाम म सहस्र नाम भी गिनाए गए है। यह एकीकरण और सम्मिलन का बड़ा सुन्दर ढग था। भिन्न भिन्न जनजातियो या सगठित सम्प्रदायो के पूज्य को विष्णु का अवतार बनाकर अपन एव वष्णव धम म सम्मिलित करना। चाहे वह कूम हो जो बिहार और उडीसा के कुछ आदिवासियो का पूज्य था या मत्स्य जो उत्तर प्रदेश की जनजातियो का पूज्य चाहे वह बुद्ध हो चाहे ऋषभ चाहे कपिल हो या दत्तात्रय।

शिव

शिव को सृष्टि सहार का मूर्तिमान् माना जाता है। जो शिव कल्याण के अथ वाले है पावती के साथ वन वन नगर नगर घूमकर दुखियो का दुख दद दूर करते ह जिनका व्यवहार धनी निधन से एक सा है जो निधनो के भी निधन ह, जिन्होने जन कल्याण के लिए विष पी लिया उन्ह सहारक मानना उनके साथ अतीव अन्याय करना है। उनके मस्ती भरे ताण्डव नृत्य[2] को सहार का नृत्य बताना उन पर घोर अत्याचार करना है। शिव की उदारता और भोलेपन का लाभ उठाते हुए देव दानव, असुर, राक्षस सबको देखत ह। उनके नाम स ही अभिवादन का नमो शिवाय बना जिसका अथ है मैं आपके अन्दर विद्यमान कल्याणकारी तत्वो को नमस्कार करता हू आज की नमस्त और राम राम से अच्छा कितना सुन्दर अथगर्भित शब्द है।

सेवको के काय स स्वामी का नाम बदनाम होता ह। इनको पूजने वाले गणो म अधिकतर आदिवासी और विभिन्न भयकर जनजातियाँ थी जिन्होने अपने से अधिक सभ्य देवो यक्षो आदि जनजातियो का विनाश किया या शिव की पूजा करने को मजबूर किया। फिर इनका पूजक महान् सम्राट राक्षसराज रावण हुआ जिसने एक बार सारी सभ्य पृथ्वी को हिलाकर रख दिया। इस कारण इन्हे सहारक समझने की गलतफहमी उत्पन्न होना स्वाभाविक है या यह हो सकता है कि आदिवासियो का यह आदिम देवता आरम्भ म बहुत क्रूरकर्मी रहा हो और किरात आदि जनजातियो ने इसे अपनाकर इसकी सकल्पना का उदात्तीकरण किया हो। साथ ही सब देवताओ को वद म ठूसने के पागलपन ने इस आदि

1 हरिवंश पुराण 1 41 11 ब्रह्म पुराण 213 17

2 अरुण धम नकोश पृ० 135

देव को रुद्र से मिला दिया जो ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थों में निसर्ग प्रताप का एक सामान्य देवता था। यह केवल कल्पना है।

डा० ग्रियरसन ने लिखा है कि शिव तमिळ शब्द है जो अति प्राचीन काल में ही आर्य भाषा में प्रवेश कर चुका था।'[1] आज भी शिव को मानने वाले दक्षिण में करोड़ों हैं। शैव सिद्धान्त के अनुसार शिव प्रेम और दया के स्वरूप तथा मोक्ष देने वाले हैं। शिव की शक्ति ही सती है। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश निकलकर सारे संसार को सजीव और सक्रिय बनाता है उसी प्रकार शिव की शक्ति सती इस जगत का संरक्षण करती है। शिव को प्रेम और दया का रूप मानना और भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का साधन मानना शैव सिद्धान्त की सबसे बड़ी विशेषता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के तीन तत्त्व हैं— पति, पशु और पाश। *पति समस्त जीवों (पशु) के स्वामी भगवान शिव हैं* पशु जन्म मरण के बन्धन में पड़ा हुआ है जीव समूह है और पाश वह भौतिक बन्धन है जिसमें पड़कर पशु (जीव) अपने पति (शिव) से पृथक् हो गया है। जीव सांसारिक विषय वासना के मोह में पड़कर भगवान से दूर होता जाता है और इस पाश के बन्धन में फँसता जाता है। इस पाश से निकलने का एकमात्र साधन भगवान शिव की भक्ति और ज्ञान है।

शिव का आदि स्थान मेरु पर्वत बताया गया है (महाभारत अनुशासन पर्व १७ ९१)। विष्णु पुराण के अनुसार हिमालय पर्वत और मेरु एक ही हैं (विष्णु पुराण २ २)। महाभारत में ही आश्वमेधिक पर्व में इनका निवास स्थान मुंजवान् पर्वत बताया है जो कैलास के उस पार है।[2] कैलास को भी इनका निवास स्थान बताया गया है।[3] लेकिन इनका सबसे प्रिय स्थान काशी में स्थित श्मशान था।[4] इसी कारण काशी को शिव की नगरी कहा जाता है। दक्षिण में भी इन्हें पहाड़ी प्रदेश का देवता माना है और महेन्द्र गिरि इनका निवास स्थान है।

शिव का तपस्या स्थान हिमालय का मुंजवान् शिखर बताया गया है। वहाँ वृक्षों के नीचे पर्वतों के शिखरों पर एवं गुफाओं में ये पार्वती (उमा) के साथ तपस्या करते हैं। इनकी उपासना करने वाले देव-गन्धर्व, अप्सरा, यातुधान, राक्षस और कुबेर आदि अनुचर विकृत रूप में वहाँ रहते हैं जो रुद्रगण नाम से प्रसिद्ध हैं।[5]

---

1 अवधनन्दन तमिल साहित्य और संस्कृति पृ० 129
2 महाभारत आ० 8 1 श्लो० 17-26 वायु पुराण 47 19
3 महाभारत भीष्म पर्व 7 31 ब्रह्म पुराण [redacted] 22
4 महाभारत अनुशासन पर्व 141 17–19 नीलकंठ टीका
5 महाभारत आश्वमेधिक पर्व [redacted] 1–12

इन भाँति भाँति के प्रसंगों में इतिहास की झलक देखी जा सकती है। या तो काशी में शिव गणों ने अपना अभियान श्मशान से आरम्भ किया था या यक्षों को हराकर काशी को उनका श्मशान बना दिया था। तत्पश्चात् यक्ष जाति पहाड़ी जातियों ने कुबेर को छोड़कर शिव को अपना लिया और शिव और पर्वत शिव और किरात वंश का साथ हो गया। शिवोपासना पुरुषों में फैल गई परन्तु स्त्रियों ने कुबेर की पूजा नहीं छोड़ी। पर्वत-कन्या (पार्वती) ने धारण किया था कुबेर हाथी के सिर को धारण करके गणेश रूप में शिव का बड़ा पुत्र बन गया और यक्षों का पूज्य स्कन्द शिव का छोटा पुत्र कहलाया। मगध में बना था वह छोटा सा सोने रूप नाओं का अपने अन्दर मिश्रण करके विष्णु रूप में शिव का जोड़ीदार बन गया।

शिव की बहुधा मूर्ति होती ही नहीं लिंग मात्र बना होता है। नश्वर योगीराज है वह स्वयं उस तत्त्व के प्रतीक हैं जिसे अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्—जो अक्षर अभय है, शब्द स्पर्श रूप रस, गन्ध से परे है उसके प्रतीक उसकी मूर्ति में भी किसी प्रकार की आकृति कोई अवयव कोई अंग नहीं होना चाहिए। यह लिंग उस ज्योतिर्लिंग का भी सूचक है जिसका साक्षात्कार योगी को हृदय चक्र में प्रत्यक्ष होता है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि लिंग और यह अर्घा जिसमें वह स्थापित होता है लिंग और योनि पुरुष तत्त्व और स्त्री तत्त्व के चिह्न हैं जिनके योग से सृष्टि क्रम चलता रहता है। यदि कभी ऐसा था भी तो आज वह बात विस्मृत हो गई है।

अर्द्धनारीश्वर शिव पार्वती की सबसे सुन्दर कल्पना है। लोक बुद्धि शिव के रुद्र रूप को याद नहीं करती। उसने शिव का स्वयं एक चित्र बना लिया है। गाँव की चौपाल में बैठिये या घर के भीतर बूढ़ी नानी पोतों को कहानी सुना रही हो वही चित्र देखने को मिलेगा। शिव-पार्वती परदेश में घूमते रहते हैं और दीन दुखियों की सहायता करते रहते हैं। उनके कृपापात्र साधु, महात्मा ही होते हों ऐसी बात नहीं है। जो उनके दरबार में पहुँच जाय जिसकी पुकार कान में पड़ जाय उसकी सुनी जायगी चाहे वह कैसा भी हो। बड़ी और छोटी सभी बातों में समान रूप से अभिरुचि लेते हैं। जिस चाव से देवों की समस्यायें सुलझाई जाती हैं उसी प्रकार पति पत्नी की पंचायत की जाती है। मेरा तात्पर्य अर्द्ध-नारीश्वर विग्रह से है। आधा शरीर पुरुष, आधा स्त्री का आधे में महेश्वर, आधे में उमा। दोनों पृथक् हो ही नहीं सकते क्योंकि अलग होकर प्रत्येक आधा पूर्ण निर्जीव है। एक ही शरीर के दो आधे हैं इसीलिये उनमें बड़े छोटे का प्रश्न ही नहीं उठता। कालिदास ने रघुवंश में शिव पार्वती को वागर्थाविव सम्पृक्तौ (वाणी और अर्थ के समान मिले हुए) कहा है। अर्धनारीश्वर की संकल्पना उसी भाव की प्रतिकृति है।

कुबेर

बीच में निदेव की व्याख्या करने के बाद हम फिर यक्षराज कुबेर की ओर लौटते हैं।[1]

कुबेर यक्षों के राजा हैं। महाभारत में आये कुबेर के कुछ नाम निम्न हैं— अलकाधिप धनद, धनेश्वर धनाधिप धनेश्वर द्रविणपति, गदाधर गुह्यकाधिपति कैलासनिलय नरवाहन निधिप राजराज, राजराट राक्षसाधिपति राक्षसेश्वर वित्तपति वित्तेश यक्षाधिप यक्षाधिपति यक्षपति यक्षप्रवर, यक्षराट यक्षरक्षसभर्ता यक्षरक्षाधिप इत्यादि। उनका नगर अलकमन्दा बदरीनाथ से चार मील उत्तर में है जहां से अलकनन्दा नदी बहती है। आज अलकमन्दा का मात्र प्रचलित नाम माणा गाँव रह गया है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में अलकमन्दा की एक विशेष पहचान बतायी गई है कि वहां की मिट्टी सूंघने से ही मद आने लगता है। इतनी मादकता है उसकी धरती में। वह आज शंकर के पार्श्व हैं और दयलाक के कोषाध्यक्ष। परन्तु किसी समय उनका स्थान बहुत ऊंचा रहा था। आज भी जब कोई यज्ञ या वन्हि अद्ध वन्हि कृत्य होता है तो ब्राह्मण लोग यह आशीर्वाद पढ़ते हैं —

> राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।
> स मे कामान् कामकाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥

हम लोग अति बलवान राजाधिराज वैश्रवण (विश्रवा के पुत्र) को प्रणाम करते हैं। वह कामेश्वर हमारे सब कामों का इच्छित पदार्थों को हमें दें। वैश्रवण महाराज कुबेर को प्रणाम।

कुबेर के विषय में विस्तार से पीछे वर्णन किया जा चुका है। महाभारत के अनुसार उसने अग्नि और वायु की सहायता से सोना प्राप्त किया था। इसका अर्थ अग्नि की भट्ठी को वायु की धौंकनी से अत्यन्त प्रज्वलित करके सोने को पिघलाकर पत्थर से अलग करना है। वह उत्तर दिशा का दिक्पाल है। प्राचीन काल में सोना उत्तर से ही आता था।

प्राचीन भारत में कुबेर के स्वतन्त्र मंदिर होते थे। इसका पता बेसनगर (विदिशा के निकट) में प्राप्त दूसरी शती ईसा पूर्व के एक ध्वज-स्तम्भ के शीर्ष से लगता है। कुबेर का निवास वट-वृक्ष कहा गया है। इस शीर्ष के वट वृक्ष में एक घड़ा और रुपयों से भरी दो थैलियां दिखाई गई हैं।

एक कथा के अनुसार कुबेर को धन का स्वामी तो माना जाता है किन्तु उनकी पूजा नहीं होती। इस कथा में कहा गया है कि कुबेर की पत्नी ने एक दिन ताना मारते हुए कहा— तुम्हें अपनी सम्पत्ति का बड़ा गर्व है किन्तु लोग तुम्हारी

---

1 पीछे पृष्ठ 45

नहीं लक्ष्मी की स्तुति करते हैं। बात कुबेर को चुभ गई। कुबेर ने एक शानदार दावत दी। दावत में गणेश जी को भी बुलाया गया। गणेश जी ने खाना शुरू किया तो वे दावत का पूरा पकवान खा गए। पेट फिर भी नहीं भरा तो वे हीरे मोती तक खा गए। पेट फिर भी नहीं भरा कुबेर का खजाना खाली हो गया। वे गणेश जी के पैरों पर गिर पड़े और क्षमा मांगी। कुबेर का अभिमान टूट चुका था।

इस कथा से स्पष्ट होता है कि कुबेर और गणेश की पूजा में प्रतिद्वंद्विता होने पर कुबेर को हार माननी पड़ी। फिर भी धनद के रूप में उसकी ख्याति कम नहीं हुई। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि कुबेर की मूर्ति धनागार के तहखाने में स्थापित की जानी चाहिए। ऐसा आज भी किया गया है।

आज कुबेर की पूजा भारत में मूर्त रूप से दिखाई देती है परन्तु मध्य काल तक इनकी पूजा के मंत्र रचे जाते थे —

धनदाय पद्मपत्राभो वरदो नरवाहन।
चामीकराभो वरद सर्वाभरणभूषित॥
लम्बोदरश्चतुर्बाहुर्वामपिङ्गललोचन।

—हेमाद्री व्रतखण्ड

यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये धनधान्यसमृद्धिं मे देहि दापय स्वाहा।

यह पन्द्रह अक्षरों का कुबेर मंत्र है जिसके ऋषि विश्रवा हैं। छन्द बृहती है।

ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नमः।

—मंत्रमहोदधि

उत्तराधिपते देव कुबेर नरवाहन।
पद्मादिनिधीनां त्वं पति श्रीकण्ठवल्लभ॥
दानविध्यामया प्राप्तं त्वत्प्रिये ममदुर्लभम्।
तस्मात् सर्व दानेन पापमाशु विनाशय॥

—दानचन्द्रिका

गणेश

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

शुक्ल यजुर्वेद के अश्वमेधाध्याय में भी गणपति शब्द आया है। परन्तु इन स्थानों में यह शब्द किससे सम्बद्ध है इसमें विद्वानों का मतभेद है क्योंकि गणेश आर्येतर देवता हैं। वहाँ वनचर समस्त जनसमूह के नायक भी गणपति ही हैं, यद्यपि

शिव परिवार से इनका सम्बन्ध बना हुआ है। डा० सम्पूर्णानन्द ने अपने ग्रन्थ 'गणेश' तथा हिन्दू देव परिवार का विकास में गणेश को आर्येतर देवता माना है जिनका क्रमशः प्रवेश और आदर हिन्दू देवमण्डल में हो गया।

देवों (आर्यों) की इनके सामने कुछ नहीं चली इसलिए इन्हें विघ्नकारी माना परन्तु अन्त में उन्हें गणेश का किरात गणों के दिए मंगलकारी रूप को मानना पड़ा। आज यही मान्यता जगप्रचलित है।

इनका रक्त रंग मोटा शरीर और लम्बा उदर यक्ष मूल दिखाता है। इनके चार हाथ और हाथी का सिर है जिसमें एक ही दांत है। इनके कुबेर और विष्णु के समान एक हाथ में शंख दूसरे में चक्र तीसरे में गदा अथवा अंकुश तथा चौथे में पद्म है। इनकी सवारी मूषक है।

गणपति का सिर हाथी के समान बड़ा होना चाहिए जो बुद्धिमानी और गम्भीरता का द्योतक है। इनके आयुध भी दण्डनायक के प्रतीक हैं। गणपति विघ्ननाशक मंगल और ऋद्धि सिद्धि के देने वाले, विद्या और बुद्धि के आगार हैं। प्रत्येक मंगल कार्य के प्रारम्भ में इनका आह्वान किया जाता है। प्रायः शिव मन्दिर में गणेश की मूर्ति पाई जाती है। गणेश के स्वतन्त्र मन्दिर दक्षिण में अधिक पाए जाते हैं। गणपति की पूजा का विस्तृत विधान है। इनको मोदक (लड्डू) विशेष प्रिय है।

यात्रा के आरम्भ में सारी गणेश का स्मरण किया जाता है। पुस्तक पत्र बही आदि किसी भी लेख के आरम्भ में पहले 'श्री गणेशाय नमः' लिखने की पुरानी प्रथा चली आती है। महाराष्ट्र में गणपति पूजा भाद्र शुक्ल चतुर्थी को बड़े समारोह से हुआ करती है और गणेश चतुर्थी का व्रत तो सारे भारत में मान्य है। गणपति विनायक के मन्दिर भी भारतव्यापी हैं और गणेश जी आदि और अनादि देव माने जाते हैं।

गणेश का स्वरूप अद्भुत है। हाथी का मुख, छोटी छोटी आंखें, सूंड और बड़े बड़े कानों से युक्त होने के कारण ही वे गजानन कहलाते हैं। हाथी शाकाहारी होता है गणेश भी शाकाहारी हैं। वह बुद्धिमान जानवर माना जाता है, चौड़ा मस्तक गणेश की बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। हाथी के समान बड़े बड़े कान इस बात की ओर संकेत करते हैं कि गणेश छोटी से छोटी पुकार को जरा सी आहट को सुनने में सक्षम हैं। हाथी की आंखें बहुत दूर तक देख सकती हैं सो गणेश भी दूरदर्शी हैं। हाथी की सूंड की यह विशेषता प्रसिद्ध है कि जिस सहजता से वह बड़ी-बड़ी चीजें उखाड़ता है उतनी ही सरलता से वह सुई उठाने में समर्थ होती है। साधारणतः एक सशक्त पहलवान छोटी वस्तु को उठाने की सूक्ष्मकर्मी वृत्ति से वंचित हो जाता है किन्तु गणेश जिस दक्षता से सूक्ष्म काम

करते हैं उसी निपुणता से स्थूल कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। सूंड— लम्बी नाक— बुद्धि का प्रतीक है। साथ ही वह 'नाद ब्रह्म' का प्रतीक भी है। गणेश की चार बाहें उनकी चारों दिशाओं की पहुँच की ओर संकेत करती है। देह का दाहिना भाग बुद्धि तथा अहम् से युक्त रहता है जबकि बाईं ओर हृदयपक्ष की स्थिति मानी गई है।

गणेश या गणपति में यक्षों और नागों दोनों के चिह्न विद्यमान हैं।[1]

उन्हें विघ्नराज विघ्न विनाशक और सिद्धिदाता माना गया है।[2]

उन्हें सबसे पहले अम्बिका का पुत्र याज्ञवल्क्य स्मृति में बताया गया है[3] जो गुप्त काल की कृति है।

शिव के गण कहलाते हैं जिनके प्रमुख गणपति या गणेश हैं। इसी प्रकार जैनियों में भी गण कहलाते हैं। क्या यह उनके महावीर स्वामी की पहाड़ी मूल की जाति दर्शाता है।

गणेश को विनायक भी कहते हैं। मानव गृह्यसूत्र में चार विनायकों के नाम दिए हैं — सालकटंकट कुसुमदराजपुत्र उस्मित और देवयजन।

कहीं कहीं इन्हें भूत प्रेतों के सरदार और विघ्नेश्वर भी बताया गया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में गणेश को कृष्ण का प्रतिरूप बताया गया है। एक पुराण में उन्हें परब्रह्म भी कहा गया है। उनके साधारणतः दो नेत्र हैं परन्तु कहीं-कहीं तीसरा नेत्र भी है। यज्ञोपवीत के रूप में कन्धे पर और पेटी के रूप में कमर से लिपटे सांप हैं।

गणपति की कुछ प्रमुख मुद्राएं हैं जिनमें से दो लक्ष्मी के साथ हैं —

(१) शक्ति गणेश— इन्हें उच्छिष्ट गणपति महागणपति, उद्धव गणपति तथा पिंगला गणपति भी कहते हैं। इसमें लक्ष्मी की प्रतिमा साथ होती है। लक्ष्मी गणेश के आठ हाथ बने होते हैं जिनमें तोता, अनार कमल रत्नजटित कलश अंकुश पाश कल्पलता और सूंड में निकलता पानी होता है। इस मूर्ति का रंग श्वेत है।

(२) पिंगला गणपति— यह छः हाथ वाले गणेश हैं जिनके पांच हाथों में क्रम से कल्पवृक्ष के फूलों का गुच्छा गन्ना तिल के लड्डू परशु और आम है, और छठा हाथ बगल में बैठी लक्ष्मी को पीछे से समेटे है।

गणेश और लक्ष्मी का यह सम्बन्ध केवल साहित्य में ही नहीं पाया जाता

1 याज्ञवल्क्य स्मृति I 271

2 कुमारस्वामी यक्ष खण्ड 1 पृष्ठ 7

3 जे एन बनर्जी Development of Hindu Iconography पृष्ठ 355

शिल्प में भी ऐसी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। नवीं दसवीं शताब्दी के खजुराहो के मन्दिरों में जहां लक्ष्मी और गणेश की आलिंगित मूर्ति दिखाई गई है, वहां लक्ष्मी और विष्णु की भी। भागवत धर्म के अन्दर जब अनेक धर्मों का सम्मिश्रण होकर विष्णु की सकल्पना बनी तो उस पर सबसे अधिक प्रभाव गणेश-अनुयायियों का पड़ा। गणेश को सुन्दर मनोहारी विष्णु का रूप दे दिया गया। किन्तु गणेश का जन पर इतना शक्तिशाली राज्य था कि वह कुबेर के समान अर्ध विस्मृत नहीं हुआ। उसका विघ्नहर्ता लोककल्याणकारी स्वरूप जगमगाता रहा और वह विष्णु से अलग पुजता रहा।

लक्ष्मी

भारतीय उपासना में परमात्मा की गणना ब्रह्म निर्धारित हुई है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'बृह' धातु से बताई गई है परन्तु भारत की आर्यभाषाओं और विश्व की अन्य आर्यभाषाओं में परमात्मा के लिए इस शब्द के समानान्तर ध्वनि वाली कोई सज्ञा नहीं मिलती है। वास्तव में इस सज्ञा के मूल में है आदिम यक्षोपासना का बरहम शब्द जो आज भी भारत के चप्पे चप्पे के गांवों में पूजा का पात्र है। उत्तर वैदिक काल में यक्षों का देवों पर प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया था। कुछ विद्वानों के अनुसार वेद की सरल उपासना के स्थान पर ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्मकाण्ड और बलि-यज्ञ पर यक्ष को मिलाकर अन्य जनजातियों का बहुत प्रभाव था। उसको परिष्कृत करने के लिए उपनिषद ज्ञान अधिकतर पूर्व और मध्य भारत के मनीषियों ने दिया जो भूमि यक्षोपासना से बहुत प्रभावित थी। उपनिषदों में ही ब्रह्म को सारे जगत का स्रोत माना गया। प्रमाण के लिए केन उपनिषद् का यक्ष और हैमवती उमा (वह भी पर्वतीय गण दे है) का प्रकरण है जो इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। इसमें यक्ष के साथ उमा को ब्रह्मस्वरूपिणी बताया गया है।

इसी प्रकार लक्ष्मी की सकल्पना है। अथर्ववेद को छोड़कर अन्य किसी वेद में लक्ष्मी का वर्णन नहीं है। अथर्ववेद देवों के साहित्य का हो नहीं उस समय की समस्त जनजातियों के साहित्य का सग्रह है। उसमें लक्ष्मी एक नहीं अनेक हैं। कुछ रोग, शोक और अमगल की कारक हैं कुछ शुभ और मगलमयी। 'हे जातवेदा अग्नि उनमें जो पापिष्ठा लक्ष्मी हों उन्हें तुम हमसे दूर अपसरित करो और जो मगलमयी हों वे ही हमारी बनी रहें।'[1] इसी सूक्त के अन्य मन्त्र में ऋषि व्याकुल मन से प्रार्थना करता है जैसे वन्दना लता वृक्ष-स्कन्ध को वेष्टित किये रहती है बस ही यह अशुभ पाप लक्ष्मी मेरे जीवन को जकड़कर बांधे हुए है। हे सविता देव, तुम मुझे पाश मुक्त करके उसे भगाकर अपने हिरण्यमय

1 अथर्ववेद 7 15 3

हस्ता म मुझे वस्तु (ऋद्धि) प्रदान करो।[1] इसी को आगे चलकर 'ज्येष्ठा' या 'अलक्ष्मी' कहा गया। इससे पता चलता है कि लक्ष्मी किसी अन्य जनजाति की देन है जिसकी लालसा से ऋषि अपने को जकड़ा पाता है।

शतपथ ब्राह्मण म एक कहानी है। इसके अनुसार लक्ष्मी की सुन्दरता और दीप्ति से देवों म जलन उत्पन्न हो गई और उन्होंने उसे मारना चाहा। परन्तु प्रजापति ने उन्हें ऐसा करने से रोका क्योंकि वह एक स्त्री थी और देवों से कहा कि व उसके सारे गुण छीन लें। तब अग्नि सोम इन्द्र बृहस्पति आदि देवों ने लक्ष्मी के सारे गुण छीन लिए। प्रजापति की सलाह से लक्ष्मी ने दस देवों को दस प्रसाद की थालियाँ भेंट की। इस पर उनके सारे गुण उसे वापस मिल गए।

इस कहानी से साफ पता चलता है कि लक्ष्मी का देव जाति से कोई सम्बन्ध नहीं था बल्कि उन्होंने उसे अप्रतिष्ठित करना चाहा परन्तु असफल रहे। जो भी मानव के गुण हैं वे सब लक्ष्मी द्वारा देय हैं। वे सब उसकी धरोहर हैं।

यजुर्वेद म श्री और लक्ष्मी का अलग-अलग नाम आया है। श्री शब्द पवित्रता सौभाग्य सुख और शुभ को व्यक्त करता है। यह भी यक्षोपासना से जुड़ी एक यक्षिणी है जिसे लोग सिरी देवता कहकर पूजते थे। लक्ष्मी और श्री प्रारम्भ म दो शब्द भिन्न रहे हैं। लक्ष्मी को एक स्थल पर वरुणानी भी कहा गया है। सागर से उत्पन्न लक्ष्मी यदि समुद्र के अधिदेवता वरुण की पत्नी मानी जाय तो क्या आश्चर्य है। दूसरी ओर कला की खान हिमालय है जहाँ पर महायक्षिणी के रूप म सिरी देवता की लोकपूजा चलती थी। यह देवता उस आदिम युग म परिश्रम अध्यवसाय और श्रम से जुड़ी थी और इन ऋद्धियों की दाता थी जिन्हें मानव पसीना बहाकर कमाता है। इसी आदिम रूप का संकेत कालकर्णी जातक म मिलता है।[2] यही आगे चलकर पुराणों की श्री बन गई और लोक म पूजित अनेक देवियों को अपने म मिश्रण कर लक्ष्मी की संरचना।

लक्ष्मी या लखमी शब्द यक्ष भाषा का लगता है। जैसे यक्ष रक्ष ऋक्ष वृक्ष दक्ष तक्ष ला। लक्ष्मी यक्ष्मा आदि। लक्ष्मी का आरम्भ से कुबेर से सम्बन्ध है फिर वह नारायण की पत्नी है और पौराणिक धर्म म आकर वह विष्णुप्रिया बन गई है। शायद इसीलिए उसे चंचला कहा गया है।

वह उर्वरता की देवी है। कमल के सम्बन्ध से वह जल से सम्बन्धित है। उसके दो पुत्र कर्दम और चिक्लीत (कीच और नमी) उर्वर भूमि के चिह्न हैं।

एक स्थल पर उसे काम की माता कहा गया है। काम यक्षों और गन्धर्वों का देवता है।

लक्ष्मी को स्वर्ग म विष्णुप्रिया, धरती पर राजलक्ष्मी और हमारे घरों

1 वही
2 देखिए वासुदेवशरण अग्रवाल प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृष्ठ 111 112

म 'गृहलक्ष्मी' की सज्ञाओं से विभूषित किया गया है। हम जानते हैं कि राज शब्द यक्ष के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

दीपावली मनाने का एक प्रकरण है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन देवों की अहम् भावना एवं भोग विलास में डूबे रहने के कारण श्री समृद्धि लक्ष्मी सागर में अपने पिता के घर चली गई और सब देव दरिद्र बन गए। श्री लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए देवों और असुरों ने मिलकर सागर मथन किया। देवों की अगवानी गणनायक विघ्नहरणकर्ता गणेश जी ने की। समुद्र से चौदह रत्न प्राप्त हुए जिनमें एक लक्ष्मी थी। देवों की समृद्धि लौट आने की प्रसन्नता में उन्होंने दीप जलाए।

प्राचीन भारतीय शिल्प में लक्ष्मी की विभिन्न मनोहारी प्रतिमाओं का सृजन किया गया था जो आज भी मंदिरों और संग्रहालयों की शोभा बनी रही है। कहीं अमृत कलश के साथ तो कहीं हाथों में प्रकाश दीप धारण किए गजारूढ़ व दिखाई गई है।

"चन्देल रमणियों की सुन्दरतम भगिमाओं से आच्छादित खजुराहो की शिल्पाकृतियों में लक्ष्मी को गणेशप्रिया के रूप में दर्शाया गया है। यह कृति अत्यन्त सौन्दर्ययुक्त है। निश्चय ही यह आलिंगित प्रतिमा अपने ढंग की अद्वितीय कृति है।[1]

स्कन्द

स्कन्द के जन्म के विषय में तीन पाठ हैं जिनमें से दो सम्भवत ज्योतिष से सम्बन्ध रखते हैं और तीसरा है जिसमें उसे शिव और पार्वती का पुत्र बताया गया है। मैंने ऊपर (पृष्ठ ४७) वर्णन किया है स्कन्द यक्षों की एक शाखा का नवयुवक नेता था जिसने इन्द्र और देवों की मुसीबत पड़ने पर सहायता की थी। कुबेर को मानने वाले प्रमुख यक्ष देवासुर संग्राम में तटस्थ रहे किन्तु स्कन्द ने अपने अनुयायियों को नारा दिया— वय रक्षाम। (हम रक्षा करेंगे।) इन्द्र ने उसे बुलाकर पूरी देवसेना का सेनाध्यक्ष बना दिया (शायद इसी को कवि भाषा में लिखा गया कि इन्द्र की पुत्री देवसेना ने उसका वरण किया) और उसने प्रसिद्ध तारकासुर को मारकर असुरों की भारत में शक्ति तोड़ दी।

स्कन्द और उसके अनुयायी रक्ष कहलाए जो बाद में राक्षस कहे गए। यक्ष सबसे सभ्य व्यापार में अग्रणी धनाढ्य, अभियान्त्रिकी विशेषज्ञ थे। लेकिन वे कुछ आरामपसन्द हो गए थे। उनके भाग रक्ष ने देवासुर संग्राम में देवों को नेतृत्व कर विजय दिलाकर निद्रा त्याग दी और वे भारत का सबसे शक्तिशाली कुल बन गए। देव और असुर दोनों की आपस में लड़ भिड़कर शक्ति नष्ट हो गई थी, राक्षस संस्कृति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं था। इन्होंने यक्षों

1 डॉ० दिनेशचन्द्र गुप्त जागरण 29 अक्टूबर 1989 पृष्ठ 5

पर भी दबाव डाला और अनेक स्थानों पर उनके हाथ से शक्ति और व्यापार छीन लिया।

लगभग एक हजार वर्ष तक स्कन्द क्या देव और क्या रक्ष— सब का पूज्य बना रहा। किन्तु प्रलय के बाद मनु ने एक नई संस्कृति सब कुलों को मिलाकर बनाई— मानव संस्कृति। धीरे धीरे मानवों ने शक्ति ग्रहण की। पांच सौ वर्ष के बाद वे इतने शक्तिशाली हो उठे कि राक्षसों से टक्कर ले सकें। सब कुलों की सम्मिलित मानव शक्ति के सामने राक्षस न ठहर सके। वे दक्षिण की ओर गए और वहां उन्होंने अपने से पहले गए यक्षों (यक्ष किन्नर आदि) और प्राचीन नागों और दानवों पर विजय प्राप्त की। सहस्रार्जुन के समय में वे नर्मदा के दक्षिणी तट पर थे जहां से हैहयों ने उन्हें और दक्षिण में खदेड़ दिया।

अगस्त्य और राक्षसों में कोई झगड़ा नहीं था। दोनों शिव को मानने वाले थे। उसी समय समस्त विश्व को आर्य करो। के नारे पर चलते हुए महर्षि पुलस्त्य राक्षसों में जा बसे थे। दक्षिण की धरती उस समय अछूती थी। केवल पहाड़ों पर गोंडवानालैंड के आदिवासी (जो दक्षिण अमरीका अण्डमान पूर्वी द्वीप समूह आस्ट्रेलिया तथा भारत में कहीं कहीं आज तक पाए जाते हैं) असभ्यावस्था में रहते थे। वहां रावण की अधीनता में राक्षसों ने अपनी शक्ति और व्यापार खूब बढ़ाया और वे अति प्रबल हो उठे। गर्वीले राक्षसों ने धीरे धीरे अगस्त्य कुल की भी अवमानना आरम्भ कर दी और ऋषियों को राक्षसों की शक्ति भंग करने के लिए राम को दक्षिण बुलाना पड़ा। राक्षस सभ्यता भंग हुई उस पर मानव संस्कृति ने विजय प्राप्त की। फिर भी राक्षस शक्ति कायम रही विभीषण ने राम की बताई मानव संस्कृति को अपना लिया।

आज भी दक्षिण में जनसंख्या में तीन स्पष्ट धाराएं दिखाई पड़ती हैं— एक घुंघराले बालों वाले आदिवासी दूसरे यक्ष रक्ष कुल के गोल सुन्दर मुख घटी-बढ़ी आंखों सुंदर नासिका और गोल चन्द्र के समान स्तन वाले मानव जिनका शिल्प में चित्रांकन मथुरा से लेकर सुदूर कन्याकुमारी तक है और तीसरे लम्बे मुख वाले आर्य देवकुल के प्रतिनिधि।

स्कन्द की अगस्त्य के सामने तक मानव कुल में पूजा थी। अगस्त्य शिव के साथ उनके पुत्र स्कन्द को भी दक्षिण ले गए थे। रक्षों के वे आदि पूज्य थे जैसे देवों के इन्द्र थे। ज्योतिषी विश्वामित्र ने आकाश में छह कृत्तिकाओं से सम्बन्धित एक तारे को उनका नाम दिया। लेकिन जैसे वृत्र जो एक समय देवों में भी पूज्य था देवासुर संग्राम के कारण अपने पद से गिर गया उसी प्रकार मानव राक्षस संग्राम के कारण मानवों ने स्कन्द की पूजा छोड़ दी बल्कि उसका बदनाम किया। (पुराणों में उत्तर पश्चिम भारत में सिकन्दर को स्कन्द कहकर बुरा भला वर्णन किया गया ?) केवल महाराष्ट्र बंगाल और पूरे दक्षिण में स्कन्द की पूजा

मेरी इस मान्यता को बल देती है।

(१) स्कन्द को वैदिक साहित्य में महासेन और उग्रसेन कहा गया है। यह उसकी शक्ति और उसके अनुयायियों की संख्या दिखाता है। (२) भरतनाट्य शास्त्र में स्कन्द को रंग देवताओं (स्टेज के देवताओं) में से एक बताया गया है।[1] स्कन्द को देवों के सेनापति भगवान् शंकर के प्रिय और षण्मुख कहकर वर्णन है। (३) अग्निपुराण में[2] स्कन्द को संस्कृत व्याकरण का आचार्य बताया है जिसका शिष्य कात्यायन है। (४) सुश्रुत संहिता में[3] शिशुओं और बालकों की अनेक बीमारियों की अध्यक्षता स्कन्द को करते बताया गया है। चिकित्सा के साथ स्कन्द की लगातार प्रार्थना करना भी सफलता के लिए आवश्यक कहा है। (५) मृच्छकटिक में[4] डाकुओं की चोरी की कला और विज्ञान के आचार्य के रूप में स्कन्द की पूजा करते दिखाया है। बौधायन गृह्यशेषसूत्र में स्कन्द को धूर्त, उग्रसेन, अपर्णा-पुत्र कहा गया है। अथर्ववेद के खिल भाग का नाम धूर्तकल्प या स्कन्दयाग है। इसमें स्कन्द धूर्त को जो प्रसाद चढ़ाया जाता है वह स्पष्टतः तमिळ भोजन है।

विभिन्न समय का भिन्न भिन्न वर्णन स्कन्द को अपने उच्च स्थान से नीचे गिरा स्पष्ट दिखाता है।

बंगाल और उड़ीसा में आज भी स्कन्द की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजी और विसर्जित की जाती है। इधर महाराष्ट्र में ऐतिहासिक काल से आन्ध्र वंश के अनेक शिलालेखों में स्कन्द का देवता के रूप में उल्लेख है। आन्ध्र वंश के महाराजाओं के नाम भी स्कन्द के ऊपर रखे गए हैं। उसके बाद गुप्त वंश के प्रसिद्ध कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त भी तथा कालिदास का कुमारसम्भव भी स्कन्द की प्रमुखता दिखाता है। उनसे पहले कुषाणों ने सर्वप्रथम स्कन्द महासेन को अपना देवता माना। सातवाहन वंश के उपरान्त दक्षिण और सुदूर दक्षिण के सब वंशों ने स्कन्द को अपना पूज्य देवता माना।

उत्तर में स्कन्द का कोई मन्दिर नहीं है किन्तु दक्षिण में स्कन्द के अनेक मन्दिर स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं।

तमिळ के सबसे पुराने संगम के समय का (ईसा की प्रथम शताब्दी) दक्षिण वासियों का देवता मुरुगन बताया गया है। यह प्राचीन पर्वतवासियों का देवता है। इसकी पत्नी का नाम वल्ली है जो कौरव कुल की है। यह अपने हाथी पिनिमुकम् पर सवार होकर युद्ध करता है। इसी ने इसको अपने देवता स्कन्द से

1 भरत नाट्यशास्त्र 3 21-60

2 349-356

3 परिच्छेद 17-32

4 अंक 3 श्लोक 14 से बाद

मिला दिया जिससे आदिवासी बिना लड़े ही राक्षस सभ्यता को मानने लगे। वल्ली को स्कन्द की दूसरी पत्नी बना दिया गया। स्कन्द के जीवन की सब घटनाएँ मुरुगन के जीवन पर लगा दी गईं। केवल माता पिता के नाम वही रहे— मुरुगन की माँ तारावाई और पिता धनपाल थे।

मुरुगन ने तारक को नहीं मारा। उसने असुरों को नष्ट किया। असुरराज का नाम सुर या सुरपद्म है। यहाँ तमिळ दन्तकथा बिल्कुल अलग है। जब स्कन्द मुरुगन ने सुर के शक्ति मारी तब उसकी देह के दो टुकड़े हो गए— एक से मुर्गा निकला दूसरे से मोर। पहले ये दोनों लड़ने को आए पर फिर इन्हें अक्ल आ गई। मुरुगन ने एक को अपने झंडे का स्थान दिया और दूसरे को वाहन का।

कौरव कन्या वल्लि को स्कन्द की दूसरी पत्नी बनाने के बाद दक्षिणी परम्परा ने एक अनुचर इडुम्बन भी लिया। जैसे राम के हनुमान वैसे स्कन्द के इडुम्बन। स्थानीय परम्परा के अनुसार इडुम्बन प्रदेश के वनवासी घुमक्कड़ कुल का था और अगस्त्य का शिष्य हो गया था। यह असुर या राक्षस भी बताया गया है। बाद में यह स्कन्द से जुड़ गया। स्कन्द के अनेक मन्दिरों में इसकी मूर्ति पाई जाती है तथा कुछ मंदिर स्वतन्त्र रूप से भी इसके हैं।

दक्षिण में आजकल शिव के बाद स्कन्द मुरुगन सबसे प्रमुख देवता है विष्णु से भी अधिक पूज्य। यह स्पष्ट मेरी भावना को बल देता है कि दक्षिण की जनसंख्या में प्रमुखता प्राचीन भारत की सर्वश्रेष्ठ जनजाति यक्ष/राक्षस की है।

यक्षपूजा

ऊपर मैंने यक्षों द्वारा पूजित देवताओं और उनके हमारे धर्म में स्थान का वर्णन किया है। ये तो हमारे पूज्य देवता हैं ही समय बीत जाने पर यक्षों की पूजा भी गाँव में फैल गई जैसे इन्द्र अग्नि सोम आदि देवों की फैली थी। इन देवों की पूजा तो समाप्तप्राय है जबकि यक्षपूजा इस विशाल देश के गाँव गाँव में फैली हुई है। शिवलिंग दस पाँच गाँवों में एक होता है पर गाँव का मुखिया और पूजनीय यक्ष हर गाँव में होता है—

'गाँव गाँव को ठाकुर
गाँव गाँव को बीर।

भारतीय संस्कृति बड़ी अद्भुत और रहस्यमयी है। इसकी परतें खोलने पर उनका अर्थ समझना बड़ा दुष्कर कार्य है। किसने किसे कितना दिया और किसने किससे कितना लिया?

फिर भी यह स्पष्ट है कि एक समय यहाँ यक्ष प्रमुख देवता माने जाते थे। देवों (आर्यों) के आगमन पर उनके देवताओं ने इन्हें कुछ दबा लिया किन्तु उनके

हर देवता को वेद में या वैदिक साहित्य में जहाँ तहाँ यक्ष शब्द से सम्बोधित किया गया।

महाकाव्य काल में यक्ष फिर प्रमुख हो उठे थे। महाभारत में राजगृह के लोगों का वाणासर (वर्णावत) नगर मणिमान का स्थान यक्ष प्रतिदिन भेंट पाता था। भीम द्वारा बकासुर के मारे जाने पर एकचक्रा नगरी के यक्ष ने उत्सव मनाया था। महाभारत में ऐसे अनेक उल्लेख आते हैं जिनमें सन्तानार्थिनी नारियाँ सन्तान की इच्छा से वृक्षों के अधिष्ठाता यक्षों के पास जाती थीं। यक्ष और यक्षिणियों को उर्वरता का देवता समझा जाता था। रामायण में भी यह वर्णित है। बाद में बौद्ध और जैन साहित्य में भी इसका विपुल वर्णन है। भरहुत, बोधगया, साँची आदि के शिल्पों में भी नारियों का सन्तान की कामना से यक्षों के सान्निध्य के लिए वृक्षों के पास जाना अंकित है। इन वृक्षों के नीचे अंकित मूर्तियों की स्त्रियाँ प्रायः नग्न हैं और सन्तान प्राप्ति प्रश्न में एक जोड़ी मिलता पाया है। आज भी गाँव गाँव में वीर बरम की पूजा में एक कामना यह भी होती है।

बौद्ध यक्षपूजा

महात्मा बुद्ध ने जिस समय अपने धर्म का प्रचार किया उस समय साधारण जनता में यक्षपूजा बहुत फैली हुई थी। ऊपर लिखा जा चुका है कि सुजाता की उसकी दासी ने गौतम को वृक्ष का यक्ष देवता समझा था। बौद्ध साहित्य में विशेषकर जातक कथाओं में यक्षपूजा की अनेक कथाएँ पाई जाती हैं। यक्षों को महर्द्धिक अर्थात् बहुत ऋद्धि और प्रभाव वाला देवता बताया गया है। बुद्ध ने यक्षों को गगन निवास वाला बताया है। कुछ यक्ष बुद्ध के शिष्यों और भिक्षुओं को तंग करते हैं परन्तु जो महायक्ष हैं वे धर्म के सहायक हैं और बुद्ध यक्षों पर प्यार रखते थे।[1] इससे प्रकट है कि जनता पर यक्षों का इतना प्रभाव था कि बौद्धों को सब यक्षों का विरोध करने का साहस न हुआ।

तीसरी सदी ईसवी का एक बौद्धग्रन्थ महामायूरी है। इसमें प्रत्येक स्थान में जिन यक्षों की पूजा होती है उनकी लम्बी सूची दी गई है। इसके अनुसार कुछ यक्षों के नाम ये थे— राजगृह में वज्रपाणि और बकुल, कपिलवस्तु में [illegible] और उपधानव, विराट में मन्यवर, श्रावस्ती में बृहस्पति, साकेत में सागर, वैशाली में वज्रायुध, चम्पा में सुदर्शन, वाराणसी में महाकाल, द्वारका में विष्णु, ताम्रपर्णी में विभीषण, उरगा (पाण्ड्य देश की राजधानी उरगपुर) में मन्न, बन्धायक (गहितव की राजधानी) में कपिल, उज्जयिनी में वसुत्रात, अवन्ति में प्रभूति, भरुकच्छ में भरुक, अग्रोदक (अग्रोहा पूर्वी पंजाब) में माल्यधर, सुवास्तु (स्वात) में शूरद्रष्ट, गिरिनगर में महागिरि, विदिशा में वासव, रोहितक में कुमार कार्त्तिकेय, कलिंग में

---

1 दीघनिकाय के इस अन्तर का आनका के मन्तव्य और ललितविस्तर में भी दिखाया गया है।

वृद्द्रय सुघन म दुर्याग्रा अजुनावन (अर्जुनायन) म अजुन, मालवा म गिरिकूट, शाग्ल वे सवभद्र वणु (वन्नू) म कपिल, गधार म प्रमन्न तक्षशिला म प्रभजन, भद्रशल म खरपास्ता गैरव (गौवीर का राजधानी) म प्रभकर, लम्पार म वलह प्रिय मथुरा म गदभर पाण्ड्यमथुरा (दक्षिण भारत मदुरा) म विजय वजयत, मनय म पूणक करल म स्थिर नासिक म सुदर वनवासी (दक्षिण कनाडा) म पालक अहिच्छत्रा म रविज काम्पिल्य म कपिल, पाचाल म नगमेश हस्तिनापुर म प्रसव जौधेयो म पुरजय कुरुक्षेत्र म तराक और कुनराक (महाभारत के तरतुन अरतुर) एव उलूखलमखला नाम की यक्षी कोटिवष (बगाल) म महासेन, कौशाम्बी म अनायास चम्पा म पुण्पन्त पाटलिपुत्र म भूतमुख काशी म अशोक मरभूमि म जम्भक दरद्देश म देवशर्मा काश्मीर म प्रभवर काश्मीर व सीमा प्रदेश म पाचिक और उनक ५०० पुत्र चीनभूमि म पाचिक का ज्यष्ठ पुत्र कापिथी (अफगानिस्तान म वेग्राम) म लवेश्वर रस देश म धमपाल वाल्हीक (वल्ख) म महाभुज तुखार देश म वरुणव का पुत्र युवराज जितभ सिन्धुसागर म सातगिरि और हैमवत द्रविडदेश म पचालगड सिहल म धनश्वर पारस देश म पाराशर शकस्थान म शकर पह्लव दश म वेमचित्र उड्डियान दश म कराल गापकान (बधान) म चित्रसेन रमठ (हींग का प्रदेश जागुण या गजनी) म रावण ।[1]

इसम मगध के नन्दीवधन नगर के नन्दी और वधन युगल यक्षा का वणन है जो इस नगर क पूज्य दवता थ ।[2] इसी सूची म मणिभद्र और पूणभद्र ह जो भाई बताए गए है । इसम अय यक्ष विष्णु कार्तिकय शकर क्रकुच्छन्द सुप्रबुद्ध दुर्योधन अजुन नगमश (पाचाल का सरक्षक यक्ष) मकरध्वज (कामदेव या बौद्ध मार का दूसरा नाम) और वज्रपाणि (राजगृह की गृद्ध चोटी का यक्ष) है । एक अय स्थल पर सवक का मार्ग के दन का यक्ष कहा गया है ।

इसम शकर जो शिव का दूसरा प्रसिद्ध नाम है को भी लिया जाना आश्चय जनक नही है । शकर का यक्षा स निकट का सम्बध उसक यक्ष नामो पर बनाए अनक मदिरो के पाए जान स सिद्ध होता है जस विरुपाक्ष का प्रसिद्ध मदिर । साथ ही सुदियल यक्ष उसके पापद दिखाए गए है ।[3]

यक्षा का व्यवहार जनता के प्रति दयालु दिखाया गया है । साथ ही यह भी बताया गया है कि व बुद्ध की शिक्षाओ को नही मानत थे । उनम भल और बुर दोना प्रकार के यक्ष थे । यह अवश्य ह कि यक्षा यक्षा स अधिक भयावना और दुष्ट प्रकृति की था । कहा जाता था कि व मास खाती ह रक्त पाती ह और

---

1 वासुदेवशरण अग्रवाल प्राचीन भारतीय लोकधम पृष्ठ 127 128

2 कुमारस्वामी यक्ष पृ० 11 12

3 कुमारस्वामी वही फुटनोट 2 हापकिन्स एपिक माइथोलाजी 1951 पृष्ठ 221 22

पुण्या का निगम जाना है।[1]

बौद्ध पालि ग्रंथो के अनुसार अनेक प्रकार के यक्ष होते हैं। कुछ वृक्षो मे वसने वाले देवता हैं। कुछ सागर के व्यापारियो के अपने यक्ष विमान (स्वय बनाए प्रासादो) मे सागर पर या भील के निकट मिलते हैं।

जैन यक्षपूजा

जिनो के सरक्षको का जिक्र हेमचन्द्र ने शासन-देवता कहा है जैन ग्रंथो मे क्षाम वर्णन है। कभी व श्रुत देवता कह जाते हैं कभी केवल देवता या देव। हेमचन्द्र मे चौबीस तीर्थकरो मे से प्रत्येक का एक युगल पुरुष-स्त्री देवताओ का जोडा है जो उनके सरक्षक हैं। व यक्ष और यक्षिणी कहे गए हैं। अपनी रचना त्रिशष्टि मे हेमचन्द्र ने उनमे से हरएक का नाम वाहन रंग, भुजाओ की सख्या और हर हाथ मे लिए चिह्न का सावधानी से वर्णन किया है। उनके नाम निम्न हैं —

जिनो के शासन देवता

	जिन	देव	देवी
1	वृषभ	गोमुख 4 हाथ वाले	अप्रतिचक्रा 8 हाथ वाली
2	अजित	महायक्ष 8	अजितबला 4
2	सम्भव	त्रिमुख 6 ,,	दुरितारी 4 ,,
4	अभिनन्दन	यक्षेश्वर 4	कालिका 4
5	सुमति	तुम्बरु 4	महाकाली 4 ,,
6	पद्मप्रभ	कुसुम 4	अच्युता 4
7	सुपार्श्व	मातंग 4	शान्ता 4
8	चन्द्रप्रभ	विजय 2	भृकुटि 4
9	सुविधि	अजित 4 ,,	सुतारा 4
10	शीतल	ब्रह्मा 8 ,,	अशोका 4 ,, ,,
11	श्रेयास	ईश्वर 4	मानवी 4 ,,
12	वासुपूज्य	कुमार 4 ,,	चण्डा 4 ,,
13	विमल	षण्मुख 12 ,,	विदिता 4
14	अनन्त	पाताल 6 ,, ,,	अकुशा 4 ,, ,,
15	धर्म	किन्नर 6 ,,	कदर्पा 4 ,, ,,
16	शान्ति	गरुड 4 ,,	निर्वाणी 4 ,,
17	कुन्थु	गन्धर्व 4 ,,	बला 4 ,, ,,
18	अर	यक्षेन्द्र 12	धारिणी 4 ,, ,,

1 राइस डेविडस और स्टीड द्वारा सम्पादित पालि इगलिश डिक्शनरी मे यक्ख

	जिन	दव		देवी	
19	मल्ली	कुबेर	8 हाथ वाल	वराटी	4 हाथ वाली
20	सुव्रत	वम्ण	8 , ,	नरदत्ता	4 , ,
21	नमि	भृकुटि	8 ,,	गान्धारा	4 ,
22	नमि	गोमध	6 ,	अम्बिका	4 ,
23	पाश्व	पाश्व	4	पद्मावती	4 ,
24	महावीर	मातग	[redacted] ,	सिद्धायिका	4

शासन-दवता हा नहा, जना की यक्ष पूजा, उसके साहित्य चित्रकला और शिल्प म सकड़ा वर्षो से चित्रित है। जना न उन्ह विस्तृत पूजा भेंटी है जिसस व उन्ह वरदान आशीर्वाद और सरक्षण प्रदान कर और कहा-कहा तो उन्ह जिना स भी ऊपर उठा लिया है विशेषकर गुप्त काल क उपरान्त छठी शताब्दी म और मुख्यतया दक्षिण भारत म।[1]

प्रसिद्ध जन ग्रथ भगवतीसूत्र सबसे प्रमुख पुस्तक है जिसम वश्रवण (कुबेर) क पुत्रा के समान आज्ञापालक दवताओ क नाम दिए हुए ह। व है —

1 पुण्णभद्द 2 मणिभद्द
3 सालिभद्द 4 सुमणभद्द
5 चक्क 6 रक्ख
7 पुण्णरक्ख 8 सव्वण
9 सव्वजस 10 समिद्ध
11 अमाह 12 असग
13 सव्वकाम।

उमास्वाति के तत्त्वार्थ भाष्य[3] म तरह प्रकार क यक्षा की दूसरी सूची दी है —

1 पूणभद्रस 2 माणिभद्रस
3 श्वतभद्रस 4 हरिभद्रस
5 समाभद्रस 6 व्यापितभद्रस
7 सुभद्रस 8 सवताभद्रस
9 मनुष्ययक्षस 10 वनाहारस
11 वनाधिपतिस 12 रूपयक्षस
13 यक्षात्तमस।

1 पी बी देसाई जनिज्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपीग्राफस 1957 पृ० 72 74
2 यू पी शाह यक्ष वर्शिप इन जैन लिटरेचर JOI Vol III 1953 पृ० 54 71
3 तत्त्वार्थ भाष्य (रतलाम सस्करण) पृष्ठ 49

न दोना सूचिया का देखने स पता चलता है कि लगभग सभी यशा का नाम 'भद्र' पर अत होता है। वे भल आदमी थे और शान्ति समृद्धि को देन वाल थ। इस दर्शन वाली जैन साहित्य म अनेक कथाएँ भी मिलती हैं। सन्तान की कामना म राजगृह के व्यापारी धन की निपूती पत्नी भद्दा नगर क बाहर जाकर नाग, भूत, यक्ष इन्द्र, स्कन्द शिव वैश्रवण का पुष्प और मुर्गा घृत सामग्री से पूजन करती थी।[1] आवश्यक चूर्णि म (II 193) सुभद्रा नामक स्त्री ने सुरम्बर जक्ख को सौ भस देन का वादा किया था यदि उसके पुत्र उत्पन्न हो। पूजा क इसी कारण से विवागसूय ग्रथ म लिखा है कि निपूती गगदत्ता न अपनी सहलिया के साथ पाटलिखण्ड नगर क बाहर जाकर अम्बरदत्त जक्ख की पूजा की थी।

जन ग्रथा म यक्षा को सरक्षक और ब्रह्मचय का पालन करन वाल बताया है। उत्तराध्ययन सूत्र (# 12) म वाराणसी के गण्डितिण्डुय जक्ख न तिण्डूय बाग म मातग ऋषि की सुरक्षा की थी। यह भी लिखा गया है कि आत्मनियत्रण स मानव जक्ख म उत्पन्न होता है (3 14)। जक्ख स्त्रियो क कुलटापन का पता लगा लत थ (दशचूर्णि 90)।

यक्षा को निमाण के महारथी कहा जाता था। लोक-कथाए प्राचीन समय स लकर आज तक यक्षा को रात रात म महल खडा कर दन वाला बताती हैं। वासुदेवहिण्डी (162 63) विनीता नगर का वणन करती है जो प्रथम जिन ऋषभ की राजधानी थी और जिस वैश्रवण न बनाया था।

जन ग्रथा म मणिभद्र और पूणभद्र का विशेष वणन है। व्यन्तर देवताओ म इन दो इन्द्र बताया गया है। पूणभद्र का यक्षा के दक्षिणी भाग का और मणिभद्र को उत्तरी भाग का देवता बताया गया है। बाशम कहत है कि 'आजीविक देवसमूह का निर्माण पूणभद्र, मणिभद्र और ब्रह्मा पर आकर समाप्त हो जाता है। उनके और देवता भी होग लकिन हम उनक नामो का कोइ साक्ष्य नहीं है।'[2] मणिभद्र का चत्य मिथिला के बाहर था और पूणभद्र का चम्पा क बाहर। यक्षी बहुपुत्रिका का चत्य वशाली क निकट था।[3]

भगवती सूत्र म महावीर के अठारह चत्या का गिनाया है जहा महावीर जिन होने के उपरान्त अपने प्रवचना के दौरान वर्षा बिताने के लिए रुकत थ —

1	वशाली	का	दूतिपलाश	चत्य
2	श्रावस्ती	,,	कोष्ठक	,
3	कौशाम्बी		चन्द्रावतण	,,
4	चम्पा	,,	पूणभद्र	,,

1 णायाधम्मकहाओ II पृ 47-50

2 Basham A L History and Doctrines of the Ajivikas pp 273 74

3 भगवतीसूत्र 18 2

5	उलूक-तीर-नगर रा		जम्बूक चत्य
6	वशाली		वहुपुत्रिका ,
7	राजगृ	,	गुणशील ,,
8	वशाली		बहुशालक ,
9	वशाली		कुण्डियायन ,
10	मेण्ढिक		साणकोष्ठक ,
11	गाङ्गा		नन्दन
12	तुगिका		पुष्पवती
13	राजगृह		मण्डिकुक्षी
14	उद्दण्डपुर	,	चन्द्रावतण
15	चम्पा		अगमन्दिर
16	आलभिका		प्राप्तकाल
17	आलभिका		शखवन
18	घृतपला		छत्रपलाश

ये चत्य उद्यान या वनखण्ड म स्थित होते थे। यहा पूजास्थल होना है और एक परिचर का गृह। पूजास्थल और यक्ष का नाम प्रायः एक समान होते थे।

यक्ष पूजास्थल

यक्षपूजा वृक्षो से आरम्भ स ही सम्बन्धित रही है। महाभारत म लिखा है—

एको वृक्षो हि यो ग्राम भवत् पणफलान्वित ।
चत्यो भवति निर्जातिरचनीय सुपूजित ॥[1]

किसी गाव म जब कोइ वृक्ष ऐसा दिखाई पडता है जो पत्ता स भरा हो और फला स लदा हो तब वह पूजन योग्य जाना जाता है और वह चत्य बन जाता है। प्रत्यक गाव म यक्ष का स्थान या चत्य होता है। पूजा की मान्यता बढन पर उस चत्यवृक्ष को चारा ओर किसी वदिका (छोटे कटघर) म घर दिया जाने लगा। प्राचीनकाल मे पूजास्थल की पहचान इसी वेदिका से की जाती थी। वृक्ष स्तूप या स्थण्डिल के चारा ओर खीची हुइ वदिका का चित्रण प्राचीन भारतीय कला म बहुत पाया जाता है। रामायण और महाभारत म भी इन वदिकाओ का वणन है। धीर धीरे य भव्य और विशाल स्थान घरन वाली होती चली गइ और इनम प्रवश के लिए चार द्वार बनन लग जो तोरण कहलाते थ। य उपर स बिल्कुल खुल रहत थ। य ही बौद्ध चत्या और स्तूपा क लिए उदाहरण थ।

वृक्ष पर रहन वाल देवता क लिए बलि भी दी जान लगी। वह यक्ष लोग

---

1 आदिपव 138 25

फल फूल-पत्त और खीर आदि से करते थे। कुछ यक्ष और राक्षस उसमें प्राणी बलि भी देते थे।

सैकड़ों वर्षों का व्यवधान होने पर मानव यक्षों को ही वृक्षों का देवता मानने लगे और अपनी भलाई के लिए उन पर बलि चढ़ाने लगे। सुजाता की दासी ने गौतम बुद्ध को वृक्ष का यक्ष-देवता समझा था और सुजाता ने उन पर खीर का प्रसाद चढ़ाया था।

बौद्ध, जैन और हिंदू धर्मों ने यक्षों का वृक्षपूजा की परम्परा को उन्मुक्त भाव से स्वीकार किया। प्रत्येक बुद्ध और प्रत्येक तीर्थंकर के लिए एक एक पवित्र वृक्ष की कल्पना की गई जो उनका बोधि वृक्ष था। अथर्ववेद में अश्वत्थ को देवताओं का निवास स्थान कहा गया। और यह आज तक भी माना जाता है कि पीपल के पेड़ पर देव निवास करते हैं और कोई हिंदू उसकी शाखा तक काटने को सहन नहीं कर सकता।

यही वृक्षपूजा आगे चलकर लोक में कल्पवृक्ष की कल्पना में प्रस्फुटित हुई। इसे सागर मंथन में प्राप्त किया गया और देवराज इन्द्र के नन्दन वन से इसे जोड़ दिया गया। इसके सम्बन्ध में दूसरी कथा लोक के अधिक निकट है। इसके अनुसार यह उत्तर कुरु देश (कुबेर का स्थान, गढ़वाल) का वृक्ष था। महाभारत, रामायण, जातक, दिव्यावदान, जैन साहित्य इन सबमें उत्तर कुरु देश और वहाँ होने वाले कल्पवृक्षों का वर्णन पाया जाता है। भीष्म पर्व के अनुसार उत्तर कुरु देश में सिद्ध लोग रहते हैं। वहाँ सदा पुष्प फल देने वाले वृक्ष हैं। उनमें से कुछ वृक्ष सब कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। कुछ वृक्षों में से अमृत के समान स्वादिष्ट दूध निकलता है जिसमें छहों रसों का स्वाद मिलता है। उनकी शाखाओं से वस्त्र-आभूषण उत्पन्न होते हैं और कुछ शाखाओं से अप्सराओं के समान स्त्रियाँ और स्त्री-पुरुषों के जोड़े उत्पन्न होते हैं। (भीष्म पर्व ७.२.११) इसी प्रकार रामायण में जब सुग्रीव अपने कुछ वीरों को सीता की खोज में उत्तर की ओर भेजता है तब उत्तर कुरु प्रदेश के कल्पवृक्षों का वर्णन आता है।[1] महावाणिज जातक (संख्या ४९३) की कथा में कुछ व्यापारी निधि की खोज में निकलते हैं और उन्हें एक विशाल वट वृक्ष की छाया में पहुँचते हैं जो कल्पवृक्ष है।[2]

कल्पवृक्ष का सबसे सुन्दर चित्रण जो लोक-कल्पना को चरितार्थ करता है विदिशा (आज का बेसनगर) से प्राप्त हुआ है जो लगभग ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का है। इसमें नीचे एक चौकोर कटहरा है उसके ऊपर एक गोल थामला है उस थामले के भीतर से वट वृक्ष अपनी अनेक शाखा प्रशाखाओं के वितान में

1 किष्किंधा काण्ड अध्याय 43
2 जातक 4/35_

साथ निकल रहा है। उसकी किनारी ही तटाय पृथ्वी की ओर लटक रहा है। एक ओर दो बड़े थैले जिनके मुँह बँधे हुए हैं और जिनमें सम्भवत रत्न और मणियाँ भरी हुई हैं झूल रहे हैं। इन दोनों के बीच में चाँदी की कार्षापण मुद्राओं से भरा हुआ एक घड़ा लटका रखा है। दूसरी ओर शंखनिधि है जो अपने मुख में चाँदी की मुद्रायें उगल रही है। उसके बगल में दूसरी ओर पद्मनिधि है जिसकी कणिका में उसी प्रकार की मुद्रा बाहर आ रही है। शाखा के बीच में शाखाओं से लटकते हुए कुछ आभूषण और उसी प्रकार मणियों से भरा एक थैली लटक रहा है। इस पौधे पत्ते और घन पत्तों में लहलहा रहा है। यह कल्पवृक्ष सम्भवत कुबेर के ध्वजस्तम्भ का शीर्ष भाग था। उसमें अंकित शंखनिधि और पद्मनिधि कुबेर की निधियाँ भी हैं जिनकी गणना उसकी नौ निधियों में की जाती है।

इन वृक्षों के नीचे चबूतरा बना लिया जाता है। उस चबूतरे पर एक पिण्ड स्थापित किया जाता है पर वह शिवलिंग के समान नहीं होता। शिवलिंग पत्थर का बना होता है छोटा होता है नीचे से ऊपर तक सपाट और शीर्ष गोलाई लिए होता है। बीर का पूरा अकेला होता है जबकि शिवलिंग के साथ पार्वती गणेश की मूर्तियाँ हो सकती हैं। बीर या बरह्म के जो पूजा स्थान हैं वे मिट्टी के बने होते हैं और बड़े विशाल होते हैं। करमन बीर की ऊँचाई ५ फुट है और तल में घेरा ७ फुट है। इसका ऊपरी सिरा तिकोना और नीचे गोलाई में फैला होता है। बीर के चौरे (चबूतरा) के पिण्ड की एक विशेषता और होती है इसमें बीच में ताख बना होता है जिसमें दीपक जलता है। इसे सिन्दूर से रंगा जाता है। हनुमान की मूर्ति बड़ी विशाल होती है और वे भी सिन्दूर से लिप पुते होते हैं। काशी के बीरों में महाबीर नाम के भी एक बीर थे। गोस्वामी तुलसीदास की पत्रिका में उनका उल्लेख हुआ है। उसमें उन्होंने इस हनुमान से मिला दिया है। इस धारणा को दो बातों में बल मिलता है जो ऊपर बताई जा चुकी है। हनुमान की मूर्ति भी यक्ष मूर्तियों की तरह विशाल होती है। दूसरे उन्हें सिन्दूर से पोता जाता है।

आज के हिन्दू धर्म बौद्धधर्म तथा और तो क्या मुसलमानी पीरों की मजारों पर (पीर बीर यक्ष का मुसलमानी रूप) जो झण्डे कपड़े या ताग बाँधे जाते हैं वह यक्षपूजा से आया आचार है। धम्मपद अट्ठकथा की निम्नलिखित कथा में पुत्र उत्पत्ति की कामना के लिए एक वृक्ष की पूजा का वर्णन आया है —

सावत्थी में महासुवण्ण नाम का एक गृहपति रहता था। वह धनी था असीम सम्पदा रखता था और आनन्द के हर साधन का स्वामी था फिर भी वह

---

1 E W Burlingam   Buddhist Legends H O S Vol 8 p 146

निपूता था। एक दिन जब वह घाट से नहाकर घर लौट रहा था उसने सड़क के किनारे पर एक विशाल वृक्ष देखा जिसकी शाखाएँ चारों ओर फैल रही थीं। उसने सोचा— इस पेड़ पर अवश्य कोई शक्तिशाली वृक्ष देवता रहते हैं। सो उसने पेड़ के नीचे की भूमि साफ कराई, पेड़ के चारों ओर से पावार (प्राकार) से घेर दिया और सवेष्टन (अहाते) में रेत बिछवाया। वृक्ष पर झण्डे और वस्त्र बाँधकर उसने निम्न प्रण लिया यदि मेरे पुत्र या पुत्री उत्पन्न हुआ तो मैं आपका बहुत सम्मान करूँगा। इतना कहके वह अपने घर चला गया।

इसी प्रकार की एक कथा काह्‌ग्यूर में दी हुई है।[1]

यक्षपूजा का एक विशेष प्रकार था। इसके अंग थे— पुष्प, माल्य, धूप, दीप, गंध, नैवेद्य या प्रसाद और संगीत। यही आज के हिंदू धर्म की पूजा के अंग हैं। गीता में इसे पत्र पुष्पं फलं तोयम् कहा है। देव युग की पूजा पद्धति यत्न समाप्त हो चुकी है।

मध्यकाल में यक्षपूजा

यक्षपूजा मध्यकाल में और आज भी वीर ब्रह्म की पूजा में जीवित है। मध्यकालीन साहित्य में ५२ वीरों का अनेक स्थान पर उल्लेख है। ५२ वीरों की सूची अलग-अलग मिलती है। पृथ्वीराज रासो का एक है कुछ हस्तलिखित प्रतियों में और। उनमें से दो ये हैं

बावनवीर नामावली (१)

१ छाविरा	१९ कालोवीर	३७ गारिनोवीर
२ धुलियावीर	२० गारावीर	३८ घूटवीर
३ तलपआटारीवीर	२१ अग्निजरावीर	३९ कूटकवीर
४ गूलाभजनवीर	२२ विपरातवीर	४० वदवीर
५ नाडातोडणवीर	२३ रगतियावीर	४१ मनावीर
६ मसाणमोरणवीर	२४ कालीयावार	४२ सतोसवार
७ गडउपाडणवीर	२५ कालवनवीर	४३ अमरवीर
८ समुद्रउतारणवीर	२६ कालघण्टवीर	४४ महामरवीर
९ समुद्रसोषणवार	२७ इन्द्रवीर	४५ कन्धारवीर
१० पवनउपाडणवार	२८ जमवार	४६ सहस्रयावीर
११ लाभजनवीर	२९ दवारिवीर	४७ गन्धारवीर
१२ मावत्तनाडणवार	३० दूरिनारवीर	४८ भूतयाणवार
१ विपरागवीर	३१ दूरिपारवार	४९ बारनीनारवार

---

1 Schiefner, Tibetan Tales IX

१४ हन्मालवीर
१५ आगियाउवीर
१६ सापपाउवीर
१७ जमघटीवीर
१८ असलटीवीर
३२ हरियारिवीर
३३ भापडोवीर
३४ माणभद्रवीर
३५ कापडीवीर
३६ नारसिंहवीर
५० टाक्नीमारवीर
५१ महाध्याप्यवीर
५२ उत्तमादिववीर

बावनवीर नामावली (२)

१ कपिलऊँवीर
२ खोडियावीर
३ तलपहारीवीर
४ नाडिनाग्नवीर
५ मुनाभजनवार
६ मसाणनाटनवीर
७ गन्डपाटणवार
८ समुद्रतिरणवीर
९ समुद्रसापणवीर
१० लाहभजनवीर
११ सात्रलिताडनवीर
१२ विशनपारवरवीर
१३ रुडमानावीर
१४ आगीयावीर
१५ वापवीर
१६ यमघटवीर
१७ कालिवीर
१८ अकालवीर
१९ अग्निक्तवीर
२० विपाक्रतयोर
२१ रगनायावीर
२२ कायलावार
२३ कालीयावीर
२४ कान्वेलवीर
२५ कालघटवार
२६ इन्द्रवीर
२७ जमवीर
२८ दवगारिवीर
२९ दुतरारिवीर
३० हरारिवीर
३१ भापडावीर
३२ माणिभद्रवार
३३ कापडीयावीर
३४ केदारावार
३५ नारसिंहवीर
३६ गुरचलोवार
३७ घटवीर
३८ कान्तरवार
३९ वागुवीर
४० महतवीर
४१ सतोपवीर
४२ सतापमहावीर
४३ भमरवीर
४४ महाभमरवीर
४५ क्षेत्रपालवीर
४६ भूतपाणवीर
४७ हिंडनखानवीर
४८ मकपाणवीर
४९ साकिणाशूलवीर
५० दन्तभन्जनवीर
५१ एराजमालवाहनवीर
५२ आद्रवीर

५२ यक्षों के पूजन की विधि चलती थी। इनमें मुख्य तो वही रहे लेकिन कुछ स्थान स्थान पर स्थानीय पूजनीय यक्षों के साथ बदलते रहे। एक समय यह सोचा जाता होगा कि ये ५२ यक्ष लंका में बसते थे। तभी लोक में मुहावरा प्रचलित हुआ कि लंका में सभी बावन गजे नहीं होते। इसी प्रकार आज यह किंवदन्ती है कि काशी में बावन वीरों का चौरा है।

मध्य काल में चौंसठ योगिनियों की भी पूजा होती थी। खजुराहो और अन्य स्थानों पर चौंसठ योगिनियों के मन्दिर पाए गए हैं। इनकी एक सूची निम्न है —

चौंसठ योगिनी नामावली

१ दिव्या योगिनी
२ महायोगिनी
३ सिद्ध योगिनी
४ गणेश्वरी
५ प्रेताक्षी
६ डाकिनी
७ काली
८ कालरात्रि
९ निशाचरी
१० टंकारी
११ सिद्धि वेताली
१२ ह्रींकारी
१३ भूतडामर
१४ ऊर्ध्वकेशी
१५ विरूपाक्षी
१६ शुष्कांगी
१७ नरभोजनी
१८ फट्कारी
१९ वीरभद्राक्षी
२० धूम्राक्षी
२१ कलहप्रिया
२२ राक्षसी
२३ घोर रक्ताक्षी
२४ विरूपाक्षी
२५ भयंकरी
२६ चौरी
२७ कुमारी
२८ चण्डिका
२९ विराक्षी
३० मुण्डधारिणी
३१ भैरवी
३२ चक्रिणी
३३ क्रोधाय
३४ दुर्मुखी
३५ प्रेतवाहिनी
३६ कटंकी
३७ लम्बोष्ठा
३८ मालिनी
३९ मन्त्र योगिनी
४० कालाक्षी
४१ मोहिनी
४२ चक्री
४३ कंकाली
४४ भुवनेश्वरी
४५ कुण्डली
४६ मालिनी
४७ लक्ष्मी
४८ धनदुरा
४९ कराला
५० कौशिका
५१ भद्राणी
५२ व्याघ्रणी
५३ यमाय
५४ यक्षणी
५५ कुमारी
५६ यन्त्रवाहिनी
५७ विशाली
५८ कामाक्षी
५९ विषहारिणी
६० ह्रींकटी
६१ विकटी
६२ घोराय
६३ कपाली
६४ विषलाङ्गी

इन योगिनियों में कितनी यक्ष जाति की हैं और कितनी अन्य वनजातियों की यह कहना कठिन है। इनकी सूचियाँ भी एक से अधिक हैं। उनमें नाम भी भिन्न हुए हैं।

वर्तमान काल में यक्षपूजा

काशी आज भी वीर बरम पूजा से जुड़ा हुआ है। यहाँ के दो प्रसिद्ध मुहल्ले हैं— लहुराबीर और भोजूबीर। भगुपुर के पास गौडियावीर है। एक लोकप्रचलित बौद्ध कथा है कि वैशाली नगर के बाहर घण्टायक्ष का आयतन (यक्षगृह) था। जब कभी कोई नया व्यक्ति नगर में घुसने का प्रयत्न करता था तो यक्ष के गले का घण्टा बज उठता था और वह पकड़ा जाता था। इसी प्रकार वाराणसी नगर के बाहर डिंडिम (डाण्डिया) वीर का चौरा होगा जो रात को

ि्गोरा (डिंडिम) पीटकर नगर की रक्षा करते होगे। काशी विश्वविद्यालय के फाटक के पास ब्रह्मवार तथा उसके अन्दर करमनबीर मानिकवीर है। पचकोसी मार्ग पर दवगबीर है। जगतगज मे दतराबीर है। सस्कृत विश्वविद्यालय के सामने एक बीर का थूहा (स्तूप) है जिसके ऊपर किसी भक्त ने देवीरूपी नारी का चित्र बनाकर ऊपर कल्याणी देवी लिख दिया है। यह कल्याणवीर होगा। भरहुत की शिल्प मे बहुत से यक्षो के नाम मिले है जिनमे एक है महाकोका और दूसरा चुल्ला कोका (बडा कोका और छोटा कोका)। काशी मे सग्राबीर (छोटा बीर) है तो पुल्लावीर (विपुल = बडा बीर) भी होगा। बुल्ला नाला के आस पास कही बुल्ला बीर का थान होगा। एक बुल्लाबीर विश्वविद्यालय मे भी है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार बलिया जिले के गाव गाव मे वरह्म का चौरा पाया जाता है जिस पर मिट्टी का थूहा जमा बना रहता है।[1] इसी प्रकार श्री ब्योहार राजेन्द्रसिंह ने डा० अग्रवाल को बताया कि मध्य प्रदेश मे वरह्मदेव या वरह्मबाबा की पूजा होती है। बरह्म प्राय झाड पर रहता है। यह वृक्ष बहुधा पीपल का होता है। गरौठा मे और आजमगढ जिले मे भी बीर बरह्म की पूजा होती है यही जौनपुर जिले मे भी। मगही क्षेत्र मे भी बीर की पूजा होती है।

गुजरात मे भी बावन वीरो की पूजा की जाती है। वहा जक्खचेत्य या जक्खायतन मिलते है। जना मे ५२ बीरो की सूची है। इन सूचियो मे माणिभद्र वीर सब मे है। वह अवश्य मणिभद्र यक्ष का देशज नाम है। यह यक्ष सारे देश मे पूजा जाता था। हमारी बोली मे कहावत है— तुम भी बावन बीरो मे अपना नाम लिखा लो। ऐसा करें तो बावन बीर कहाऊँ।

प्राचीन काल मे पचवीर या पाच यक्षो की पूजा बहुत प्रसिद्ध थी। भागवत धर्म मे पचवीर को पच वृष्णिवीर मे बदल दिया और उनकी पूजा आरम्भ की गई।

पचवीर— मणिभद्र पूर्णभद्र दीर्घभद्र यक्षभद्र और स्वभद्र।

पच वृष्णिवीर— सकर्षण वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध और साम्ब।

(मथुरा के मोरा कूप लेख से प्राप्त)

मुसलमान काल मे आने पर पचवीर पचपीर मे बदल गए और उनकी पूजा होने लगी। मुसलमानो मे पीरो की पूजा भारत की देन है। पश्चिमी भारत मे स्थान-स्थान पर पीरो के मजार है जिन पर कपडे बाधे जाते हैं और मन्नत मानी जाती है। मेरठ मे कई पीर हैं— शाह पीर भण्ड पीर उडान पीर नौगजा पीर आदि। नौगजा पीर क्या उसका यक्ष मूल नहा दिखाता? पश्चिमी भारत मे जन्माष्टमी के दिन घी के भर हाथ के थापे मार कर उनके सामने

1 वासुदेवशरण अग्रवाल प्राचीन भारतीय लोकधर्म पृ 132-143

भाषा और लिपि

तुलनात्मक भाषा शास्त्र का आरम्भ उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ। मैक्समूलर ने संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि के अध्ययन से बताया कि ये भाषाएं एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। प्राचीन यूरोपीय भाषाएँ संस्कृत जननी की पुत्री हैं। उन्होंने इस समूह को आर्य भाषा समूह का नाम दिया, जो बाद में प्रचलित बन गया। बाद के भाषावैज्ञानिकों ने उन्हें एक लुप्त भाषा की सहोदरी पुत्रियाँ बताया।

इसी तरह विशप काल्डवेल ने द्रविड़ भाषाओं का अध्ययन करके बताया कि ये संस्कृत से बिल्कुल अलग भाषाएं हैं और भारत के मूल निवासियों की भाषाएँ हैं। उनमें संस्कृत के अनेक शब्द मिलते हैं जो उन पर उत्तर वालों ने थोप दिये हैं, यह भाषाई साम्राज्यवाद है। उन्हें बोलने वालों को द्रविड़ जाति नाम दिया। द्रविड़ भाषा विज्ञान के विद्वान काल्डवेल का कथन है—'द्रविड़ लोगों का सम्बन्ध तुरानियन जातियों से है। आर्यों के भारतवर्ष में आने के पहले ही द्रविड़ भाषाएं बहुत विकसित हो चुकी थीं। बनावट, शब्द भंडार आदि की दृष्टि से द्रविड़ भाषाओं का सम्बन्ध संस्कृत से न होकर तुरानियन और सेमेटिक परिवार की भाषाओं के साथ है। इनमें आर्य भाषाओं का जो अंश पाया जाता है, वह आर्य और द्रविड़ दोनों के भारतवर्ष में आने से पूर्व इण्डो यूरोपियन और तुरानियन जातियों के साथ प्राग् ऐतिहासिक काल के निकट निवास का परिणाम है।

खोज आगे बढ़ने पर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पता चला कि आज की हिन्दू संस्कृति, धर्म, आचार व्यवहार अस्सी प्रतिशत तथाकथित द्रविड़ जाति से आया है। भाषावैज्ञानिक क्षेत्र में खलबली मच गई। द्रविड़ भाषा की समानता घनघोरता से यूरोप में ढूंढी गई और वे सफल हुए—उसे फिनो उग्रियन भाषा से जोड़ा गया और एक नई द्रविड़ प्रजाति पैदा की गई जो भूमध्य सागर के पास के देशों से भारत में आई।

ये दोनों निष्कर्ष बाबावाक्य प्रमाणम् मान लिये गये और इन दोनों को ध्यान में रखकर आगे की शोध की गई।

संस्कृत को उत्तर भारत की सब आधुनिक भाषाओं की जननी बताया और समझा जाता था। इस विश्वास पर सबसे पहले कुठाराघात हिन्दी के 'पाणिनि' महान् वैयाकरण किशोरीदास वाजपेयी ने किया। उन्होंने सतर्क सिद्ध कर दिया कि

हिन्दी संस्कृत की पुत्री नहीं है। भाषाएँ व्याकरण से पहचानी जाती हैं और हिन्दी व्याकरण संस्कृत व्याकरण से अलग है।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने 'हिन्दी शब्दानुशासन' में आरम्भ में लिखा है— "हिन्दी की उत्पत्ति उस संस्कृत भाषा से नहीं है जो कि वेदों में, उपनिषदों में तथा वाल्मीकि या कालिदास आदि के काव्य ग्रन्थों में हमें उपलब्ध है। (पृष्ठ १) हिन्दी की व्याकरण संस्कृत की व्याकरण से अलग है। द्राक्षा से दाख, खट्वा से खाट बनाना 'यह संस्कृत (तथा उपलब्ध प्राकृतों) से एकदम उलटी पद्धति है न?

ये दोनों किसी एक मूल भाषा की शाखाएं हैं। दोनों का स्वतन्त्र विकास हुआ है परन्तु हैं दोनों एक मूल भाषा से निकली। वाजपेयी जी कहते हैं कि हिन्दी के अनेक मूल तत्त्व बहुत प्राचीन हैं और संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश की सीढ़ी के सहारे उन तक नहीं पहुँचा जा सकता। इसे उन्होंने ढेरों उदाहरण देकर समझाया है।

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने भाषा विज्ञान में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की और भारतीय भाषाओं पर अथक शोध किया है। उनका निष्कर्ष भी आँख खोलने वाला है।

'भारतीय आर्य भाषा के कितने शब्दों के और वाग्भङ्गियों के संबंध में जो संशय हैं वे अभी तक हल किए जा नहीं सके और यह असम्भव नहीं है कि वे शब्द और वाक्य भंगी, निषाद किरात और द्राविड़ के अतिरिक्त अधुना लुप्त और किसी चतुर्थ अनार्य या आर्येतर मानवों की भाषा पर आधारित हों पर जो हो सो हो— कम से कम दो हज़ार वर्ष भर आर्य भाषा की प्रगति में भारतभूमि पर हम द्राविड़ (तथा कुछ स्वल्पतया कोल या निषाद) भाषा को कार्यकर रूप से देख पाते हैं। आर्य पर द्राविड़ का प्रभाव केवल ऊपर की या बाहर की वस्तु नहीं है बल्कि यह प्रभाव नीचे से substratum या अव-स्तर जैसा आया है, यह प्रभाव एक साथ गहरा भी है फैला हुआ भी है।[1]

'संस्कृत में जो नया भविष्य काल वाचक रूप प्रयोग में आया जैसे से कर्ता = 'वह करेगा', कर्ता + अस्मि = कर्तास्मि = मैं करूँगा यह भी द्राविड़ क्रिया गठन पद्धति के तौर पर है। आधुनिक पूर्वी आर्य भाषाओं में (जो कि मागधी प्राकृत से उद्भूत हुई हैं) क्रिया के अतीत काल और भविष्यत्-काल के जो रूप बने हैं विशेष करके वे उनमें आधुनिक द्राविड़ भाषा के रूपों से बहुत सी मेल जोल दीखता है।[2]

भाषा में असमापिका क्रिया के प्रयोग की भरमार आधुनिक आर्य भाषा की एक लक्षणीय रीति है। अंग्रेजी में जहाँ कहेंगे— Go home quick take your lunch, call a cab put your things in drive to the station

1 डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या भारत में आर्य और अनार्य पृ० 65
2 डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या भारत में आर्य और अनार्य पृ० 71

buy our tickets and wait on the platform for me जिसमें अलग अलग कई समापिका क्रियाएँ हैं हिन्दी या दूसरी भारतीय भाषा में (खास करके बंगला में) हम ऐसे बोलने की आदत हैं— जल्दी घर जाकर खाना खाके एक तांगा बुलाके, उसमें अपना सामान लादकर स्टेशन में जाकर हमारे टिकट खरीदकर प्लेटफार्म पर मेरे लिये ठहरोगे — इसमें सिर्फ अन्त में एक ही समापिका क्रिया है। पहले मैंने इसका जिकर किया था— यह रीति किरात भाषा की है, द्राविड़ की भी। दोनों तरफ से प्रभाव आना सम्भव है। पर आर्य भाषा पर दो हजार वर्ष पहले यह प्रभाव आया था— जैसे हम पालि तथा संस्कृत में देख पाते हैं।'[1]

डा० रामविलास शर्मा ने वाजपेयी जी के मत को लेकर पहले 'भाषा और समाज' ग्रंथ लिखा। फिर अपना शोध आगे बढ़ाते हुए उन्होंने तीन खण्डों में 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी' ग्रंथ लिखा जिसके निष्कर्ष क्रान्तिकारी थे। इन विद्वानों का निष्कर्ष यह था कि पहले एक मूल भाषा थी पुरानी प्राकृत जो अनेक बोलियों को अपने में समाए हुए थी। उसे शुद्ध करके सुसंस्कृत परिमार्जित करके संस्कृत भाषा बनाई गई जो राजदरबारों में सिमट कर रह गई। मूल प्राकृत साधारण जन में फूलती फलती रही। उसे फिर पालि में तत्पश्चात् साहित्यिक प्राकृत में सुसंस्कृत किया गया जिसमें ६५ प्रतिशत संस्कृत थी किन्तु ये सब परिष्कृत भाषाएँ पण्डिताऊ वृत्त में ही सिमटकर रह गई। जनता में मूल प्राकृत परिवर्तनों के साथ चलती रही उसी से अपभ्रंश और आज की सारी भाषाएं निकलीं।

इन विद्वानों की आगे स्थापना यह है कि संस्कृत और तमिळ का मिलान करने के स्थान पर अवधी और तमिळ का मिलान करने से आश्चर्यजनक परिणाम आये हैं। ये दोनों एक मूलभाषा से निकली हैं और जो शब्द हम द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत से आये समझते हैं वे द्रविड़ भाषाओं ने उस विद्वत्तापूर्ण परिष्कृत भाषा को दिए हैं जिसे संस्कृत कहते हैं।

मैंने इसमें एक प्रश्नचिह्न उपस्थित कर दिया है जो मेरे मस्तिष्क को लगातार कचोट रहा है। क्या यह मूल प्राकृत यक्षों की भाषा थी ? क्या यह उनके साथ अवधी खड़ी बोली और ब्रज भाषा के प्रदेश से होती हुई दक्षिण चली गई ? क्या प्रजाति और भाषा के कारण जैन और बौद्ध धर्म दक्षिण भारत में विस्तृत रूप से फैले ? क्योंकि तमिळ भाषा का स्वर्ण काल और अमर साहित्य जैन और बौद्ध भिक्षुओं की देन हैं।

आज दक्षिण के अनेक विद्वानों का इस ओर ध्यान गया है और उन्होंने भी यही निष्कर्ष निकाले हैं। 'आर्य द्रविड़ भाषाओं की मूलभूत एकता' एयर की इस

1 डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या 'भारत में आर्य और अनार्य' पृ० 72

पुस्तक में यही दिखाया गया है। के एस श्रीनिवासन ने भी 'तमिळ का उत्तर भारतीय सम्बन्ध' दर्शाया है।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ के ए नीलकण्ठ शास्त्री कहते हैं कि द्रविड भाषाओं को बोलने वाले विभिन्न प्रजातियों के सदस्य थे। द्रविड एक भाषाई शब्द है जो सब प्रथम उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सम्बन्धित भाषाओं के एक वर्ग जिसमें तमिळ तेलुगु आती हैं के लिए प्रयोग किया गया था इसमें प्रजाति का तनिक भी भान न था। यह संस्कृत द्रमिड (प्राकृत दमिल) शब्द से बना है।

एक तमिल प्रोफेसर एस रुनरुकुवनर ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें तमिळ को संसार की प्राचीनतम भाषा बताया है और कहा है तमिळ भाषा की उत्पत्ति उतनी ही रहस्यपूर्ण और दुर्बोध है जितनी कि संसार की उत्पत्ति।

यह क्या इस कारण से नहीं कि हम द्रविड और वैदिक को बिलकुल अलग भाषाएं मानकर चलते हैं। क्या वे एक प्राचीन प्राकृत (पणभाषा) से नहीं निकली हैं इस पर शोध करने की बड़ी आवश्यकता है।

इन सब बातों का विस्तृत विवेचन तो एक वृहत् ग्रंथ का विषय है। एक एक शब्द विस्तृत अध्ययन मांगता है। उदाहरण के रूप में संस्कृत का वधू शब्द लें। वधू शब्द को 'वध' (मारना) से निकला जानकर यह कल्पना की जा सकती है कि पुराने समय में बहुओं को इतना कष्ट दिया जाता था कि वे मर जाती थीं या मार दी जाती थीं। किन्तु यास्क ने निरुक्त में बताया है कि यह शब्द वह (लाना) धातु से बना है। विवाह के बाद पतिगृह में लाई जाने के कारण यह वधू (बहू) कहलाती है। क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि यह पुराना शब्द था जिसे गुणसहित घर का बनाया गया है।

घोड़े का शब्द लें। संस्कृत में अश्व, वाजि, हय आदि हैं परन्तु हिन्दी के घोड़े से समान कोई नहीं। किन्तु तमिळ में घोटक है।

या फिर मिर्ची को लें। संस्कृत में मारीच, तमिळ पून, कन्नड़ मेणसु, तेलुगु पुरु, मुण्डा पुगी, सिन्धी (पणभाषा) पीसी, अफगान पीपी, पारसी पुगम, उत्तर-पश्चिम भारत पूगी, ब्राह्मी पिपी, पुराण पुग। ब्राह्मी और पणभाषा में समान रूप पिपी है। नीचे उतर तो सिन्धी और मुण्डा का पूगी हो गया जो अन्य जातियों से मिलकर योगन में बदलता रहा। उधर उत्तर पश्चिम में रागग रूप की मान्यता को आगे बढ़ा तो पीपी, पूगक आदि।

मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री स्वामिनी होती थी। हिन्दी का नाग या साग शब्द उसी का द्योतक है। संस्कृत का स्त्री शब्द शक्तिनिर्धारण पर आधारित है।

कुछ संस्कृत में कुटुम्ब भी मिलता है कहीं कहीं कुटुम्ब भी। जंगल का एक रानी पेड़ है जहां और जब अन्य कोई पेड़ नहीं होता, वहीं वह निर्भीक पेड़ उगता है और सारी धरती धास छोड़ पूरा से लहराता रहता है।

यह शब्द आयभाषा का नहीं है। कहाँ से आया? सिलवा लेवी कह गए है कि संस्कृत भाषा म फूलों वृक्षों और खेती बागबानी के अधिकांश शब्द आग्नेय शब्द-परिवार के है। क्या यह मूल प्राकृत के तो नहीं है?

डा० सुनीति कुमार चटर्जी लिखते है "६०० ईसा पूव म आयभाषा बंगाल म तथा दक्षिण म फैली। वहा संस्कृत और प्राकृत दोनों साथ साथ गई। तमिळ मे अनेक प्राकृत के शब्द हैं जो आसानी से पहचाने नहीं जाते।"[1] "लंका म ६०० ईसा पूव के लगभग गुजरात से एक दूसरी प्राकृत आई।[2]

कुछ तथ्य यहाँ सक्षेप मे दिए जा रहे है।

भाषा विज्ञान की स्थापना

भारत के सन्दभ म भाषा विज्ञान की भ्रान्ति जो कायम की गई है उसका मुलाहज़ा फरमाइए। संस्कृत और उसकी पुत्री भाषाओं का स्रोत एक इण्डो जमनिक भाषा जिसके बोलने वाले बाहर से आए। दूसरा है द्रविड भाषा परिवार जिसका सम्बन्ध अब फिनो उग्रयिन से जोड़ा जाता है द्रविड भी यूरोप स भारत म आए आर्यों से पहले। तीसरा भाषा परिवार कोल या मुण्ड कहलाता है जिसका एक नाम आस्ट्रो एशियाटिक है। इसके बोलने वाले आस्ट्रेलिया या सुदूर पूव के द्वीपों से आए। अन्त म पूर्वाचल म नाग भाषा-परिवार की भाषाएँ बोली जाती ह जिसका वैज्ञानिक नाम साइनो टिबटन है। इसका मूल केन्द्र भी हिमालय के उस पार है सो इसके बोलने वाले भी चीन और तिब्बत स भारत म आए।

दूसरे जो ग्रीक लटिन और जमन म संस्कृत के शब्द मिलते है वे शुद्ध आय तत्व है शेष जो संस्कृत म हैं वह अनाय है। इसी प्रकार तमिळ आदि म जो फिनलड की भाषा से मिलता है वह शुद्ध द्रविड तत्व है बाकी भारत की मिलावट है। इसी प्रकार मुडा परिवार म। और नाग परिवार तो भारत की भाषा है ही नहीं उसके क्या कहने!

इसी म स एक भ्रान्ति का पोषण और किया गया है कि हजारों साल स आर्यों ने द्रविडों पर अत्याचार किया है उन्ह उत्तर भारत से भगा दिया उन्ह दास बना दिया उनकी भाषाएँ नष्ट कर दी, उनकी भाषाओं म अनेक संस्कृत के शब्दों की भरमार कर दी और अब स्वतन्त्रता के बाद उन पर अपनी हिन्दी लाद रहे है।

1953 ई० म हावड यूनिवर्सिटी प्रेस से डब्ल्यू नामन ब्राउन की एक पुस्तक निकली जिसम दुनिया को समझाया गया कि सिन्धु घाटी की सभ्यता ईरान और

1 इण्डो आयन एण्ड हिन्दी पृ० 52-53

2 इण्डो-आयन एण्ड हिन्दी पृ० 66-67

ईरान के साथ सम्बन्धित थी भारत के साथ नहीं। जब वेद मन्त्र बोलने वाले आर्य पंजाब में आकर बसे तो वे ईरान और तुर्की (हत्ती) से सम्बन्धित थे। मुस्लिम युग में भी लाहौर और उत्तर पश्चिम प्रान्त का सम्बन्ध ईरान बलख बुखारा और मध्य एशिया से था। सो आज नाम पड़ा पाकिस्तान कभी भारत का हिस्सा नहीं रहा।

इसी प्रकार अब दक्षिणी भारत और पूर्वी भारत को अलग सिद्ध करने का षडयन्त्र चल रहा है।

जिसे भारत की भाषाओं का अध्ययन करना है उन्हें पहले से त्रुटिरहित खण्डों में बाँटकर और पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर नहीं करना चाहिये। सब भाषाओं का साथ तुलनात्मक अध्ययन करने पर नई राह दिखेगी।

सबसे पहले तो विजेता आर्य-परिवार और विजित द्रविड परिवार का पूर्वाग्रह मन से निकाल देना चाहिये। संस्कृत और द्रविड भाषाओं में जो समान शब्द हैं वे संस्कृत ने उधार दिये हैं यही क्या कहा जाय? द्रविड भाषाओं ने संस्कृत को क्या नहीं? क्या इसलिये कि ये यूरोप की आर्य भाषाओं में मिलते हैं। उन पर भी द्रविड भाषाओं का प्रभाव आँका जाय तो आँखें खुली रह जायगी। एक शब्द लो। संस्कृत— पद/पाद, ग्रीक— पड/पाद लटिन— पस/पद अंग्रेजी— फुट, हिन्दी— पग/पद/पाँव। इनके लिये संस्कृत या इण्डो जर्मनिक परिवार में कोई क्रियापद नहीं है और द्रविड भाषाओं में चलने के लिए पो क्रियापद का बहुत चलन है। इसी पो से आगे निकले हैं संस्कृत— पथ/पथ, अंग्रेजी— पाथ जर्मन— पफ्ट रूसी— पूत्। द्रविड और आर्य परिवारों में बासियों शब्द इस 'पो' से बने हैं जो द्रविड है।

संस्कृत में वीथी शब्द है तमिळ में वीदि। यह संस्कृत से नहीं लिया गया बल्कि उल्टा है। तमिल में चलने के लिए वा/वर क्रिया है जिसमें ये सब बने हैं लटिन— विआ अंग्रेजी— वे। इसी से बना है वायु और अंग्रेजी का विण्ड। तमिळ में है विण्डु (आकाश, हवा)। तमिळ वार (बहना) से बना वारि ययार (तमिळ का है संस्कृत में हिन्दी में नहीं आया)।

संस्कृत और उसकी पुत्रियों में सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियाँ घ ध भ का व्यवहार होता है द्रविड परिवार में नहीं। साथ ही यूरोप की आर्य भाषाओं में भी नहीं। ये इण्डो जर्मनिक भाषा में थी। मजे की बात है जहाँ भारत में आर्य और द्रविड परिवार वालों की टक्कर हुई वहीं तो ये काम में आ रही हैं और तथाकथित मूल देश के निवासियों की भाषा से इनका लोप हो गया। यूरोप ही नहीं, ईरान अफगानिस्तान मध्य एशिया जहाँ भी उनका मूल था या वे घूमते रहे सब जगह ये ध्वनियाँ सुनने को नहीं मिलता। न लटिन, ग्रीक में, न फारसी और हित्ती में।

आर्य बारहवीं सदी ईसा पूर्व में भारत में घुसे और सिंधु पार करते हुए उनके मुख से घ ध भ के वर्ग शब्द निकलने लगे जबकि उनका युद्ध द्रविड़ों से हो रहा था जो स्वयं ये शब्द नहीं बोलते थे। क्या यह शोध का विषय नहीं है? क्या यह सत्य नहीं हो सकता कि इण्डो जर्मनिक भाषा परिवार के व्यक्ति जब भारत से निकले तब किसी कारणवश इन ध्वनियों का फारस में लेकर आइसलैण्ड तक लोप हो गया? (तभी संस्कृत का भग भिन्न का फरो बन सकता है।)

इसमें यह ज्ञात होता है कि किसी समय भारत के उत्तर पश्चिम में द्रविड भाषा बोलने वालों का काफी बड़ा जमघट था। भारत से आर्यभाषा जब बाहर निकली तभी उस भाषा में इन परिवर्तनों का द्रविड प्रभाव समझ में आ सकता है। आगे के कुछ परिवर्तन देखकर यह कहा जा सकता है कि यूरोप की आर्य भाषाओं के विश्वास में द्रविड भाषा परिवार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कन्नड द्रविड कुल की भाषा है जिसमें शुरू के प का ह हो जाता है यही गोंडी भाषा में है यही आर्य परिवार की आर्मीनियन में है और जर्मन कुल की भाषाओं में।

स और श शब्द के शुरू में द्रविड भाषाओं की मूल ध्वनि नहीं है। तमिळ में बिल्कुल नहीं पाए जाते तेलगु में कुछ हैं कन्नड में उससे अधिक। उत्तर में आर्य भाषाओं के मिश्रण से आगए हैं। तमिळ में स श का त या क हो जाता है। आर्यभाषाओं के भी दो वर्ग कर दिए हैं— शतम् और केन्तुम्। कहा जाता है यूरोप वाले केन्तुम् वर्ग के हैं संस्कृत वाले शतम् वर्ग के। क्या द्रविड वर्ग ने यूरोप में प्रभाव डाला है? अंग्रेजी में सैन्टर शब्द है संस्कृत में केन्द्र। यह तो उल्टा हो गया? श्वान कनाम दिश दिक दश देस— तो क्या संस्कृत में दोनों वर्ग आगए? नासा संस्कृत में, नाक हिन्दी में तो क्या हिन्दी लैटिन से निकली है?

हिमालय के उत्तर में तोखारी भाषा मिली है जो संस्कृत से मिलती आर्य भाषा है किन्तु वह केन्तुम् वर्ग की है। वह पूर्व में कैसे आगई?

उसमें भी द्रविड भाषाओं की तरह घ ध भ ध्वनि अघोष रहती है।

वहीं ऊपरले हिन्द (चीनी तुर्किस्तान) में खरोष्टी लिपि में लिखी खोतानी भाषा मिली है वह भी उच्चारण में द्रविड नियम का अनुसरण करती है। और ये अभिलेख इतने बाद के हैं कि यह नहीं कहा जा सकता कि आर्य लोग भारत में आने से पहले वहां वे भाषाएँ छोड़ आए थे।

र और ल से शुरू होने वाले शब्दों में तमिळ में अ इ या उ स्वर जोड़ दिया जाता है ऐसा ही ग्रीक में होता है।

शतम् केन्तुम् कैसे होगया? आधा न कहां से आगया? संस्कृत में भी अनेक शब्दों में आधा न आया है जैसे— पथ पंथ निद निन्द। यह द्रविड

भाषाओं का प्रभाव है। हिन्दी में आधे न वाले संस्कृत शब्द ही चले हैं। निंदा गुम्फित आदि।

फिर लटिन आदि के तुम् भाषाएँ द्रविड प्रभाव वाली भाषा क्या हैं, मौलिक गनम् क्या नहीं, संस्कृत जसी। इसका अथ है द्रविड भाषाओं के सम्मिलन म ददलन के उपरान्त संस्कृत यूरोप और मध्य एशिया म पनी।

संस्कृत म ट ड, ण का बहुत अभाव है और प का भी। कहा यह जाता था कि य ध्वनियाँ द्रविड म आइ। परन्तु उनम भी इनका अभाव पाया गया। और हरियाणा, महाराष्ट्र स लेकर आसाम तक की बोलियो म य खूब पाई जाती हैं— टस्सण, वटण, कोरण। प्राकृत, पालि अध मागधी, शमन म इन ध्वनियो की भरमार है। तो क्या यह सम्भव नहा कि उत्तरी भारत म एक तीसरा भाषा परिवार था जो मौलिक था और जिसने द्रविड भाषाओं और आय भाषाओं पर बहुत गहरा प्रभाव डाला।

मध्यकाल म जो प्राकृत पालि अपभ्रंश भाषा प्रचलित हुई व संस्कृत का बिगडा रूप नहीं था। व एक नसर्गिक भाषा प्राकृत का रूप थी जो वदिक भाषा स भी पूव विद्यमान थी। वदिक भाषा स्वय उस समय की बोलियो का साहित्यिक रूप माना जाता है। उसी मौलिक प्राकृत स पाँच तरह की प्राकृत अपभ्रंश, पालि आदि निकली। उसी न द्रविड भाषाओं को उनका वतमान रूप दिया। उसी लोक भाषा का संस्कार किया हुआ रूप संस्कृत कहलाया, जो साहित्यिक भाषा रही किन्तु प्राकृतिक नसर्गिक नहीं। प्राकृत महाकाव्य 'गोडवहो' म कहा गया है 'जिस प्रकार जल समुद्र म प्रवेश करता है और भाप बनकर पुन समुद्र स बाहर जाता है, उसी प्रकार प्राकृत स सब भाषाओं का उद्गम होता है और फिर सब उसी म समाहित हो जाती हैं।

संस्कृत साहित्य की भाषा रही, उच्च वग की भाषा रही राजदरबार की भाषा रही क्या उत्तर म क्या दक्षिण म, लेकिन वह लोकभाषा नहीं रही। लोकभाषा पुरानी प्राकृत या उसकी अनक बटियाँ हो रहीं। ब्राह्मणो न उस सौतला व्यवहार दिया किन्तु बुद्ध, महावीर की क्रान्ति न इस जनभाषा को भी साहित्यिक भाषा बना दिया और इसी स आज की सारी भारतीय भाषाएँ निकली, संस्कृत से नहीं।

संस्कृत हस्त का फारसी म रूप दस्त है। पर हस्त का दस्त नहीं बन सकता, न दस्त का हस्त। इसका मूल रूप धस्त होना चाहिए, शायद धा क्रिया स जिसका अथ करना रहा होगा। इसका एक रूप हिन्दी का धन्धा है अंग्रेजी का डू और डाड। यह मूल प्राकृत का शब्द होगा जो चारो ओर फला। हिन्दी के धन्धा का आधा न द्रविड भाषा का प्रभाव दिखाता है।

हिन्दी (अवधी पहाडी, हरियाणवी आदि) म बीसियो शब्द ऐसे हैं जो द्रविड

भाषाओं में लिये गये हैं। उनको सुनकर तो दंग रह जाना पड़ता है व एम हैं जो हमारी रोजमरा की जिंदगी म आते हैं। जसे—अम्मा मामा ताई भाइ अजिया चुनू मुनू चिड़िया, चिरइ, मनइ जुकना बाजी चीलर, कौर, बाहू, ढेरली आदि।

तभी भारत की भाषाओं का विकास केवल आय भाषा या केवल द्रविड भाषा के विकास पर जोर डालने से समझ म नहीं आ सकता। दोनों का साथ साथ अध्ययन हम केवल भाषा का विकास ही नहीं समझा सकता इतिहास का सही रूप भी समझने म सहायता कर सकता है।

वे दोनों भारत म रहने वाली जनजातियों की भाषा थी जो एक दूसरे के सम्पक म बल्कि एक तीसरे सबसे महान् प्राकृत परिवार के साथ रहकर बनी। ये सब मिलजुल कर बनी अनेक शब्द इनम समान हुए उनका अथ विकास और ध्वनि साम्य भी समान हुआ। और इन समान शब्दों का व्यापक रूप जितना द्रविड परिवार म है उतना आय परिवार म नहीं। सो उनका मूल द्रविड या प्राकृत म हो सकता है आय भाषाओं म नहीं। साथ ही इन दोनों भाषाओं म कहीं भी ऐसा वणन नहीं है जिससे आय की द्रविड या द्रविड की आय पर विजय सिद्ध हो सके। बल्कि बाहर की आयभाषाओं पर द्रविड भाषा का प्रभाव पड़ा है जिसस वह भारतीय आय भाषा से बदल गई है। ऊपर दिये अनेक उदाहरणों के अतिरिक्त गिनती म देख लें। भारतीय आय भाषाओं म १ स लेकर १० तक इकाई पहले और दहाई बाद म आता है। द्रविड भाषाओं म इसका उल्टा होता है और भारत स बाहर की सब आय भाषाओं म १ स २० तक भारत का और उसस आगे द्रविड भाषा का अनुकरण होता है।

एक बात और। द्रविड से पाये शब्द चाहे संस्कृत म चाहे हिंदी आदि म अधिक कवित्वमय और प्रभावपूर्ण ह दास्य वृत्ति के नहीं। जसे अनल कानन कुंतल महिला मल्लिका मुकुट, मुक्ता कुवलय आदि। इनके साथ के संस्कृत शब्दों म उतना माधुर्य नहीं।

एक समान शब्द भंडार

कहा यह जाता है कि संस्कृत ग्रीक, लैटिन आदि का एक समान शब्द भंडार है, इस कारण ये किसी एक भाषा स निकली हैं या इनम से कोई एक भाषा बाकी की जननी है।

इनम स कुछ शब्द जो मिलते हैं, उनका उदाहरण देकर यह निष्कय निकाला गया है और जो हजारों शब्द नहीं मिलते उनको कोई नहीं गिनता। पिता के लिये ग्रीक शब्द है पतिर पर दूसरा है गोनेउस। और तीसरा है तोकेउस जो न भारतीय भाषाओं मे है और न लैटिन म।

इसी प्रकार क्रियाएँ हैं। दस मिलता है तो चालीस नहीं मिलती। यह

सम्मिश्रण है जिसमें भारतीय आगन्तुकों का स्थान सांस्कृतिक दृष्टि से उच्च-स्तरीय था। वही जगह आज भारत में अंग्रेजी की है। ममी, डैडी आगाह आदि शब्द रोजमर्रा काम में आते हैं कहानियों में, उपन्यासों में लिखे जाते हैं। जैसे अंग्रेजी में फ्रांसीसी शब्द लिखे जाते हैं। सालों बाद लोग कहने लगेंगे हिन्दी अंग्रेजी से निकली है।

संस्कृत समान शब्द ग्रीस में पितृसत्तात्मक समाज के अधिक हैं। मजे की बात है ग्रीक और लेटिन ने अपने देवी-देवता पुराने रखे हैं बस एक नया अपना लिया है जो पिता रूप है जिसका सम्बन्ध संस्कृत परिवार से है। यह ज्यूस है जिसका षष्ठी रूप दिआस मूल रूप द्यौस की याद दिलाता है। यह लेटिन ज्युपिटर है (द्युपितर)।

ग्रीस की प्रसिद्ध पौराणिक गाथा है कि नए देवताओं ने पुराने देवताओं को हरा दिया। नए देवताओं का नेता 'ज्यूस' है और पुरानों का 'क्रोनोस' जो संस्कृत परिवार से बाहर का है। ज्यूस क्रोनोस का बड़ा बेटा बनकर देवताओं का राजा बन बैठा। सूर्य हिलिओस बनकर इनमें शामिल हुआ जबकि सूरज के ग्रीक देवताओं के अनेक नाम थे हुपरिओन फोइबोस अपोल्लोन।

यूनान की पौराणिक गाथाओं में देवता उच्छृंखल हैं और देवी वन्दनीय। उनके विवाह नहीं होते, उनकी पूजा करते थे। वह एक मातृसमाजक देश था। उन देवियों का भारतीय भाषाओं में कोई सम्बन्धित नाम नहीं है।

भारोपीय भाषा की भ्रान्ति

संस्कृत के मूलतत्त्व उत्तर भारत की उन भाषाओं से निर्मित हुए हैं जिनका सम्बन्ध न द्रविड परिवार से है न यूरोप की भाषाओं से। मान लिया द्यौ ग्रीक लेटिन में मिलता है। किन्तु आकाश किस परिवार का है? द्यु देव, देवता मिल जाते हैं किन्तु सुर? भगवान का 'भग' स्लाव हो लेकिन ईश्वर? मघ? सविता? आदित्य रवि? किरण और प्रकाश? उडु रात्रि? भूमि और पृथ्वी? जल? वह्नि, पावक, अनल? मनुष्य, मानव और पुरुष? नगर और गृह? स्त्री महिला रमणी, वामा? एक तथाकथित भारोपीय परिवार के शब्द के साथ भारतीय पर्याय दिए जा सकते हैं जो अन्य नहीं मिलते। पति-पत्नी का वर वधू, दुहिता के साथ कन्या, युवा के साथ तरुण स्थविर के साथ वृद्ध माता के साथ जननी स्वसा के साथ भगिनी पिता के साथ तात और जनक सूनु के साथ पुत्र भ्राता के साथ बन्धु कपाल के साथ सिर पाद के साथ चरण, जीव के साथ प्राणी, अश्व के साथ हय सर्प के साथ अहि गो के साथ धेनु श्वान के साथ कुक्कुर वृक के साथ वाक (भेडिया)।

केंतुम् वर्ग पुराना है या शतम्

विद्वानों का विचार है कि क मूल ध्वनि है जो लेटिन ने सुरक्षित रखी

और पूरब की भाषाओं ने उसे श कर लिया। किन्तु किम् क कुत कुन जस प्रतिदिन के व्यवहार म आने वाले अनेक शब्दों के विशाल भण्डार वाली भाषा क को श म क्या पलटती। उधर लटिन और ग्रीक म श की ध्वनि नहा है। इसी लिये सभावना यही ठीक है कि उन्होंने शनम् को केनुम् रूप अपनाया।

दूसरे अगर कनुम् मूलरूप होता तो जमन और अग्रेजी म हुण्ड्ट और हुन्ड्रेड क्या होता क्योंकि इन भाषाओ म भी र के अनेक शब्द हैं? सभावना यहा है कि श का ह किसी जनजाति के सम्मिलन से बना।

लेटिन ने सस्कृत पर प्रभाव डाला या इससे उल्टा है

यदि यूरोप से आये हुए आर्यों ने भारतीय भाषाओ को जन्म दिया होता या प्रभावित किया होता तो यहा की भाषाओ म यूरोप की प्राचीन अर्वाचीन भाषाओ की वाक्य रचना से साम्य होता। पर है इसके विपरीत।

१ सस्कृत म और उससे सम्बन्धित भारतीय भाषाओ म इकाई की सख्या को पहले और दहाई की सख्या बाद म रखी जाती है— ग्यारह बारह इक्कीस ग्यारह आदि। यूरोप की भाषाओ म उन्नीस तक सस्कृत का क्रम है फिर अपनी भाव प्रकृति चलती है दहाई पहले इकाई बाद म। उनम दो विचारधाराओ का सम्मिलन स्पष्ट है।

२ अन्तर विभक्ति चिह्नों का भी स्पष्ट है। रामस्य राम का राम के ऊपर विभक्ति चिह्न या सम्बन्धवाचक शब्द बाद म आता है। यूरोप म दो नियम है— विभक्ति बाद म आयगी (Rama s) और सम्बन्धवाचक पहले (of Rama) इससे उन पर सस्कृत का प्रभाव दिखाई पडता है। विभक्ति उन्होंने सस्कृत से ली पर सम्बन्धवाचक अपना रखा।

३ सस्कृत का नियम विशेषण को मूल शब्द से पहले रखना है। ग्रीक लटिन आदि भाषाओ म पहले भी आता है बाद म भी।

४ सस्कृत या सम्बन्धी भाषाओ म क्रिया वाक्य के अन्त म आती है। यूरोपीय भाषाओ म क्रिया कम से पहले आती है। लटिन और ग्रीक म यही साधारण नियम है पर कहीं कहीं क्रिया वाक्य के अन्त म भी आती है। यहा वाक्य रचना पर सस्कृत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

ऊपर के तीनो वाक्य रचना के नियम अरबी म भी यूरोपीय भाषाओ वाले हैं। हो सकता है यह शमी भाषा का प्रभाव यूरोप पर पडा हो। फारसी लटिन रूसी सस्कृत हिन्दी म उपपद निश्चयवाचक विशेषण (a an the) का प्रयोग नहा है। ग्रीक इटालवी जमन फ्रेंच, इग्लिश आदि भाषाओ म अरबी भाषा की तरह (अल) जरूरी है।

हमारी द्रविड भाषाओ की प्रकृति भी साधारण भारतीय भाषाओ स मिलती

है यूरोपीय भाषाओं से नहीं। वहां भी क्रिया अंत में आती है। सम्बन्धसूचक शब्द भी तमिल बाद में रखती है। विशेषण क्रिया या शब्द के पहले आयेगा।

एक भारोपीय संस्कृति की भ्रान्ति

यूनान से लगे टर्की के भाग में प्राचीन हत्ती साम्राज्य पाया गया है जिसके देवता वही हैं जो ऋग्वेद के हैं और भाषा भी वही है। पश्चिमी इतिहासकारों का मत है कि आर्य अपनी विजय यात्रा में पहले एशिया माइनर (टर्की) में आए और फिर पूरब की ओर बढ़े। वेद पुराणों पर हमारी खोज के अनुसार वैदिक जन अफगानिस्तान से पश्चिम की ओर उत्तर की ओर निकले और अपनी सभ्यता बाहर फैलाई।

आश्चर्य की बात है कि यूनान के आर्य विजेता अपने निकटवर्ती हत्तियों को अपने ग्रीक देवता नहीं दे पाए जबकि लातिन जनों ने अधिकतर ग्रीक देवी-देवताओं को अपना लिया चाहे उनके नाम कुछ बदल दिए हों।

इसी प्रकार जर्मन देवमण्डल— आग्नि थोर, वाल्डर, फिग आदि हमारे देवमण्डल से बिल्कुल अलग थलग है। यदि भारोपीय भाषा एक होती और एक आर्य जाति की होती तो ग्रीक लेटिन और जर्मन देवमण्डल हमारे देवमण्डल से भिन्न न होते। यह इन भाषाओं की स्वतन्त्रता और भिन्न सत्ता दिखलाता है।

अनेक बोलियाँ

जैसे आजकल कहा जाता है कि डेढ़ कोस पर बोली बदल जाती है, उसी प्रकार पुरातन काल में भी बोलियां विभिन्न थीं। अनेक जन बस हुए थे अनेक जन जाति थीं। उनकी अपनी बोलियां थीं। कुछ जन मिले, एक संघ बना, उनकी बोली मिलकर एक हुई। भरत और पुरु जन मिलकर कुरु बने। कुरु पांचाल एक साथ कहे गए। इतिहास में ऐसे अनेक संघ मिलते हैं। कृष्ण के अंधक और वृष्णि संघ से लेकर बौद्ध काल के वज्जि संघ तक।

सरस्वती के तटवासी जनों की वैदिक बोली थी जिसमें आज भी ऋग्वेद पाया जाता है। ऋग्वेद की अनेक शाखाएँ थीं का अर्थ है अनेक बोलियां में विद्यमान था। सरस्वती तीर के ऋषियों के सुरक्षित रखने के कारण केवल वैदिक बोली में बचा। वेदव्यास के समय में सरस्वती सूख चुकी थी वहां से विद्वान् उत्तर में शाकल नगर में चले गए थे। सो शाकल शाखा बची कहा जाता है।

मेरठ अम्बाला की बोली अलग था। भरत, कुरु, पांचाल के प्रबल होने पर उसने वैदिक पर प्रभाव डाला और इस मिश्रण को परिष्कृत करके विद्वानों ने संस्कृत भाषा बनाई जो एक कृत्रिम भाषा थी, साहित्यिक भाषा थी। साम्राज्यों का निर्माण व्यापार में अग्रणी होकर नगर और फैलना, जनसंख्या अधिक होने पर

इधर उधर फैलना— इन सब कारणों से वह अंतजनजाति भाषा बनी। इसका मतलब यह नहीं कि अन्य बोलियाँ समाप्त हो गइं। विभिन्न जनजातियों में वे भी विकसित होकर भाषा का रूप ले रही थीं। संस्कृत भाषा से उन्हें प्रोत्साहन ही मिला। यहाँ तक कि कुरु प्रदेश की जो बोली थी वह संस्कृत के रूप में मिश्रित होने पर भी पनपती रही। साम्राज्यों के विघटन के बाद जब संस्कृत का वर्चस्व घटा तब विभिन्न बोलियाँ फिर सामने आइं।

मुसलमान आक्रमणकारी तुर्क और अफगान थे। वे फारसी, अरबी कम समझते थे। उनकी भाषा इतनी विकसित नहीं थी। इसलिए उन्होंने मेरठ दिल्ली की खड़ी बोली को अपनाया। वह बोली मध्य देश की अन्य बोलियों के साथ मिलकर हिन्दी बनकर प्रतिष्ठित हो गई। शेरशाह ने हिंदी को अपने राज्य की भाषा बनाया। अकबर को पढ़ा लिखा नहीं कहा गया शायद फारसी न जानने की वजह से। वैसे खड़ी बोली से उसे प्रेम था।

अंग्रेज जब भारत में आए तो उनके अनेक विद्वानों ने लिखा कि कलकत्ते से कावेरी तक हिंदुस्तानी जानना जरूरी थी और यह विश्व की सबसे अधिक प्रचलित भाषा थी।

हिंदी शब्द कैसे बना ?

इस बारे में प्रचलित धारणा यह है कि ईरान के लोग सिन्धु (या सिंध) को हिंद कहते थे और वहाँ के रहने वालों को हिंदू, हिंदुई या हिन्दी कहने लगे। स को बोलने में उन्हें कठिनाई होती होगी उसे वह ह बोलते थे।

परंतु यह दलील बिल्कुल थोथी है। फारसी में सैकड़ों शब्द स से शुरू होने वाले हैं जैसे— सादगी, सामान, सजा, सिपाही, सरकार, सुरमा आदि। इसके अतिरिक्त क्रिया की धातु भी अनेक स से शुरू होती हैं। फिर अरबी से सैकड़ों शब्द फारसी में स से शुरू होने वाले आए (सराय, सफर, सिफर, साहिल आदि) जो स में ही बोले गए ह से नहीं।

इधर सर जार्ज ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा में ह वर्ण की अधिकता पर ध्यान दिया था। वह, शाह, शेख, श्वसुर, हिहुर, सालस, हानरों जैसे अनेक शब्द स से ह में बदले हैं। यही राजस्थानी भाषा में है। बंगला तथा असमिया में मिलता है। सिंधी में, लहन्दी में, मराठी की कुछ बोलियों में, गुजराती की उपभाषा में। स्वयं हिन्दी में अनेक स्थानों पर स की जगह ह आता है। दस दहम् सौ। ताश के पत्ता में दहला। गिनती में छह पच की जगह आया है। ग्यारह से अठारह तक ह का प्रयोग है। इकहत्तर से आगे सत्तर की जगह हत्तर हो गया। ब्रज भाषा और अवधी में स्नान का हनान या नहान, पाषाण का पाहन, पुष्प का पुहुप, कृष्ण का कान्ह, केसरी का केहरी।

और यह प्रवृत्ति सस्कृत म भी पाई जा रही थी। मूल रूप श्रद् (श्रद्धा) से हृद या हृदय बना है। अस्मद् से अहम् बना है।

इसस सिद्ध होता है कि हिन्द और हिन्दी शब्द का निर्माण भारत म ही हुआ था।

जसे यूरोप की भाषाओं की तुलना म ह का महत्त्व सस्कृत म अधिक है वस ही वदिक की तुलना म सस्कृत म, सस्कृत की तुलना म हिन्दी म साधु हिन्दी की तुलना म जनपदीय बोलियों म और इन बोलियों म भी पछाह की तुलना म पूरब म 'ह' का प्राधान्य है।

सस्कृत बोलचाल की भाषा थी या केवल पडिताऊ?

सस्कृत म 'इष' धातु है जिसके रूपों म (इच्छति आदि म) ष का स्थान छ ने लता है। यह आज भी हम अनेक भाषाओं म देखते ह। हिन्दी म षष का छह बना। अन्य भाषाओं म छे आठे, छ इसी प्रवृत्ति की देन है। और यह आज की नहीं, ऋग्वेद जितनी पुरानी है। यहाँ अनुमान करना पड़ता है कि कोई जनजाति ष का उच्चारण करती थी दूसरी नहीं कर पाती थी और उसे छ करके बोलती थी।

सस्कृत म इच्छति पृच्छति अहम् आदि रूप ध्यान का खीचते हैं कि सस्कृत कितनी ही परिष्कृत की गई फिर भी बोलचाल की भाषा ने उस पर प्रभाव डाला और उसे साधारण जन की बोली बनाया केवल विशिष्ट पढ़े लिखो की नहीं।

वैदिक ऋचाएँ कहा रची गई?

यदि ऋचाएँ बाहर रची गई तो हम देखना है कि कौनसा क्षत्र है जो ष को छ म बदल देता है? यदि बाहर यह नहीं पाया जाता, तो भारत भूमि म किस भाग म है?

अवधी म लोग द्वार आने पर रामजीव को 'छतजी' कहते है। यही मरठ के आसपास कहा जाता है। लच्छमी या रूप लछमी है। लक्ष्मण का लछिमन प्रसिद्ध हैं। वत्स को बच्छ मत्स्य का मच्छ मछरी या मछली।

सस्कृत म सन्धि के अनेक नियम वतमान बोलियो के इस रूप पर आधारित है जस—उच्छ्वास उच्छ्वास उच्छिष्ट आदि।

भाषा और इतिहास

हमारे पुराने इतिहास म आरम्भ म कोसल रूप शक्तिशाली रहा इक्ष्वाकु वश के राज्यकाल म। उधर पश्चिम म गंगा के बाद भरत गण और कुरु गण हुए। इक्ष्वाकु का कोसल था—आज की अवधी का प्रदेश, पुरानी प्राकृत का प्रदेश जिसम निवासी बोली जानेवाली अवधी हैं सस्कृत हिन्दी आदि सब भाषाएँ निकला।

(ii) पाणिनि धर्मसूत्रों के समय तक लोकप्रिय नहीं हुआ था। (यह भी गलत है।)

(iii) वे पाणिनि की अष्टाध्यायी के बजाय किसी और व्याकरण के अनुसार चलते हैं।

(iv) धर्मसूत्र पाणिनि के स्थान से बहुत दूर के स्थानों पर लिखे गए हैं और वह इन स्थानों के शब्दों से परिचित नहीं था।

(v) स्थानीय बोलियों का अत्यधिक प्रभाव है।

(vi) धर्मसूत्रों के समय संस्कृत बोलचाल की भाषा थी और ऐसी भाषा को नियमों में बाँधकर रखना असम्भव है।

मेरे विचार से इन सब वाद विवाद का निष्कर्ष मेरे इस मत के समर्थन में जाता है कि संस्कृत पुरानी भाषा नहीं है, उसका नाम ही उसे बनाई हुई, ठीक की गई भाषा बताता है। उससे पहले भी भारत में अनेक जनजातियाँ और उनकी बोली मौजूद थी। किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार संस्कृत से पहले भी कोई पुरानी प्राकृत भाषा थी उसी से प्राकृत हिन्दी, आदि भाषाएँ निकलीं संस्कृत से नहीं। वेद कई शाखाओं में पाया जाता था आज केवल शाकल का ऋग्वेद मिलता है। शाकल के आस पास रहने वाली जनजाति की बोली में यह पाया जाता है अन्य बोलियों में नहीं। इसी बोली को तथा अन्य बोलियों का सुसंस्कृत करके तथाकथित संस्कृत भाषा बनी जो हमेशा पण्डित वर्ग की और साहित्यिक भाषा रही और जिसने भारत को एक समान भाषा दी।

धर्मसूत्र धर्म का बखान हैं जो जनता अपनी दिन प्रतिदिन की बोली में सोचती है पूजती है किसी बनाई गई भाषा में नहीं। इसी कारण दोनों में भिन्नता है।

ये सब बोलियाँ बोलने वाली जनजातियाँ भारत में मिश्रित होती रहीं और इनके शब्द एक आम भाषा संस्कृत या हिन्दी में लिए जाते रहे। इसी कारण हमारी भाषाओं में एक एक वस्तु को बताने वाले अनेक शब्द हैं। जितने पर्याय हमारी भाषा में हैं संसार की किसी भाषा में नहीं।

नए पुराण का खंडन मंडन

पुराने पुराण को तो कपोल कल्पित माना जाने लगा और नए विद्वानों ने अपना पुराण गढ़ा। उन्होंने ऐतिहासिक प्रक्रिया या विकासवादी प्रक्रिया को उलट दिया। डा० सुनीति कुमार चटर्जी लिखते हैं —

आर्य जन भारोपीय भाषाभाषी आर्य यायावर जनों के ही अंग थे जिन्होंने कम से कम ईसा से ३००० वर्ष पूर्व अपनी विशिष्ट संस्कृति का निर्माण कर लिया था। किन्हीं कारणों से जिनका हमें पता नहीं है मूल भारोपीय भाषी जनों का विविध उपभाषिक समुदायों (डाइलेक्ट ग्रुप्स) में विघटन हो गया और वे नए

बोलियों के ऊपर किसी सार्वजनिक साहित्यिक अथवा सभ्य भाषा का विकास कर लिया हो। संस्कृत भारत में इसी प्रकार विकसित हुई है। बाहर के अन्य देशों पर वह प्रभाव अपने विकास के उपरान्त ही डाल सकती है। स्पष्ट है कि इसके जन्म और विकास के बाद इसको बोलने वाली जनजातियाँ भारत से बाहर गई। पारसी, यूनानी, शक, हूण आदि भी भारत में हमलावर बनकर आए। क्या नहीं उनकी भाषा हमारी भाषा बन गई?

असल में मूल जन यायावर कबीलों के रूप में नहीं निखर थे। इस भूभाग पर अनेक यायावरी कबीलों ने इकट्ठे होने पर जहाँ उनके भोजन की समस्या स्थान-स्थान पर रहकर ही हल होने लगी थी, उनकी बोलियों में मिश्रण हुआ था शब्द बने थे कृषि के नए शब्द बने थे व्यापार ने अंकों को उत्पन्न किया था। साथ ही मान्यताओं का देव देवियों का सम्मिश्रण हुआ था धर्म बना दर्शन उपजा, संस्कृति आई सभ्यता बढ़ी। इस देश में पहुँचने के उपरान्त भी उस भूभाग ने जब अन्य भागों में पग तभी उन्होंने अपनी भाषा अपनी संस्कृति का प्रसार किया। सोचने की बात है— भारोपीय देव शास्त्र का बीज भारत में क्यों अंकुरित हुआ और पश्चिमी भारोपीय देव शास्त्र क्यों ह्रासमुख दिखाई देता है?

दूसरे आदिम भारोपीय साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप भारत में क्यों दिखाई देता है?

अन्त में संस्कृत भाषा सबसे अधिक समृद्ध और समर्थ अपनी शेष बहनों से है जबकि उसे बहुत दूर से हजारों वर्षों तक भटकते भटकते अनेक जनजातियों और बोलियों में लड़ते भारत में स्थान मिला। उसे तो सबसे अधिक विकृत हो जाना चाहिए था।

आजकल नई खोजों ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारोपीय भाषाओं का द्रविड भाषाओं से बहुत सम्बन्ध है। इसमें अनेक शब्द ऐसे हैं जो द्रविड मूल के हैं। फिर सिद्धान्त पलटे। यह माना जाने लगा कि द्रविड भी उसी अंचल से जहाँ से आर्य आए थे, आर्यों से कुछ पहले भारत में आए। यूरोपियनों को तो अपना भारत में आना जायज करना था।

हमारे लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अपने मूल निवास में आर्य और द्रविड दोनों ही जन लगभग एक साथ और लम्बे समय से रहते आए थे। पशुचारण और अर्ध-यायावर अवस्था में जिस गतिशीलता की सम्भावना रहती है उसमें यह कहना कठिन है कि कैसे ये दोनों जन एक दूसरे से कतराते या अपनी भाषाओं को अलग बनाए रहे। तो भी ऐसा नहीं। भारतीय भाषिक उप स्तर की खोज करते हुए जिन भाषिक तथ्यों का उद्घाटन होता है वे ये हैं —

१ भारोपीय और द्रविड भाषाओं में तात्त्विक भेद नहीं हैं।

२ इन भाषाओं का विकास भारतीय परिवेश में हुआ था।

३ एक निश्चित विकास के बाद अर्थात् आहार अन्वेषण और आदिम कृषि तथा पशुचारण की अवस्था को पार करके और स्थायी कृषि-कर्म के बाद द्रविड़ भाषा भाषी व्यापार के लिए विन्ध्य के दक्षिण की ओर बढ़ चले और विन्ध्य से उत्तर और दक्षिण में दो पृथक् भाषाओं का विकास होने लगा।

४ भारोपीय अथवा आर्यभाषी जनों का विकास लगभग उन्हीं जनजातियों के समन्वय से हुआ था जिनसे द्रविडभाषी जनों का और आरम्भ से ही इस जन समाज में कोई एक वंशीय तत्त्व नहीं था अपितु इसमें अनेक जनजातियों का रक्त मिला हुआ था।

५ तत्पश्चात् पूंजी निर्माण के साथ व्यापार वाणिज्य का भी आरम्भ हुआ और सर्वप्रथम भारत के पश्चिमी अंचल से कुछ जनों का बहिर्गमन हुआ जिनकी शाखाएँ भारोपीय ही नहीं सामी अंचल में भी फैलीं। विस्थापित जनों ने अपनी आबादी के प्रभावकारी होने पर एक स्वतन्त्र और स्वविशिष्ट संस्कृति का निर्माण किया और वे अपनी भाषा तथा जातीय गुणों को अधिक बनाए रख सके। जहां उनकी आबादी इतनी प्रधान नहीं थी वहां वे स्थानीय जनों और भाषाओं से अपनी पृथकता अधिक समय तक नहीं बनाए रह सके और कुछ समय तक अपनी निजता की रक्षा करते रहने के बाद स्थानीय रंग में रंग कर एकसात् हो गए।[1]

उत्तर भारतीय और द्रविड बोलियों में कुछ शब्द हैं जिनके साथ को घटक जुड़ा हुआ है और जो खान से अपना मूल साहचर्य प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए —

उत्तर भारतीय बोलियां	द्रविड बोलियां
कोदा=पीपल पाकड या बरगद का फल कोदो=एक अविकसित अन्न गाना। गेहूं। गोधूम फा० गन्दुम काना=कटहल के भीतर का खाद्य सार भाग गूदा=फल का सार मकोय एक झाड़ी का फल मक्का (मकई)—मकरा कोइना महुए का फल गाना—फल का रस कदली (केला?)—केला कत कपित्थ दाना—दूध का कदम्ब कोहड़ा सं० कुष्माण्ड।	त० कोदुम मल० कोलम्पु कन्न० गोधि गेहू त० कोZल मल० काणम् कन्न० हुरुZि=कुलथी त० वार्कोदुण=जव त० कायत्तानियम् —मयूर त० कदले कल० निलकदल कन्न० नेलकडले=मूंगफली त० कटल मल० कटल मल० कटल कन्न० कवलकालु चना त० कोय्यापपम्—अमरूद त० वेन्दरि-क्काय =ककड़ी त० कोटट=कटहल त० काय=फल शाक।

द्रविड में काय पूरे वर्ग के साथ जुड़ा हुआ है और जिनसे यह जुड़ा हुआ है

1 आर्य-द्रविड़ भाषाओं की मूलभूत एकता पृष्ठ 31-37

ये सभी भारतीय परिवेश में पैदा होते हैं और इनका सम्बन्ध आहार-अन्वेषण की अवस्था से जुड़ता है। खाद्य को वाचक मूलतः उसी रूप का प्रतिनिधित्व करता है जिससे सं० खाद और सम्भवतः खुद 'रस लेना, मजा लेना' आदि व्युत्पन्न हैं। इनमें गोधूम को गन्ध के साथ मिलाकर देखने पर लगता है कि मूल शब्द गान्धूम् ही था जिससे गोधूम बना है। संस्कृतज्ञों ने देवों के भोजन में गेहूँ न पाने पर गोधूम की व्युत्पत्ति की है कि यह जंगली पौधा था जिसका धुआँ देकर गौ की देह के कीड़े मारे जाते थे इसलिए यह गोधूम कहलाता था। फारसी में गन्दुम शब्द की उपस्थिति इस बात का सूचक है कि इसका निगमन भारत से हुआ है, कारण भारतीय परिवेश में यह शब्द खाद्य वस्तुओं के एक पूरे वर्ग में से एक होने के कारण अपना अर्थ स्पष्ट करता है पर संस्कृतीकृत होने और उसमें पुनः फारसी में पहुँचने पर यह अपना अर्थ खो देता है। यूरोपीय देशों में इसके लिए प्रयुक्त शब्दों का अर्थ है सफेद जिससे प्रकट होता है कि यह अन्न वहाँ के परिवेश में बाहर से आयातित हुआ था और इसका अन्य गुण इसका रंग माना गया था। ये सभी बातें यह सिद्ध करती हैं कि जिस परिवेश में ये जन अपनी आदिम अवस्था में रहते थे वह भारत से बाहर न होकर भारत में ही था।

इसकी पुष्टि स्वयं भारतीय साहित्य से भी होती है। न केवल भारतीय आर्यों को अपने बाहर से आने के विषय में कुछ भी पता नहीं अपितु वे स्पष्ट रूप से इस भूमि को ही सदा से अपना मानते आए हैं जबकि दूसरे अन्यजनों में सगोत्र जनों को अपने विदेशी उद्भव की धारणा याद बनी हुई है। जहाँ आर्य जन अपनी विशिष्ट संस्कृति के कारण शेष जनों को अपने से हेठा समझते रहे हैं और उनके बीच जाने पर धर्मच्युत होने के अन्देशा पालते हैं वहीं भी वे यह कहते दिखाई देते हैं कि तीर्थ यात्रा के लिए अनार्य क्षेत्रों में जाया जा सकता है।[1] जिन जगहों के पहले गए न हों वे तीर्थ-स्थान कम हो सकते हैं। बाहर जाकर उनके पूर्वजों के विभिन्न दल अपने धर्म, भाषा, संस्कृति को भूल गए, यह पुराण, महाकाव्य आदि के विभिन्न स्थानों पर वर्णित है।

भाषा का विकास अधिक सरल अनेकार्थी शब्दों से अधिक जटिल अवस्था की ओर हुआ है। यह जटिलता मूल व्यंजनों के अमूर्तीकरण, अनेक मूल शब्दों के संयोजन से नए शब्द गढ़ने, शब्दों को वाक्यों में नियोजित करने आदि के कारण आई है। मूल ध्वनियों की अनेकार्थता एकाधिक वस्तुओं और क्रियाओं से उत्पन्न होने वाली समान ध्वनियों के कारण भी आई है। अतः भाषा की प्राचीनतर अवस्थाओं में अनेकार्थी शब्द अधिक रहे हैं।

एक ही वस्तु की विविध क्रियाओं या गतियों के कारण उससे भिन्न भिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न हो सकती हैं और ऐसी अवस्था में उस एक ही वस्तु के लिए

1 देखें, धर्मशास्त्र का इतिहास

एकाधिक शब्दों का भी प्रयोग हो सकता है। अत भाषा की प्राचीनतर अवस्थाओं में पर्यायों की अधिक संख्या देखने को मिलेगी। यह तथ्य उन विद्वानों के सरनी कृत विश्लेषणों का निषेध करता है जो यह मान लेते हैं कि अमुक भाषा में अमुक वस्तु के लिए अमुक शब्द प्रचलित था अत उसमें पाया जाने वाला दूसरा शब्द किसी अन्य भाषा का हो सकता है। वह पुन इस रहस्य को भी उद्घाटित करता है कि भारत की प्राचीनतर कृतियों में और द्रविड भाषाओं में पर्यायों और अनावश्यक शब्दों की इतनी बहुलता क्यों है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आर्य और द्रविड भाषाएँ परस्पर भिन्न कुलों की भाषाएँ नहीं है अपितु वे एक ही मूल से निकली है। निश्चय ही उनका सम्बन्ध अधिक प्राचीन अवस्थाओं पर जाकर जुड़ता है न कि ऊपरी स्तर पर।

पर्याय शब्दों का बाहुल्य

मूलजन एक नहीं थे, अपितु कई कबीलों के मिलने से बने थे। क्या उन्होंने अपनी बोलियों का परित्याग करके एक ही बोली को अपना लिया? पर यह एक असम्भव सी बात है। कारण कुछ थोड़े से जनों की भाषा शेष समाज पर तब आरोपित हो सकती है पर होता नहीं जब राजनीतिक या धार्मिक प्रभुत्व के कारण वह वर्ग विशिष्ट हैसियत रखता होता है और अपनी भाषा को शेष समाज पर लादने की अनुकूल स्थिति में होता है। कबीलाई स्तर पर इस प्रकार का विशिष्ट प्रभुत्व किसी एक का होना ही नहीं। अत यदि जनों का संकरण होता है तो उनकी बोलियों का भी संकरण होता है और इस संकरण में सभी बोलियों को अपना उचित हिस्सा मिलता है। ऐसी अवस्था में कोई भी बोली ऐसी नहीं रहती जिसका सम्पूर्ण अंश जीवित रहे। सब के कुछ अंशों का क्षय हो जाता है। इसके बावजूद अनेक बोलियों के आये हुए बहुत से शब्द के अनेकानेक पर्याय समानान्तर प्रचलित रहते हैं और इसी प्रकार सभी बोलियों में पर्यायवाची शब्दों की वृद्धि हो जाती है। इसी कारण हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में पर्याय शब्दों की बाढ है क्योंकि यहाँ बीसियों जनजातियों का सम्मिश्रण हुआ है।

संस्कृत की आप्तता जहाँ संदिग्ध बनती है वहाँ भारतीय बोलियों पर दृष्टिपात करना उचित होगा। हम इस तथ्य को व्यावहारिक विश्लेषणों में भी स्वीकार करना चाहिए कि संस्कृत एक कृत्रिम भाषा है जिसका जन्म तत्कालीन भारतीय बोलियों से हुआ था। अत यह न तो समस्त शब्द सम्पदा का उद्घाटन कर सकती है न ही समस्त प्रामाणिक रूपों का, क्योंकि प्रव्रजन करने वाले जन केवल सुपठित और साक्षर वर्ग के नहीं थे अपितु उनमें अशिक्षित व्यक्तियों का अधिक प्रभावशाली अनुपात रहा होगा जिनकी बोली संस्कृत के निकट थी पर तद्रूप नहीं। साथ ही इस प्रव्रजन में एक अच्छा बड़े भी व्यक्ति सम्मिलित रहे हो सकते हैं

जिनकी बोली संस्कृत या उसकी आधारभूत बालियों से अधिक दूरी रखती थी।

'संस्कृत यदि प्राचीनतर रूपों का शत प्रतिशत प्रतिनिधित्व करने में अक्षम है तो सम्भव है भारतीय बोलियाँ हमारे लिए संस्कृत से भी अधिक विश्वसनीय हो सकें। ऐसी स्थिति में तुलनात्मक भाषाविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण कार्य हो जाता है कि प्राचीन बालियों का पुनर्सृजन करे।'[1]

संस्कृत में बोलियों से ली गई धातुएँ

संस्कृत में कुल मिलाकर लगभग दो हजार धातुएँ हैं। बेनफी के मतानुसार यह संख्या १७०० है। वास्तव में कुछ धातुएँ एक से अधिक गणों में शामिल की गई हैं और उन्हें निकाल देने के बाद मूल संख्या में कुछ कमी की जा जाना स्वाभाविक है। इस समूह में भी धातुओं में भी बहुत धातुएँ ऐसी हैं जिनका संस्कृत में कभी प्रयोग नहीं हुआ है। ग्जरेन ने ऐसी धातुओं की संख्या ८९२ निर्धारित की है जिनकी पुष्टि संस्कृत साहित्य के आधार पर होती है। और मैक्समूलर का मत है कि ग्जरेन की इस संख्या में थोड़ा-सा फेर सम्भव है पर पूरी संख्या को किसी भी दशा में १००० से ऊपर नहीं ले जाया जा सकता। जिन धातुओं की पुष्टि संस्कृत साहित्य के आधार पर नहीं होती उनके विषय में बेनफी ने बहुत पहले ही यह मत व्यक्त किया था कि इनमें से अनेक तत्कालीन भारतीय बोलियों में से ली गई हो सकती हैं।

यदि हम पाणिनि के धातुपाठ पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि बहुत सी धातुएँ एक ही धातु का रूपान्तर प्रस्तुत करती हैं। संस्कृत में यथासम्भव परि*निष्ठित रूपों को ही अधिक महत्त्व दिया जाता था। अतः इस प्रकार के शिथिल* रूपों की पुष्टि की आशा संस्कृत में नहीं की जा सकती पर ये रूप अपने संस्कृत प्रतिरूपों के लौकिक रूपान्तर हो सकते हैं इसकी बहुत अधिक सम्भावना दिखाई देती है। पतंजलि का यह कथन कि 'भूयांसो अपशब्दा अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः। तद्यथा। गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्येवमादयो अपभ्रंशाः।' काफी रोचक है। हम इसी के सादृश्य पर कह सकते हैं अनेकशः अपधातुएँ हैं और बहुत थोड़ी सी धातुओं के अनेक अपभ्रंश रूप हैं, जैसे गम्, ग्य, ज्य आदि।

कात्यायन ने जब इस बात का उल्लेख किया था कि पाणिनि के समय के अनेक शब्द आजकल प्रयोग में नहीं आते तो उन्होंने पाणिनि के समय से अपने समय तक की भाषा के अन्तर के माध्यम से अन्तर्वर्ती काल की दीर्घता की तो कुछ सूचना दी थी पर शायद उन्होंने इस तथ्य को अपनी दृष्टि से ओझल कर दिया था कि पाणिनि द्वारा गिनाए गए अनेक धातु रूप लौकिक बोलियों के ही

1 आर्य द्रविड़ भाषाओं की मूलभूत एकता पृष्ठ 79

सकते है।

संस्कृत धातुपाठ में जिन धातुओं के विषय में यह दोषारोपण किया जाता है कि उनकी पुष्टि संस्कृत वाङ्मय से नहीं होती उनमें से बहुत-सी आज तक भारतीय बोलियों में प्राप्त शब्दों में सुरक्षित हैं और बहुत से इस दीर्घ अंतराल में अप्रयोग के कारण कालकवलित हो गई लगती हैं। इस दृष्टि से निम्न धातुओं और उनकी पुष्टि करने वाले देशज शब्दों पर दृष्टिपात किया जा सकता है —

बघि गत्याक्षेपे	बग्घी, बग्घी = घोड़ा गाड़ी
मगि वगि गत्यर्था	बहकना = मार्गच्युत होना
	मग, मग्ग, माग
लछ लाछि लक्षण	लछमी लछिमी लछमीना
खज मन्थ	खजबिलाइल खजबज, खबजा
अठि गतौ	अठिनाइल इठलाना
हेठ विबाधायाम्	हठ, हड्डा, हाडा हाडी
एठ च	एठल, ऐंठन ऐंठ
कुडि दाहे	कुढल, कुढन, कड़ाह कड़ाही
घडि विभाजने	घडी बढ़ई
हड हाड अनादरे	हेठ हेठी बा० हडबाग, भा० हरवालाई
बाड आप्लाव्ये	बाढ, बाढि
रट परिभाषण	रटना रटन
वट वेष्टन	बटुआ
क्टि घिट त्रास	घटका, घुटका
जट भट सघाते	भटका, भटहा
पिट शब्दसघातयो	पीटना, पिटना
मडि भूषायाम्	मडावल, मडाई मिरहावल
लुटि स्तेय	लूट, लुटेरा
कड्ड कार्कश्य	कडा, कडाई
मुड ताडन	ताडना, टूटना
लवि शब्द	लवारी, लबार लबरिया लबलहव, लहबरिया
धूप सताप	धूप
चमु, जमु छमु भमु अदने	जेवना जेवनार, जवनहर जेंवल
मल मल्ल धारण	माला, मलमल मलाई
रवृ प्लवगतौ	रवठल, रवा (नदी का नाम)

हय गतौ	हउहारि, हाऊ हाऊ हय = घोड़ा
कूल आवरण	कुलही, कुलहा
वल, वेरन चलने	वलन, बेलावल
तक्षू त्वक्षू तनूकरण	ताछन चाछल, चासल
रिस हिंसायाम्	रीस रीसी रिस रिसिआइल रिसिहा
लस श्लेषणक्रीडनयो	लासा लसलसा लसाह लसरा, लसारा

पुरानी बोलियों से शब्द

संस्कृत ने देशी भाषाओं से बहुत से शब्द भी अपनाए हैं। इनकी एक बहुत लम्बी और उपयोगी सूची टी० बरो ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत लैंग्वेज' १९५५ के अध्याय ८ में दी है। उसमें से कुछ उद्धृत किए जा रहे हैं—

आग्नेय कुल की भाषाओं से— अलाबु (लौका) उन्दुरु (चूहा) कदली (केला) कर्पास (कपास) जम्बाल (कीचड़) जेमति (जीमना) ताम्बूल (पान) मरिच लागल (हल) सर्षप (सरसों) आदि।

द्रविड कुल से— अगुरु, अनल, अर्क, अलस आरभट (किसानी) उञ्छ (पाछना) उलप (भाड़ी), उलूखल, एड (भेड़) कज्जल, कटु कठिन करीर कलुष काक काच कानन कुटि कुटिल, कुट्ट (कूटना), कुण्ड, कुण्डल कुद्दाल कुन्तल, कुवलय (कमल) केतक कोटर कोण, कोरक खल गण्ड घुण घूक चिक्कण (चिकना) चतुर चन्दन चपेटा दुम्ब चणा ताडक या तालक (ताला) तामरस (कमल) ताल, तूल दण्ड नक्र निविड, नीर पण पण्डित पल्ली पालि पिटक पिण्ड पुट बक बल बिडाल बिल, बिल्व मयूर, मल्लिका, मषि, महिला माला मीन, मुकुट मुकुल मुक्ता मुरज लाला, वलय वल्ली शकल, शठ शव शूप हेरम्ब (भैंस) इत्यादि।

एक ओर विद्वान् प्रिलुस्की ने सिद्ध किया है कि संस्कृत के कपोल नारिकेल भेक जया कपोल हलाहल दाडिम कदम्ब शिम्ब निम्ब जम्बु गुड, आदि शब्द भी मुण्डा से आए हैं।

पहले प्रकरण में हम बता आए हैं कि आर्यों को यहाँ के आदिवासियों की भाषा से अनेक तत्त्व अपनाने पड़े होंगे। अब इस प्रश्न पर ठीक ढंग से विचार किया जा सकेगा कि क्या हिंदी के जो शब्द— जैसे आक (मदार) काजल, कड़ुआ केवड़ा घुन, डंडा जाँघ, नीम आदि— संस्कृत से सिद्ध किए जा सकते हैं वे अनार्य नहीं रहे ? क्या इन्हें देशी नहीं कहा जायगा ?

प्राकृत ने भी अपने समय में अट्टक (हि० अटकना), कोरा (हि० कोरा), खिल्ला (हि० खीला) गोड्ड (हि० गोड) गाड्ड (हि० गाड़) ढुंढ (हि० ढूंढना) फिक्का (हि० फीका) लोट्ट (हि० लोटना) लुक्क (हि० लुकना) आदि बहुत से

शब्द अनार्य भाषाओं से लिए जो हिन्दी में आज भी चल रहे हैं। अपभ्रंश के इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। इस दिशा में अभी खोज करने की आवश्यकता है। हिन्दी ने सीधे तो बहुत ही कम शब्द अनार्य भाषाओं से अपनाए हैं, किन्तु मध्यकालीन आर्य भाषाओं के माध्यम से आई हुई एक बहुत बड़ी संख्या इसमें विद्यमान है।

हिन्दी में अनुकरणात्मक शब्द बनाने की प्रवृत्ति प्रमुख है, ये शब्द देशी कारीगरी के उत्कृष्ट नमूने और देशी सम्पत्ति का मुख्य भाग हैं उदाहरणतया—टें टें, काय काय चू चू, खुसर फुसर, भड़ भड़ बक बक ठक ठक फो फो डकार भनकार, फटकार, डगमग, जगमग, तड़ातड़ गड़बड़ झिलमिल ढुलमुल लचक धचक, ठसक भक धक्का टक्कर भूमना, बिदकना सटकना रटकना आदि आदि।

कई शब्द प्रतिध्वनि के रूप में गढ़ लिए गए हैं जैसे सामने पड़ोस या पास में पहले क्रमश आमने अड़ोस, और आस अथवा गोल रोटी मेल, कूप नंगा आदि के बाद क्रमश मटोल बोटी जोल, चाप धड़गा आदि।

कभी-कभी प्रतिध्वनित शब्द स्वतन्त्र अर्थसत्ता स्थापित कर लेते हैं जैसे उल्टा-सुलटा, टूड-मुड़ डौल डौल में सुलटा मुड़ और डौल।

विभिन्न भाषाएँ

पुरा प्राकृत या पक्षभाषा

आरम्भ में कुछ अनुकारी ध्वनि थी जिन्हें जनजातियों ने बोलना आरम्भ किया, उसी से आर्य द्रविड़ और समस्त भाषाओं का विकास हुआ। वे ही आदिम बोलियों की बीज रूप थी। कुछ उदाहरण लीजिए —

पद्— किसी मुलायम चीज के गिरने की ध्वनि (पत्ता पानी बूंद आदि)। इनके अलावा हजारों शब्द पत्तल, पतीली तमिल पत्तर (पानी निकालने का बर्तन) मलयालम पत्तम् (भाजन) संस्कृतीकृत पात्र पाती पात (स पंक्ति) बंधु (बंधा हुआ) त० पतम् (बन्धन) पताका, पतंग पान पद, पाद पथ, पतन बंध बात आदि सब भाषाओं में बने।

अर— पानी या हवा के बहने की हल्की आवाज। इसके बोलने के भेद हर कर मर झर आदि थे जिनसे हजारों शब्द सब भाषाओं में बन गए।

कच— कीचड़ में पाँव पड़ने से उत्पन्न आवाज हरी टहनी के टूटने या चाट की आवाज। कगारा कीचड़ कछार कछुआ आदि अनेक शब्द।

कर— रगड़ खाने या किसी चीज के फटने की आवाज।

कुर— पशु के गले से फूटने वाली आवाज या सूखी चीज सरकने की आवाज।— गुर्राना गुगना गुर, कुरकुरा।

गुट— पानी पीते समय गले से निकलने की आवाज, घूंट, गटगटा गु गुड़ी।

चट— चिपकी हुई चीजों की अलग होने की आवाज लकड़ियों के जलने की आवाज मुलायम चीज के गिरने की आवाज।

चप— किसी लसदार चीज से उभला या कोई चीज चिपकने पर अलग होने की आवाज जैसे चिपचिपा चिप्पी, चप्पन चपी, चूमना।

पच— पायली चीज जैसे मुह से एकाएक निकलने वाली आवाज। जैसे भग, पौ बकना बात।

पर— पक्षी पंख को फड़कने की आवाज।

प्राकृत सस्कृत से पहले बनी हुई (प्राक् + कृत) है। नमिसाधु ने काव्यालकार की टीका में प्राकृत को जनता का वह स्वाभाविक वचन व्यापार माना है जिसमे व्याकरण के नियमों की पाबन्दी नही होती। वाक्पतिराज ने गउडवहो में प्राकृत को समस्त भाषाओं का उद्गम तथा गन्तव्य स्थान माना है।

प्राकृत में संस्कृत के तत्सम शब्द बहुत कम हैं अधिकतर तद्भव और देशज शब्द हैं। प्राकृत बोली बहुत पहले से थी पर भाषा के रूप में बौद्ध और जैन काल में उभरी। पण्डिताऊ प्राकृत सबसे अधिक सातवाहन काल में फूली फली।

प्राकृत शब्द का प्रयोग जनभाषा के अर्थ में भी हुआ है— प्राकृतजनानां भाषा प्राकृतम्। संस्कृत का अर्थ है शुद्ध की हुई मंजी हुई भाषा। प्रश्न यह उठता है कि किसको शुद्ध किया गया किस भाषा को माजा गया? प्रकट है कि पाणिनि की संस्कृत से पहले कोई अटपटी सम्मिश्रित अनेकरूपा विद्वतिबहुला भाषा चली आती थी। उसी का संस्कार और स्थिरीकरण हुआ तो संस्कृत नाम पड़ा। साहित्य भाषा किसी लोक भाषा से ही विकसित रूप से बनती है। प्राकृत लोकभाषा थी संस्कृत देवभाषा बनी। वेद में अनेक प्रान्तिक और प्राकृत शब्द और प्रयोग मिलते हैं। पाणिनि ने भी अनेक जनभाषाओं का उल्लेख किया है।[1]

समीकरण का यह सिद्धान्त आर्य भाषा में तबसे देखा जा सकता है, जबसे वैदिक का सम्पर्क मध्य प्रदेश से हुआ। वेद में दूढभ (√दुदभ) उच्छ्रेक (√ उत्सेक) आदि रूप, एव संस्कृत में उज्झ (√उद्गत उज्जहाति), कुट्टयति (√कर्तति) कन्दति (√क्रन्दति) टलति (√टवलति) पठ (√प्रध), शुभ (√शुभ्र) कोट (√कोष्ठ) केवट (√ वैदिक कवर्त) सूर (√सूय) लाछन (√लक्ष्मण) पुत्तल (√पुत्रल) नापित (√स्नापित) पश्यति (√स्पश्यति स्पष्ट में यह रूप प्रकट है) तायु (√ स्तायु), नल्ल (√नन्व) फल (√स्फल), भट्ट (√ भृत) इत्यादि बहुत से शब्द मध्यदेशीय प्राकृत प्रवृत्ति के कारण बने हैं।[2]

1 डा हरदेव बाहरी भाषा का इतिहास हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड में पृष्ठ 141

2 हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड में डॉ हरदेव बाहरी का भाषा का इतिहास पृष्ठ 145

संस्कृत में प्राकृत के प्रभाव के फलस्वरूप कुछ निम्नलिखित शब्द हैं — समाय (√सयायम) स्ति (√स्थित) अट्ट (अघ) मट्ट (मघ)। (वही, पृष्ठ १७६)

वैदिक भाषा

वैदिक भाषा को आर्ष भाषा कहा जाता है। इसका दूसरा नाम छन्द की भाषा भी था। आर्ष भाषा शब्द अपने आप में बहुत सार्थक है। यह सामान्य जनों की भाषा न थी, ऋषियों की भाषा थी। यह उन लोगों की भाषा थी जो देवताओं के सम्पर्क में होने का दावा करते थे और मन्त्र बोलकर उनका आह्वान करते थे। यह छन्द की भाषा थी। यह कवियों की भाषा थी। इसके शब्द और इसका गायन औपचारिकताओं में किया जाता था। इन वैदिक कवियों का दावा था कि वे सामान्य बोलचाल की भाषा में सूक्त नहीं रचते। सूक्तों का भी विशेष उच्चारण से बोलना चाहिए नहीं तो आशीर्वाद के स्थान पर अनर्थ हो सकता है।

वैदिक भाषा का मौलिक स्वरूप क्या था इसकी भी हम जानकारी नहीं है। हो सकता है अलग अलग ऋषि कुल की अलग अलग बोली हो। आज सभी विशेषज्ञ मानते हैं कि वैदिक साहित्य आज हम जिस रूप में उपलब्ध है वह परवर्ती सम्पादन का परिणाम है। वेदों की अनेक शाखाओं का तात्पर्य भी इसी में है। आज हम ऋग्वेद की शाकल भाषा का पाठ मिलता है और अन्य शाखाओं का विवरण। अन्य शाखाएँ दूसरी बोलियों में इन्हीं मन्त्रों का अनुवाद होगा। जिस भाषा के सूक्त विन्यास न एकत्र किए वह आज की वैदिक भाषा कहलाती है।

ऋग्वेद की भाषा जनभाषा नहीं है वरन् यह कवियों की पण्डिताऊ की भाषा है। अथर्ववेद की भाषा उस समय की असली जनभाषा है। तभी यह भाषा और शैली में बिल्कुल अलग थलग है और कुछ विद्वान् उसे वेद नहीं मानते।

यही ऋग्वेद की मातृभाषा विद्वानों द्वारा परिष्कृत की जाकर संस्कृत कहलाने लगी।

मूल निवासियों की भाषा तथा बोलों का प्रभाव वेद की भाषा पर साफ दिखाई देता है। याजुष प्रातिशाख्य और शिक्षाकार न ष का ख उच्चारण माना है और य का ज।[1]

संस्कृत भाषा

ऊपर बताया है कि वैदिक काल में अनेकानेक बोलियाँ प्रचलित थीं और उनमें से एक (कुरु प्रदेश और सरस्वती के आस पास के प्रदेश की बोली) को आधार बनाकर वैदिक भाषा का निर्माण किया गया। आगे चलकर पाणिनि ने जिस बोली का आधार बनाकर अपने व्याकरण की रचना की वह वैदिक से भिन्न थी

1 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रथम भाग पृ० 198

और [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] और [illegible] और [illegible] था।

[illegible] किया [illegible] और [illegible] और आज [illegible] रहे हैं।

[illegible] किया गया है। [illegible] और [illegible] है। [illegible] है और [illegible] जाता है। [illegible] है और [illegible] और [illegible] किया जाता है। [illegible] जाता है।

[illegible] और [illegible] की प्रवृत्ति [illegible] था। उसका आधार [illegible] और [illegible] आधार [illegible] और [illegible] था और [illegible] का विकास [illegible] था जिसमें [illegible] प्रामाणिक और परिनिष्ठित बनाया गया था जिसकी [illegible] और जो [illegible] दिया था।

प्राकृत

भारतीय लक्षणकारों और वैयाकरणों के अनुसार प्राकृत का विकास संस्कृत से ही हुआ था। प्राकृत की परिभाषा करते हुए वे लिखते हैं कि संस्कृत ही प्रकृति है और उससे उत्पन्न होने के कारण इन भाषाओं का नाम प्राकृत पड़ा। यही आशय तत्सम और तद्भव के साथ भी जुड़ा हुआ है। पर प्राकृत शब्द की ये व्याख्याएँ बहुत बाद की हैं और इनसे केवल इतना ही प्रकट होता है कि इस काल तक संस्कृत को ही आप्त और प्राचीनतम भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। इन व्याख्याकारों में नमिसाधु ही अकेले हैं जो प्राकृत को प्राक्-कृत अर्थात् प्राचीन भाषा मानकर चलते हैं। जो भी हो हम प्राकृत के प्रभेदों में पुरा प्राकृत का भी उल्लेख पाते हैं जो प्राकृतों की प्राचीनता का पोषक है।

हम इससे पूर्व देख आए हैं कि वैदिक और संस्कृत दोनों ही कृत्रिम भाषाएँ थीं जिनका आविर्भाव और विकास एक विशिष्ट वर्ग के बीच हुआ था। वैदिक काल में भी आम जनता अपना साहित्य रचती रही होगी और जब तब ऐसे साहित्य को लिपिबद्ध भी किया गया होगा। वैदिक साहित्य का एक अंश ऐसा है जो किंवदंतियों पर आधारित लगता है और इसका स्रोत लौकिक कथाएँ रही प्रतीत होती हैं। पौराणिक साहित्य का कुछ अंश तो निश्चित रूप से बोलियों में रचित रहा हो सकता है। प्राकृत भाषाओं का वैदिक से कई दृष्टियों में साम्य भी इसकी पुष्टि करता है। अतः यह कहना समीचीन नहीं लगता कि प्राकृत का विकास संस्कृत से या वैदिक से हुआ अपितु वह उन बोलियों में से ही किसी एक का विकास था जिनको आधार मानकर वैदिक और संस्कृत का विकास हुआ था। यदि वैदिक काल की प्राकृतों का परवर्ती प्राकृतों से कोई स्पष्ट अलगाव रहा हो सकता है तो इस विशेष अर्थ में कि प्राचीन प्राकृत बोलियाँ सही अर्थ में जन बोलियों का प्रतिनिधित्व करती रही होंगी जबकि परवर्ती काल में वे साहित्यिक महत्त्वाकांक्षाओं से ग्रस्त और इसलिए विरूपित होती चली गई।

संस्कृत को प्रकृति मानना एक बौद्धिक खींचतान का परिणाम है। प्राकृत नाम से इतना स्पष्ट है कि यह नाम संस्कृत के विकास के बाद पड़ा था और इसका लक्ष्य संस्कृत का जन-बोलियों से भेद प्रकट करना था। प्राकृत या प्रकृति शब्द से इस शब्द की व्युत्पत्ति यह प्रकट करता है कि यह सामान्य या अशिक्षित जन समाज की भाषा थी जबकि संस्कृत विशिष्ट वर्ग की, विशिष्ट प्रयोजन से निर्मित भाषा।

अपभ्रंश

अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग पतंजलि द्वारा अपने महाभाष्य में किया गया है जहाँ वह एक ही शब्द के अनेकानेक अपभ्रंशों की बात करते हैं और यहाँ उनका अभिप्राय बोलियों में पाए जाने वाले रूपों से है। जब तक प्राकृत भाषाएँ साहित्यिक रचनाओं की भाषा बनी हुई थीं तब तक अपभ्रंश शब्द बोलियों

के लिए प्रयुक्त होता था। प्राकृत वैयाकरणों ने जब तब अपभ्रंश को विभाषाओं का उल्लेख किया है और यहां तो उनका स्पष्ट मत वानियों से है। परन्तु इस प्रकार के वर्गीकरण में भी उनकी दृष्टि वस्तुतः सुलझी हुई नहीं प्रतीत होती। इस विषय में पिशल लिखते हैं "मार्कण्डेय अपनी पुस्तक के (पन्ना २) एक उद्धरण में आभीरों की भाषा को विभाषाओं में गिनता है और साथ ही उसे अपभ्रंश भाषाओं की पंक्ति में भी गिनता है। उसने पांचाल, मालव, गौड, औड्र, कालिंग्य, कार्णाटक, द्राविड़, गुर्जर आदि छब्बीस प्रकार की भाषाओं का उल्लेख किया है। उसके अनुसार अपभ्रंश भाषाओं का तात्पर्य जनता की बोलियों से है भले ही वे आर्य या अनार्य व्युत्पत्ति की हों। इस मत के विरुद्ध रामतर्क वागीश यह लिखता है कि विभाषाओं को अपभ्रंश नाम से न कहना चाहिए विशेषकर उस दशा में जब कि ये नाटक आदि में काम में लाई जाएं। अपभ्रंश तो वे भाषाएं हैं जो जनता द्वारा वास्तव में बोली जाती रही होंगी।

जो भी हो अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध भाषा जनता की बोलचाल की भाषा नहीं रह जाती यह उस वर्गीकरण से भी स्पष्ट है जिसमें बीसियों बोलियों को तीन चार श्रेणियों में रख दिया गया है। उदाहरण के लिए मार्कण्डेय शाकारी, चाण्डाली, शाबरी, आभीरिकी आदि सत्ताइस प्रकार की अपभ्रंशों को केवल तीन वर्गों— नागर, व्राचड और उपनागर में समाहित कर देते हैं। अतः पुस्तकीय अपभ्रंश एक कृत्रिम भाषा है।

तमिल

तमिल पुराणों में लिखा है कि तमिल भाषा का निर्माण भगवान शिव के द्वारा किया गया था और उन्होंने ही अगस्त्य मुनि को तमिल व्याकरण का उपदेश दिया। पर यह तो किंवदन्ती मात्र है। इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अज्ञात काल से तमिल भाषा इस देश में प्रचलित है और यहां की वह मूल भाषा है।

तमिल के कुछ शब्द संस्कृत में भी मिलते हैं। बिशप एम० काल्डवेल ने ऐसे शब्दों की एक लम्बी सूची दी है जो उनके मतानुसार तमिल से संस्कृत में गए हैं। उनमें से कुछ शब्द ये हैं— अक्का, अत्त, अम्मा, कुटि, काट्ट, पट्टणम, नीर, मीन आदि।

तमिल में प्रायः शब्द के अंत में आ की ध्वनि आने पर आ का ए हो जाता है। जैसे माला का माल, गंगा का गंग, सोना का सोद आदि। प्रायः संस्कृत के आकारांत शब्दों का उच्चारण इस तरह होता है।

ऐसे संस्कृत शब्द जब तमिल में आते हैं जो तमिल की प्रकृति के विरुद्ध होते हैं या जिनका आरम्भ 'ल' या 'र' अक्षर से होता है जो तमिल में निषिद्ध माने जाते हैं तो इनके आगे स्वर लगा दिया जाता है जैसे रत्न, रामन, लक्ष्मण आदि शब्द तमिल में इरत्तिनम, इरामन, इलक्कुमणन आदि लिखे जाते हैं। क्या

क्या रावण भी इरवण (राजा) इसी प्रकार हो गया !

हिंदी में आधे स के पहले इ वाला आता है जैसे स्कूल स्कट स्टेशन स्थिर आदि। यह संस्कृत या पंजाबी और हरियाणवी में नहीं है। पंजाबी हरियाणवी में वह पूरा स बोला जाता है या स गायब हो जाता है जैसे सट्ल सकूल मकट, या फिर टस्सण आदि। क्या यह हिन्दी और तमिल का पूरा प्राकृत से निकलना दिखाता है!

लिपि की अपूर्णता, संधियों की विकटता और क्रिया के रूपों में अनियमितता के कारण तमिल भाषा सीखने में कठिन और पठन में दुसह हो जाती है। भाषा जाने बिना तमिल पुस्तक पढ़ना कठिन है। जिस तरह उर्दू या अंग्रेजी पढ़ने के लिए शब्द के साथ पूर्व परिचय की जरूरत है, उसी तरह तमिल पढ़ने के लिए भी भाषा की जानकारी और दीर्घ अभ्यास की आवश्यकता है। तमिल की ध्वनि भी हिंदी की ध्वनि से भिन्न है। तमिल शब्द का अर्थ मीठा है। तमिल लोग अपनी भाषा को बहुत मीठा मानते हैं पर द्वित्ताक्षरों की प्रचुरता के कारण अनभ्यस्त कानों को तमिल भाषा कठोर प्रतीत होता है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि तमिल और संस्कृत का सम्बन्ध अति प्राचीन काल से है और मध्यम-काल के साहित्य में भी संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों की राय है कि संस्कृत भी द्रविड भाषा से प्रभावित हुई है और वल्कि संस्कृत के बाद, भारतवर्ष में आने के बाद संस्कृत का जो रूप विकसित हुआ है उस पर द्रविड भाषा का प्रभाव है। उनका ख्याल है कि आर्य लोग जब भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत में आये तब वहां उनको एक विकसित संस्कृति मिली जो द्रविड संस्कृति थी। इसके सम्पर्क में आने के बाद ही संस्कृत भाषा का विकास हुआ। इसलिये उस पर द्रविड भाषाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। श्री पी टी श्रीनिवास अय्यंगार का कथन है कि प्राचीन काल से भारत के निवासियों के उच्चारण भी बदल गये और संस्कृत के व्याकरण में भी थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ। प्रोफेसर रीज डेविड का भी कथन है कि प्राचीन भारत में द्रविड भाषाओं ने वैदिक संस्कृति को बहुत प्रभावित किया जिसके कारण उसके उच्चारण शब्दावली ध्वनि बनावट मुहावरे आदि में बहुत अंतर आ गया। द्रविड भाषाओं का संस्कृत पर यह प्रभाव शताब्दियों तक जारी रहा। मास्टर गुन्ट ने लिखा है कि द्रविड भाषा की अनेक धातुओं को संस्कृत ने आत्मसात् कर लिया है।

अभी तक भाषाविज्ञानियों का ध्यान द्रविड और आर्यपरिवार की भाषाओं की तुलना की ओर नहीं गया है। आर्य परिवार की भाषाओं की तुलना द्रविड भाषाओं से करने से अनेक रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है। हम देखते हैं कि यद्यपि हिन्दी, मराठी बंगला, गुजराती आदि भाषाएँ संस्कृत से सम्बन्ध रखती हैं परन्तु उनकी वाक्य रचना व्याकरण, मुहावरे प्रयोग क्रिया के रूप आदि संस्कृत

की अपनी द्रविड़ भाषाओं से अधिक मिलती-जुलती है। तमिल भाषा के किसी वाक्य का शब्दानुवाद यदि हिन्दी में किया जाय तो वह पूरा पूरा शुद्ध उतरेगा। इससे पता होता है कि हिन्दी बंगला मराठी आदि की वाक्य रचना-पद्धति द्रविड़ भाषाओं से मिलती जुलती है। दोनों परिवारों की भाषाओं के विकास में किसी मूल भाषा का हाथ अवश्य रहा होगा जिससे आर्य और द्रविड़ दोनों परिवारों की भाषाओं पर उसका प्रभाव पड़ा होगा। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से यह बात साबित हो चुकी है कि आर्यों के भारतवर्ष में आने के पूर्व ही भारत में एक विकसित संस्कृति वर्तमान थी। अतएव यह बहुत संभव है कि उस संस्कृति के वाहकों ने बाद को आकर आर्यों की भाषा व संस्कृति को नई दिशा प्रदान की हो। डॉ. हार्नले ने यह विचार प्रकट किया है कि देश की वर्तमान भाषाओं की जननी गौड़ भाषा सारे भारतवर्ष में प्रचलित थी और वही भारतवर्ष की तमाम भाषाओं का आधार बनी। श्री पी. टी. श्रीनिवास अय्यंगार का विश्वास है कि उत्तर भारत की गौडीय कही जाने वाली आर्य-परिवार की भाषाएँ हिन्दी बंगला उड़िया आदि संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित परिवर्तित प्राचीन द्रविड़ या द्रविड़ जैसी किसी भाषा का ही रूप हैं।

तमिल का जो विकास हुआ है वह बौद्ध और जैन अनुयायियों के कारण हुआ। वे [illegible] में विश्वास करते थे और अपने आचार्यों की शिक्षा जनता को उनकी बोली में [illegible] में विस्तार करते थे। महावीर और बुद्ध के मरने के उपरान्त उन्होंने भारत में फैलना आरम्भ कर दिया था। दक्षिण में उनका इतना जल्दी फैलना इस बात का द्योतक है कि वहाँ उन्होंने अपने जैसे आदमी पाए और अपनी बोली से मिलती बोली पाई। उच्चारण उन्होंने वहीं रहकर सीख लिया। उन्होंने जैसे पालि अर्ध मागधी प्राकृत विकसित की वैसी प्रकार साहित्यिक तमिल भी। आरम्भिक क्लासिक सिलप्पदिकारम् और मणिमेखलई जैन और बौद्ध लेखकों के ग्रंथ थे। यहाँ तक कि कुरल भी जो तमिल संस्कृति का प्रतिनिधि माना जाता है एक जैन मिशन का नतीजा था। उसके लेखक तिरुवल्लुवर का नाम श्रीवल्लभ का रूपान्तर था।[1]

तमिल की संगम् कविता बहुत प्रसिद्ध है। पहला मूल संघ कुन्दकुन्द ने पहली शताब्दी ईसवी में कुडानूर में स्थापित किया था। यह नगर उस समय पाटलि—मगध राज्य की राजधानी का द्योतक—कहलाता था। उसके गीत आगम् और पुरम् में विभाजित हैं जो दोनों शब्द द्रविड़ नहीं हैं बल्कि प्राकृत से निर्वाचित हैं। उन गीतों और प्राकृत की गाथाओं में बहुत समानता है। कहने का नाटकीय ढंग मैं, वह और सखी के जाने माने पात्र भी दोनों में एक से हैं। कुछ कवियों के नाम भी प्राकृत की गाथा सप्तशती वाले ही हैं।

---

1 के. एस. श्रीनिवासन

'भाषाई रूप में भी प्राकृत का तमिळ पर प्रभाव स्पष्ट है जिस नियम से मात्रा तमिळ में मालइ हो जाता है वह प्राकृत का है। यह भी कहा जा सकता है कि तमिळ प्रभाव है प्राकृत पर ? लेकिन इस सिद्धान्त के लिए कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।'[1]

मेगस्थनीज ने इण्डिका में लिखा है कि चन्द्रगुप्त के राज्य में पाण्ड्य राजा का दूत था। बाद में पाण्ड्य राजा की सभा की पाच समिति होती थी और वे बिलकुल मौर्य सभा के प्रतिरूप थी— जनता, सन्त, वैद्य, ज्योतिषी और अमात्य की। उनके नाम भी एक ही थे —

मौर्य (प्राकृत)— मानन पारपार मरत्त निमित, अमच।

पाण्ड्य (तमिळ)— मासनम पार्पार, मरुत्तर निमित्तर अमचर।

तमिळ ने अपने इस ऋण को मध्य युग में बखूबी लौटाया जब द्रविड़ देश में उपजी भक्ति ने सारे भारत पर विजय प्राप्त की।

लिपि

ब्राह्मी लिपि अब तक ज्ञात भारत की सबसे प्राचीन और सबसे प्रसिद्ध लिपि है। सिन्धु लिपि पढ़ली जाए पर या खुदाई में अन्य प्रमाण मिलने तक यह स्थिति कायम है। इस नाम का सन्दर्भ हम अनेक स्थलों पर पाते हैं। ललितविस्तर बाद के बौद्ध ग्रंथ में, ६४ लिपियों का वर्णन है जिनमें ब्राह्मी का नाम सबसे ऊपर है। जैन पण्णवना और समवायांग सुत्ता में १८ लिपियों का वर्णन है, उनमें भी ब्राह्मी लिपि सबसे प्रमुख है। भगवती सूत्र का आरम्भ बम्भिलिपि के अभिवादन से होता है। लगभग ६६८ ई में लिखा चीनी महाकोश फन-यान-चू लिन लिपियों का वर्णन करते हुए ब्राह्मी का प्रथम स्थान देता है और बताता है कि ब्राह्मी बाएँ से दाएँ को लिखी जाती है।

ब्राह्मी लिपि का उद्भव कब हुआ, इस पर मुख्यतया दो राय हैं। कुछ इतिहासज्ञ इसका ऐतिहासिक विकास मानते हैं और कुछ इसे अशोक द्वारा निर्मित लिपि बताते हैं। यह अवश्य है कि जब तक खुदाई में अन्य प्रमाण न मिलें आज तक के सबसे पुराने ब्राह्मी अभिलेख अशोक के लगे हैं। अशोक ने चार लिपियों में अपने अभिलेख खुदवाए थे जो विभिन्न प्रदेशों में पढ़े जाते थे। इस विवाद में विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं। हमें यह देखना है कि इस लिपि का क्या भाषा से कुछ सम्बन्ध है।

भारतीय परम्पराएँ एकमात्र ब्राह्मी लिपि को ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत मानते हैं। पर इण्डियन नारद स्मृति मनु पर बृहस्पति के वार्तिक युआन च्वांग के यात्रा-वर्णन और ऊपर लिखे जैन समवायांग सुत्त और पण्णवना सुत्त का है।

---

1 के एस ऑलिवास्मन

लगभग ५८० ई के वादामी म प्रदर्शित ब्रह्मा म भी इस कहानी को दिखलाया गया है जिसम देवता अपन हाथ म ताम्रपत्रो का ग्रथ लिए बठे हैं। चीनी महाकोश फन वान यू लिन म लिखा है कि लिखने का आविष्कार तीन देवताओ न किया था। उनम पहले फन या ब्रह्मा थे जिन्होने ब्राह्मी का आविष्कार किया। दूसरे खरोष्टी के आविष्कारक खराष्ट थ जो दाएँ स बाएँ को लिखी जाती थी। ये दोनो देवता भारत के थे। तीसरी लिपि त्सम की थी जो ऊपर से नीचे लिखी जाती थी। यह चीन म आविष्कृत हुई थी।

इस पुस्तक म हम अन्यत्र दिखा चुके हैं कि यक्ष का मूल जनजाति नाम ब्रमा था जिसका सस्कृतीकरण ब्रह्मा हुआ। हमारे साहित्य, शिल्प आदि म सब ज्ञान का मूल ब्रह्मा को बताया गया है। यह कहा तक ठीक है अभी निश्चय स नही कहा जा सकता किन्तु लिपि के बारे म एक तथ्य ससार की समस्त लिपियो पर लागू होता है। ऋषि की वाणी आश्रमो म रहकर एक से दूसरे को दी जा सकती है पर लिपि का प्रचलन व्यापार क साथ सम्बद्ध है। आज भी एक कहावत अत्यन्त प्रचलित है—

पहले लिख और पीछे दे। भूल पडे कागज स ले।

जहा जन समुदाय का आपस म सम्बन्ध जुडता है वहा लिखने की आवश्यकता अनुभव होती है। यक्ष व्यापारी थ और उन्ह हिसाब रखने की जरूरत महसूस हुई जो आदिम अवस्था मे विकसित होती हुयी अशोक की ब्राह्मी लिपि म दिखाई देती है।

इसका प्रमाण हम महाभारत म मिलता है। ८००० श्लोक के जय का *लिखवाते समय वेदव्यास को लिपिकार गणेश की सहायता लेनी पडी थी।* प्रत्यक्ष है उनके आश्रम म कोई ज्ञाता नहा था और उन्होने यक्ष लिपिकार को ढूढा। इस तथ्य को अल्बरूनी ने भी लिखा है 'हिन्दुओ का लेखन खो गया था और भुला दिया गया था । लेकिन फिर पराशर के पुत्र, व्यास ने देवता की कृपा स ५० अक्षरो की वर्णमाला का ढूढ निकाला।[1]

विकासवादी दृष्टिकोण का दूसरा नाम ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण है यह हम *शिक्षा के प्रत्येक अग का सीखने पर पाते हैं* चाहे वह जीवशास्त्र का प्राणी हो या राजनीति शास्त्र का राज्य। फिर लिपि का इतिहास ढूढते हुए हम उस किसी का गढा हुआ मानें यह जचता नही। डेविड डिरिंजर आइ जे गेल्ब और अनेक विद्वानो ने ससार की लिपियो के एक दिशा म विकास के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है। प्रा० गेल्ब कहते है कि आरम्भ से पूर्ण विकास तक किसी भी लिपि को शब्दचिह्न अकन अक्षर-अकन और वर्णानुक्रम अकन की आवश्यक अवस्थाओ से गुजरना पडता है। *यही हमारे उत्तर वैदिक ग्रथो म वर्णित है।*

---

1 Sachau E C Alberuni s India pp 171–72

कौरव प्रतीप के समय दक्षिण पाचाल का महान् राजा ब्रह्मदत्त था। उसका एक मन्त्री कण्डरीक पाचाल[1] और दूसरा सुवालक बाभ्रव्य पाचाल था। तीनों जगीषव्य मुनि के शिष्य थे। ब्रह्मदत्त ने जगीषव्य ऋषि से योग विद्या प्राप्त कर, योगतन्त्र नामक ग्रन्थ का निर्माण किया था। यह वन्शास्त्रविद् था। इसने अथर्ववेद तथा कण्डरीक पाचाल ने सामवेद के क्रमपाठ की रचना की था।

सुवालक बाभ्रव्य को वहवृच एव आचार्य की उपाधियाँ प्राप्त थी।[2] इसने ऋग्वेद की शिक्षा तैयार करके उसका प्रचार किया। इसने ऋक-संहिता का क्रम पाठ पहले पहल निश्चित किया।[3] ऋक संहिता के क्रम पाठ की रचना का श्रेय वैदिक ग्रन्थों में भी इसे दिया गया है।[4] पाणिनि ने भी बाभ्रव्य तथा इसके द्वारा रचित क्रम का निर्देश किया है।[5] ध्वनियों की छानबीन पहले चल रही थी, इसने उनके सिद्धांत निश्चित कर दिये। दूसरे शब्दों में ब्राह्मी वर्णमाला महाभारत युद्ध से आठ पीढ़ी पूर्व लगभग १२५० ईसा पूर्व में सुवालक बाभ्रव्य द्वारा पूर्ण की गई। इसी कारण इसके बाद सब कोना कोना चल आते सूक्तों और गीता और सुभाषितों की संहिताओं की लहर चल पड़ी। उन संहिताओं का अंतिम एकत्रीकरण तथा संस्करण वेदव्यास ने किया।

पाचाल राज्य हिमालय की तलहटी में पाच जनजातियों ने मिलकर बनाया था और यह महाभारत से पूर्व उत्तर भारत का प्रमुख राज्य था। क्या वे जन जातियाँ यक्षों की थी आज की हमारी जानकारी में कहना दूभर है।

पाचालराज द्रुपद ने अपनी पुत्री शिखण्डिनी को लेखन और शिल्प कला की शिक्षा दिलवाई थी।[6] इससे इस बात को बल मिलता है कि ब्राह्मी लिपि को अंतिम रूप पाचाल देश में ही मिला था और वहां लेखन की शिक्षा मिलती थी।

लिपि अथर्ववेद के काल तक सम्भवत बन चुकी थी। अथर्ववेद में जुए का हिसाब रखा जाने (लिखित) का संकेत है।[7] वैदिक साहित्य में ही परोक्ष प्रमाण केवल लिखने का ही नहीं लिखित पुस्तकों का भी है। अथर्ववेद १९ ७२ में वेद को कोष अर्थात् डिब्बे में निकालने और अन्दर रखने का वर्णन है। इसी प्रकार ऐतरेय आरण्यक में (५ ३ ३) लिखा है कि शिष्य को पीठ झुककर या आगे झुककर शिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए न मांस खाने के उपरांत न रक्त देखने के

1 हरिवंश 1 0 13 मत्स्य पुराण 21 25 हरिवंश 1 23 21-22
2 हरिवंश 1 23 21 मत्स्य पुराण 20 24 21 30
3 पद्म पाताल खड 10 हरिवंश 1 24 32 महाभारत शांति पर्व 310 17-38
4 ऋग्वेद प्रातिशाख्य 11 33
5 पाणिनि सूत्र 4 1 106 2 61
6 महाभारत उद्योग पर्व 189 1 13
7 भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृष्ठ 12

पश्चात् न माला पहनने के उपरान्त, न लिखने के पश्चात् न लिखित मिटाने के बाद ।

कालिदास ने लिखा है कि रघु ने लिखने की कला सीखने के बाद साहित्य के सागर में प्रवेश किया ।[1]

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में लिपि और लिपिकार का वर्णन किया है, साथ ही गायों के कानों में अंक डालने की प्रथा (गिनती के लिए) का भी वर्णन किया है ।[2] स्वयं पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता चलता है कि सहस्रों शब्दों का चयन और उनके अर्थ ढूंढना बिना लिपि के सम्भव होना नामुमकिन है । लौकिक और वैदिक साहित्य में फैले शब्दों को छाँटना विभिन्न स्थलों, देश प्रदेश से उनके अर्थ एकत्र करना बिना लिपि के असम्भव था । एक देसी लिपि होने के कारण ही पाणिनि ने खराष्ट्री को यवनानी लिपि कहा है ।[3]

लिखने के लिए भूर्ज पत्र का उल्लेख भी आरम्भ से पाया जाता है यह भी अशोक से पहले लिपि विद्यमान होने का प्रमाण है । भूज-पत्र हिमालय में ऊँचाई पर मिलते हैं इससे भी यक्षों द्वारा ब्राह्मी लिपि के क्रमिक विकास के सिद्धान्त को बल मिलता है । याद में तो सिकन्दर के जनरल नियरकस ने जो पंजाब में उसके साथ था लिखा है कि "इस प्रदेश के निवासी कपास और फटे कपड़ों से कागज बनाने की कला जानते थे । दूसरे ग्रीक लेखक कर्टियस के अनुसार कुछ वृक्षों की कोमल अन्दरूनी त्वचा लिखने की सामग्री के रूप में प्रयुक्त होती थी । अथर्ववेद के जुए का हिसाब रखना तथा पाणिनि के गायों के कानों में अंक डालना भी व्यापार की ओर इंगित करता है ।

जातकों में निजी और सरकारी पत्राचार शासकीय सूचनाएँ पारिवारिक समाचार ऋण-पत्र आदि का इफरात से वर्णन है । बौद्ध और जैन सूत्रों के वर्णन में इसकी प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं है । भगवती सूत्र तो नमो बम्भिए लिविए अभिवादन से आरम्भ होता है ।

ब्राह्मी लिपि और तमिळ

एडवर्ड टामस और कुछ अन्य विद्वान् मानते हैं कि ब्राह्मी लिपि द्रविड़ों की देन है जो भारत के मूल निवासी थे और बाद में आर्यों द्वारा अपना ली गई । किन्तु आज यह सिद्धान्त सबको अमान्य हो गया है ।

टी एन सुब्रह्मण्यम् को इस सिद्धान्त पर कट्टर विश्वास है कि ब्राह्मी लिपि तमिळ भाषा के लिए आविष्कार की गई थी जो बाद में प्राकृत के लिए अपना ली

1 रघुवंश 3 28

2 वासुदेव शरण अग्रवाल पाणिनिकालीन भारत पृ० 306

3 पाणिनि 4 1 49 और उस पर कात्यायन का वार्तिक

गई क्योंकि प्राकृत और तमिळ म अनक समान विशेषताएँ हैं ·

(i) भाषा और व्याकरण की सरलता

(ii) केवल दो, एकवचन और बहुवचन की उपस्थिति

(iii) स्वर ऋ, ल ऐ और औ का अप्रचलन

(iv) ए और आ के ह्रस्व और दीर्घ आकार

(v) ष और श का अप्रचलन और स से काम चलाना

(vi) ळ की उपस्थिति।

यह घोडे के आग गाडी रखन का प्रश्न है। ब्राह्मी लिपि वसे पहले उत्तरी भारत म हुआ है और प्राकृत क लिए हुआ। दक्षिण म ... लिए बहुत बाद म हुआ। यदि सुब्रह्मण्यम् के तक मान लिए जायें तब भी प्राकृत के तमिळ पर प्रभाव स यह समानता आई है जिस तक को मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ।

तमिल और देवनागरी वणमाला और अक्षरो के बीच बहुत सी बातें एक दूसर स मिलती जुलती दृष्टिगोचर होती हैं। तमिळ और नागरी वणमालाओ की परस्पर तुलना करन पर दोना की वणमालाओ म भेद होते हुए भी कुछ विलक्षण समानता देखन म आती है जिससे यह प्रतीत होता है कि या तो इन दोना वणमालाओ का स्रोत एक ही रहा होगा (ब्राह्मी लिपि) या दोना म आदान प्रदान हुआ होगा। समेटिक या पाश्चात्य देशा की वणमालाओ से भारत की सभी भाषाओ की वणमाला भिन्न है चाहे वे द्रविड परिवार की हो या आय-परिवार की। तमिळ और देवनागरी म निम्नलिखित समानताए देखने को मिलती हैं —

१ देवनागरी और तमिळ दोना म स्वरा का क्रम समान है। यद्यपि तमिळ और उस परिवार की भाषाओ म ह्रस्व ऍ और आ अक्षर भी पाये जाते हैं परन्तु अक्षरा के क्रम म कोई अन्तर नही पाया जाता।

२ यद्यपि तमिळ म ककारादि वर्गों म बीच क तीन अक्षर नही होते तो भी जो अक्षर वतमान हैं उनका क्रम भी देवनागरी वणमाला के ही अनुरूप है।

३ य, र ल व आदि वर्णों का भी वही क्रम है जो देवनागरी म है। हाँ, स, श, ष ह आदि अक्षर तमिळ वणमाला म नही है।

४ स्वरचिह्नो की परिपाटी भी देवनागरी म ही मिलती जुलती है। यूरोपीय और सेमटिक भाषाओ म अक्षर ही स्वर का काम देते हैं परन्तु भारतीय भाषाओ म स्वरचिह्न अलग होते हैं यही नियम तमिळ क लिय भी लागू है।

५ तमिळ के अनेक अक्षरो क रूप ब्राह्मी स मिलत जुलते हैं। इसी आधार पर अनक विद्वानो न यह मत प्रकट किया है कि तमिळ लिपि भी ब्राह्मी लिपि क ही आधार पर बनाई गई है।[1]

लिपि क विवेचन स इस पुस्तक के विषय पर बल मिलता है कि यहा की

---

1 प्रकाश इन तमिल साहित्य और संस्कृति पृ० 65-66

भाषा मूल प्राकृत थी जिसके लिए व्यापार और जन सम्पर्क के कारण ब्राह्मी लिपि का विकास हुआ। यह भाषा यक्षों राक्षसों और अन्य किरात कुलों के साथ दक्षिण गई। यक्ष, रक्ष, वानर और ऋक्ष और स्थानीय जनजातियों की बोलियों के सम्पर्क से यह तमिल आदि द्रविड भाषाओं में विकसित हुई। उधर उत्तर में मूल प्राकृत का अनेक स्थानीय और बाहर से आई देव, असुर आदि जनजातियों की बोलियों से सम्मिश्रण हुआ और उन सब का परिष्कार कर संस्कृत भाषा का जन्म हुआ। संस्कृत पण्डिताऊ भाषा रही जिसे पाणिनि ने व्याकरण लिखकर स्थिर किया, किन्तु आम जनता में पुरानी प्राकृत चलती रही विशेषकर हिमालय तराई के गंगा-यमुना के मैदान में। इसी भाषा में महावीर और बुद्ध ने अपने प्रवचन दिए जिन्हें ग्रन्थ में सम्पादित करने के लिए पालि अर्धमागधी और परिष्कृत प्राकृत का विकास हुआ जो देशज शब्द संस्कृत पर निर्भर भाषाएं थीं। यह पण्डिताऊ प्राकृत जिस की तूती सस्कृत में कल्ली जाने वाला सातवाहन काल में सब से अधिक फली फूली।

जब प्राकृत भी सुसंस्कृत की जाकर पढ़ा लिखों की भाषा संस्कृत के समान बन गई तो जो देसी भाषा बोलने को रह गई उसे अपभ्रंश कहा गया।

संस्कृत को 'देवी वाक्' मानने वाले वैयाकरण देशी भाषा को भ्रष्ट अपभ्रष्ट, बिगडैल इत्यादि कहते रहे। उधर अपभ्रंश के पुजारी लेखक उसे अपभ्रंश या अपभ्रष्ट कहने के स्थान पर देसी भाषा कहना ठीक समझते थे। विद्यापति ने कीर्तिलता में कहा है संस्कृत वाणी बहुतों को अच्छी नहीं लगती। प्राकृत रस का मर्म नहीं प्राप्त करती। देसी वचन सबसे मीठे होते हैं। इसीलिए मैं उसी अपभ्रंश (अवहट्ठ) में कथा कहता हूँ। इस लेखकों के द्वारा मूल प्राकृत आज की तथाकथित आर्यभाषाओं हिंदी बंगाली आदि में फूली फली।

गिनती

अंग्रेजी में और संसार की अन्य भाषाओं में द्वितीय महायुद्ध से पहले गिनती इकाई दहाई सैकड़ा हजार पर समाप्त हो जाती थी। उससे आगे चलती थी दस हजार और सौ हजार। कुछ अंग्रेज भारतीय गिनती की नकल करके लाख और करोड भी अंग्रेजी लिपि में लिखने लगे थे। द्वितीय महायुद्ध के बाद विज्ञान में विस्फोट और तीव्र प्रगति होने से गिनती में मिलियन बिलियन और ट्रिलियन भी सम्मिलित हो गए।

इधर हिंदी की गिनती में एक के आगे अठारह बिंदुओं तक की गिनती है। आज की अंग्रेजी प्रभावित भारतीय शिक्षा में नहीं मैं सन् 1931 की बात करता हूँ जब मेरी प्रथम वर्णमाला की पुस्तक में यह गिनती दी थी और हर बच्चे को याद कराई जाती थी। यह मुझे आज तक भली भांति याद है—इकाई

दहाई सकड़ा, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड, दस करोड अरब दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म शख, महाशख।

आज इस गिनती को याद करने की बात तो दूर रही पढ़कर ही आपको हँसी आयेगी। आखिर इसका क्या लाभ! आजकल समार मे बडे बड धनपति भर पडे है पर खरबपति से ऊपर नही, फिर इस ख्याली पुलाव का पकाने से क्या लाभ! लेकिन यह गिनती यहा तक पहुँची क्या? इसकी आवश्यकता पडी होगी अवश्य पडी होगी। तभी महाशख तक गिनती पहुँची।

कुबेर की नव निधि प्रसिद्ध है। वे हैं— पद्म महापद्म शख मकर कच्छप, मुकुन्द नन्द, नील और खव। इनम से शख पद्म नील और खव के नाम यही है, बाकी के आज तक जन म आते आते वदल गए हैं। यही नही इनम से कुछ का विस्तृत वणन है कि कितने कोष को धन हीरे मोती को, नीन कहते है कितने का पद्म, आदि। नील पद्म, शख कुबेर के चतुभुज रूप के हाथो म स्थान पाए हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि यह गिनती यक्षो न जग को दी और वह एक समय प्राप्य थी, सपना या ख्याली पुलाव नही।

य नौ निधि आग सस्कृत साहित्य म धन के चिह्न (symbols) है। सम्भवत समुद्री व्यापार से यक्षो न इतनी दौलत एकत्रित की थी कि १ पर अठारह बिन्दी तक गिनना पडा और फिर हार मान कर इस शख की बजाय महाशख कह दिया।

कुछ शब्द गिनती म पुराने नामो क स्थान पर नय नामो क प्रयोग पर। क्या पहले भी एक दो तीन चार कह जाते थे या य सस्कृत से हिन्दी म आए है? सस्कृत स। पुरानी प्राकृत म क्या थे? यह हम अपने एक खल से पता चलता है। खल म गिनत है— अक्कड बक्कड बम्बे भौ, अस्सी नब्बे पूरे सौ। एसे ही ओका बोका का खेल है। इसम प्रत्येक लडका हाथ की उगलिया को जमीन पर रख कर हथेली ऊपर उठा लेता है। खिलाडियो का नेता सबकी हथेलिया को बारी-बारी से छूता जाता है— ओका बोका तीन तडोका यह पुरानी प्राकृत की गिनती है। अक्कड या ओका एक। बक्कड या बोका दो। तडोका तीन। बम्बे भौ का अथ आज खो गया है। शायद लय के अनुसार नब्बे और सौ होगा। वस भी दस, बीस, तीस, चालिस पचास के हिसाब से नौस या नास्सी होना चाहिए था नब्बे नही। इसस प्रत्यक्ष है कि नब्बे सौ किसी और बोली क शब्दो से बने हैं।

बारह का एक रुचिकर प्रसग है। उसकी जगह द्वितीय को दो हो गया परन्तु आग चलकर उसने अपना स्वामित्व छोडा। दो और दस— द्वादश नही बारह है बीस है, बाईस है, बत्तीस बानवे तक दो क स्थान पर ब का प्रयोग हुआ है।

दूसर, सरकृत म प्रथम है और उसके साथ एक भा है। क्या यह एक अक्कड का रूप है ?

तीसरे, लक्ष से हिन्दी म लाख बना है। लकिन पुराने आत्मिया स वात करो तो व लक्ख बोलेंगे। लडगे ता कहग वडे वडे लक्खपति देखे हैं। या वडे लक्खपति बने फिरत हो। यह लक्ख वसे ही है जसे यक्ष का मूल प्राकृत रूप यक्ख है।

कुछ अन्य सूत्र

भद्र और आर्य की तुलना

वर्ण म और आगे चलकर संस्कृत साहित्य म आर्य आदरसूचक शब्द के रूप म प्रयोग हुआ है। संस्कृत म पत्नी पति को आर्यपुत्र कहकर पुकारती थी। यह शब्द इण्डो-यूरोपियन प्रजाति की भाषाओं म पाये जाने पर उस प्रजाति को आर्य भी कहने लगे। परन्तु वैदिक और संस्कृत भाषाओं म यह प्रतिष्ठित या भले व्यक्तियों के लिये आया है। कृण्वन्तु विश्वमार्यम् पद म किसी प्रजाति विशेष को नहीं कहा गया विश्व के प्रत्येक जन को भला बनाने के लिये कहा है। यह देव प्रजाति की बोली का शब्द है जिसका अर्थ प्रतिष्ठित भला आदरणीय या अच्छा व्यक्ति है।

भारतीयों न कहा था कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। उसी स्थल पर आगे चलकर उन्होंने कहा विश्व भद्र कुर्वन्तु। विश्व को कुलीन बनाओ अभिजात बनाओ भव्य बनाओ।

इसी प्रकार का यह शब्द 'भद्र' क्लासिक संस्कृत म है जो सम्भवत यक्ष भाषा (पूर्व प्राकृत) का संस्कृतीकरण है। जैसा हम इतिहास और धर्म म देख चुके है भद्र यक्षों के राजाओं या पूज्य देवताओं के नाम का भाग है। मणिभद्र पूर्णभद्र आदि की पूजा आज तक भारत म होती है। शिव के प्रधान गण वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया था।

जब हनुमान राम के आने का सन्देश भरत को देते है तो वे अयोध्या दौड जाते है और सबको सूचित करते है कि रामभद्र सीता महारानी और लक्ष्मण के साथ वापिस आ रहे हे— तुलसीदास ने रामचरितमानस म लिखा है।

एक नाटक म राम के लिए रामभद्र शब्द अनेक स्थलों पर आया है। कृष्ण के बडे भाई बलराम का अन्य नाम बलभद्र भी था श्रावण की पूर्णमासी को रक्षा बन्धन वाले दिन उडीसा म बलभद्र की पूजा का पर्व मनाया जाता है। साथ ही कृष्ण की बहन का नाम सुभद्रा था।

भद्र शब्द एक स्थान पर गौतम बुद्ध के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत म अनेक स्थलों पर यह सम्बोधन के रूप म प्रयुक्त हुआ है। मार्कण्डेय पुराण की दुर्गा सप्तशती म यह प्रयोग म आया है। इसका अर्थ भी शिष्ट सभ्य और सुशिक्षित या भला करने वाला मंगल या कल्याण करने वाला है। बंगाल म आज भी भद्र

लोग का बहुत प्रयोग होता है।

लखनऊ स चौदह मील दूर पर भदाई ग्राम एक ऊँचे टीले पर स्थित है। ग्राम म घुसने ही एक खण्डहर है जा भदेसर बाबा का मन्दिर कहलाता है।

कुछ हल्के गुण वाल रुद्राक्ष को भद्राक्ष कहते है।

आय से उत्पन्न हुए शब्द मानक हिंदी कोष म केवल आठ है।[1] उधर भद्र से उत्पन्न शब्द अस्सी हैं।[2] भद्र से बने दो नाम तो कृष्ण के भाइयो के है, दो कृष्ण क पुत्रा क है। भद्रवती कृष्ण की पुत्री का नाम है। भद्र-पीठ राजाओ या देवताओ के अभिषेक होने वाले आसन को कहते है। भद्र काष्ठ देवदारु वृक्ष का दूसरा नाम है। भद्र कुम्भ मगल घट को कहते है।

भदावर (भद्रवर) आधुनिक ग्वालियर प्रदेश का पुराना नाम था। मणिभद्र यक्ष की सबसे पुरानी मूर्ति ग्वालियर के पास पद्म पवाया म मिली है जो प्राचीन एतिहासिक राजधानी पद्मावती है।

भद्राश्व पुराणा म दिए भूगोल म जम्बूद्वीप के नौ खण्डा या वर्षों म से एक था। यह सुमरु पवत क पूव म था। यही हम यक्ष आदि किरात प्रजाति के जना का मूल पाते है। इसी वर्ष (खण्ड) म पुराणा मे भद्रा नाम की नदी बताई गई है जो गगा की शाखा कही गई है।

भद्र और भद्रानन्द सगीत की दो स्वर साधना प्रणाली है।

भद्र और भद्रक फलित ज्योतिष म वृत्त को दिखलाते हैं। भद्रा के छब्बीस अथ है।

एक बडा रुचिकर शब्द है भद्राकरण। इसका अथ है सिर मुडाना या मुडन। यह किस चीज की ओर इगित करता है?

सब स आश्चयजनक बात तो यह है कि भद्र के साथ भी वही घटा है जो यक्षराज कुबेर या गणेश के साथ घटा है। देव असुर प्रजाति न उन्हें पूज्य भी माना है और चोरो का राजा विघ्नकर्ता आदि भी कहा है। भद या भद्द यक्ष वाली क मूल शब्द का सस्कृतिकरण कर उन्होने उसे आय के समान रूप दिया और जनता न उस तथा उसके अनक रूपा को दिल से अपनाया। लेकिन भद या भद्द का अथ यक्ष के बुरे रूप म भी व्यवहृत किया। जस भद— किसी मोटी चीज क गिरने का शब्द भम्भद— बहुत मोटा भदरगा— जिसका रग फीका पड गया हो (क्या बदरग भी इसी स निकला है?) भदेस— खराब या बुरा देश भद्द— अपमान किसी का अपमान करना या मजाक उडना भद्दा— जिसकी बनावट म अग प्रत्यग की सापेक्षिक छोटाई बडाई का ध्यान न रखा गया हो और इसी लिये जो देखन म कुरूप या बढगा हो। भद्दा अश्लील और फूहड के रूप म भी

1 मानक हिंदी कोश पहला खण्ड पृ० 284
2 मानक हिंदी कोश चौथा खण्ड पृ० 193–195

प्रयुक्त होता है।

भद्र का प्राकृत ही भड्डर है जो ब्राह्मणों की निम्न श्रेणी की जाति है। इस जाति के लोग फलित ज्योतिष या सामुद्रिक ज्ञान आदि की सहायता से लोगों का भविष्य बताकर अपनी जीविका चलाते हैं।

एक अन्य शब्द भदन्त है जिसका अर्थ पूजित, सम्मानित, सौम्य है जो बौद्ध भिक्षु का आदरसूचक शब्द है।

भट्ट, भाट, भट्टा, भट्टी, भंडार आदि अन्य सैकड़ों शब्द भी इसी प्रकार यक्ष जाति से अपना सम्बन्ध दर्शाते हैं।

यक्षों की भद्र मणि बहुत प्रसिद्ध है जो मणिभद्र यक्ष के पास रहती है।

ऊर

मेरठ के पास एक गाँव में जितने हरिजन परिवार थे वे सब अमृत चखकर सिख हो गये। बड़ी गरम खबर थी जिसने अपनी ओर ध्यान खींचा। साथ ही गाँव के नाम पर ध्यान दिया तो दिमाग में घण्टी बज गई— नगला ऊरू। मेरठ के पास भी हरूर। इंदिरा गांधी जब चिकमगलूर से जीतकर संसद में आई थीं तब पता चला था कि कुछ प्रसिद्ध ऊर स्थानों को छोड़कर और भी कोई ऊर भारत में है। मेरठ के पास ही दूसरे गाँव हैं कलौर और सगौर। मुजफ्फरनगर के पास बड़सू।

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी लक्ष्मण की बसाई कही जाती है। इस पर तुरत यह भिड़ाई गई कि इसका असली नाम लक्ष्मणावती होगा जो बिगड़ते बिगड़ते लखनऊ रह गया। शहर पर लिखी गई एक मराठी पुस्तक में इसका नाम लखनूर दिया हुआ है जो बिगड़कर लखनऊ हो गया। यह समझ में भी बैठता है। ऐसी तरह के अन्य नाम हैं लखनऊ के आसपास के शहरों के बालामऊ, पापामऊ, जाजमऊ, डलमऊ, भगऊ, पाटमऊ आदि। लखनूर से लक्ष्मण द्वारा बसाई गई गाथा भी अधिक सिद्ध होती है। लखन का नगर। शायद लखन ही अवधी का असली नाम हो जिसे गलती से लक्ष्मण कर दिया गया हो।

लखनऊ के साथ शहर है कानपुर। इसके असली नाम की भी अटकल लगाई जाती है। एक मत है कि अंग्रेजों ने लखनऊ पर दृष्टि रखने के लिए इस स्थान पर अपनी सेना रखी थी इसलिए इसका नाम कैम्पपुर पड़ा जो बाद में बिगड़कर कानपुर हो गया। दूसरा मत है कि यह कान्हपुर नाम का गाँव था जो अंग्रेजी सेना रहने के कारण प्रमुखता पा गया और बाद में बिगड़कर कानपुर हो गया। लेकिन इस नगर की पुरानी हिज्जे अंग्रेजी के ग्रंथों में लिखी है— Cawnpore। अंग्रेजी ने अ या आ स्वर को aw से व्यक्त किया है aw से नहीं ओ

'जो' को दर्शाता है। इसका पुराना नाम कौनपूर था।

कानपुर के पास गंगा के तट पर प्रसिद्ध नगर बिठूर बसा है जहाँ पेशवा बाजीराव द्वितीय ने पूना से जलावतन होने पर अपना निवास बनाया था। यह धार्मिक स्थल है और यहाँ के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। उस समय बिठूर कानपुर से बड़ा नगर था। यह शताब्दियों तक अपना मूल नाम बिठूर स्थिर रखने में सफल रहा परन्तु आजकल के विद्वान् टिप्पस भिड़ाते हैं कि इसका मूल नाम ब्रह्मावत था जो बिगड़कर बिठूर हो गया। इसी तरह के अवध में अनेक नगर हैं जुग्गूर (जुग्गौर) मल्हूर (मल्हौर)।

यही आक्रमण बिचारे किराडू(र) को झेलना पड़ा है। उसका असली नाम किरातकूप बताया गया है। किराडू राजस्थान के पश्चिमी भाग में बाड़मेर से लगभग तीस किलोमीटर दूर स्थित है। इसके ध्वस्त अवशेषों को देखकर इस नगर की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। किराडू में आज भी शिल्प का बेजोड़ नमूना लिये पाँच मन्दिरों के खण्डहर विद्यमान हैं। विशेषतर सोमेश्वर मन्दिर जिसका कोई भी पत्थर ऐसा नहीं है जो कलाकार के हाथों गढ़ा न गया हो। महाभारत के समय भी राजस्थान और हरियाना में यक्ष और राक्षसों के राज्य थे। वन पर्व ११ अध्याय में काम्यक वन में राक्षसों का राज्य था जिसमें वनचारी और तापस लोग भी घूमते हुए डरते थे। वहाँ भीम ने राक्षसराज किर्मीर को मारा था। मुख्य साम्राज्य नीचे खिसकने पर भी राक्षस शक्ति के छोटे छोटे टापू सारे भारत में रह गये थे। इन्हीं पर अधिकार करके और इन्हें अपनी सत्ता का सहारा बनाकर रावण ने अपना महान् साम्राज्य स्थापित किया था।

ऊर शब्द द्राविड भाषा का शब्द है जिसका अर्थ नगर है। दक्षिण में इससे अन्त होने वाले अनेक प्रसिद्ध नगर हैं मायसूर बंगलूर तंजाऊर मंगलूर गन्तूर गुडूर चित्तूर गुरुवयूर त्रिचूर। किन्तु इन पर भी यह सूची समाप्त नहीं होती। ये अनेक हैं —

अडूर	वेल्लूर (वेलोर)	वागहूर
अम्बूर	तिरुचेन्दूर	थिरुनरम्बूर
अतूर	अलन्दूर	थिरुचिन्मरुदूर
कन्नानूर	मावूर (केरल)	पुनालूर (केरल)
चंगानूर	ट्रिक्कालयूर (कोचीन के निकट)	वियूर
कुनूर	पुलियानूर ( )	श्रीपेरुम्बुदूर (रामानुज का जन्म-स्थान)
कड्डालूर	वज्हूर (केरल)	
होसूर	इरुगूर	ताडनूर (श्रीरंगम के पास)
इलुरु(र)	पोदुनूर	क्रंगनूर (केरल का बंदरगाह)
करूर	कोयम्बतूर	थिरविल्लिपुत्तूर

क्तिूर	चेंगलपत्तूर	तिरुमाललूर
कोवूर	अम्र	त्रिवम्यूर } मद्रास महा
वलूर	चेम्वथूर	नवालूर } बलिपुरम् के
आत्लूर	गौरीमिदानूर	त्रिपरूर } रास्ते म
परम्मावूर	कोलेम्(र)	तानुकु(र) (आध्र प्रदेश)
पनमवूर	अरट्टू(र)	चेम्वत्तूर
पुत्तूर (श्रीलका)	पालूर	अजवनूर
मुल्लदिवू(र),	थिम्दत्तूर	थिरुवनमियूर
नायारु(र),	विल्लीयूर	नमनल्लूर
भ्रतातिवू(र),	तुमकूर	पगनूर
यिम्वलक्कू(र)	सात्तूर	मदूर
पलयनूर	वतूर	मलयक्कदेनसूर
मुनियूर	निदूर	अडजूर
नदगुडूर	थिरुवरूर	कोविलूर
मेनक्कदवु(र)	कोलायूर	काक्यिालूर
विडातलमडू(र)	नगलूर	एलुरूर (आध्र प्रदेश)
रनवन्नूर	मजूथूर	अरियानूर (तमिलनाडु)
सत्तूर	करूपू	तिरुरयारू(र)
सुरलूर	बोदीनयक्कनूर	अयूर
तिरुवल्लूर	अरियालूर	

यही नही आज का मद्रास भी पुराने मायलापूर और एगमूर को अपने मे समेटे स्थित है जसे कलकत्ता वेलर को। यह श्रीलका तमिलनाडु केरल आध्र प्रदेश और कर्नाटक की सूची व्यापक नही है केवल उन नगरो की है जो चुनाव के समय अखबारो मे वर्णित हुए हैं या वैसे बहुत प्रसिद्ध हैं।

दक्षिण तक ठीक था किन्तु जब उत्तर म भी ऊर पाए गए तो मेरा माथा ठनका (देखिए लेख का आरम्भ)। एक भाषाविज्ञान की पुस्तक म यह पढने पर कि तिब्बती भाषा (यक्षभाषा) म ऊर का अर्थ नगर होता है मतलब साफ हो गया। साथ ही मेरे इस सिद्धान्त को बल मिला कि यक्ष व्यापारियो ने ही और राक्षस साम्राज्य निर्माताओ ने दक्षिण को धन धान्य (द्रामिळ) म भर दिया था। इस पर अनुसधान करने की आवश्यकता है कि तिब्बती अवधी और द्रविड भाषाओ का मूल एक है, वसे दो हजार से अधिक साल के अतराल म अन्तर आना अवश्यम्भावी है। अमृतलाल नागर रामविलास शर्मा तथा हिन्दी के कुछ अन्य जाने माने साहित्यकार जब विजयवाडा गए तो उन्हे एसा लगा जैसे अवधवासी आदमी ही यहा पर रहते है।

उत्तर और मध्य भारत में त्व शक, गुजर आभीर हूण अफगान, मगोल, तुर्क आक्रमणों और आधिपत्य के कारण बड़ नगर व नामोनिशान मिट गए और सवडो र नाम बदल गए। फिर भी आज तक अनेक नाम ऊर म मिलते हैं।

यक्ष व्यापारी हिमालय म उतर कर उत्तर प्रदेश पश्चिमी बिहार होते हुए दक्षिण की ओर बढ़ और पूर्वी मध्य प्रदेश आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु होते हुए श्रीलंका तक चल गए यह इन प्रदेशों म और मध्य प्रदेश म पाए गए नामों म पता चलता है। हजारीबाग व पास चताप्पू(र) जिला है। निषाद राजधानी शृंगवरपुर या तुलगोआम व समय भी इसका नाम सिंगरौर (सिंगरूर) था जैसा कि तुलसी ने स्वयं लिखा है। निषाद उसे शृंगवरपुर कह कर नहीं पुकार सकते यह अवश्य सिंगरूर का संस्कृतीकरण है। ऊर बोलचाल-चलन अनेक जगह और म बदल गया है या र लुप्त होकर ऊ रह गया है।

ऊपर दिए गए मराठ जिले क नामों के अतिरिक्त कुछ नाम य ह — बिजनौर शक्तौर सतानौर कान्डोर, साग बथू(र) गन्नौर शिरांव(र) (इलाहाबाद जिला) गीरामऊ(र) जुगौर जानजू(र) बागरमऊ नागर(र) भुपियामाऊ(र) भन्नू(र) भटर(र) भरूर भनौर मल्लौर ल्पामऊ(र) रोशनमऊ(र)।

मध्य प्रदेश की महू(र) छावनी प्रसिद्ध है। अंग्रेजों के समय प्रसिद्ध सागौर नगर था जिसका नाम आजकल सागर कर दिया गया है। रायपुर ह। मन्दसौर बड़ा प्राचीन प्रसिद्ध नगर है। सीहोर है। इन्दौर है जहा बड़े गणेशजी का प्रसिद्ध मन्दिर है।

यक्षों की दूसरी शाखा वह थी जिसने अनेक जनजातियों के साथ मिलकर कार्तिकेय के नेतृत्व म ईरान व असुरों के विरुद्ध अमरावती (पामीर— पायमेर के दक्षिण म) इन्द्र की सहायता की थी। वह रक्षामि क नारे व कारण व राक्षस कहलाए। यह दूसरी यक्ष शाखा राज्य फैलाने के लिए स्वात, चित्राल गिलगित कश्मीर होती हुई पंजाब उत्तरी तथा हिमाचल प्रदेश होती हुई हरियाला उत्तरी और फिर राजस्थान महाराष्ट्र कर्नाटक केरल म बस्ती बसाती हुई स्वर्ण लंका तक चली गई। (रावण की स्वर्ण लंका उज्जैन की देशांतर रेखा जहा विषुवत् रेखा को काटती है वहाँ बसी हुई थी और लगभग १४०० ईसा पूर्व म जब द्वारका सागर चढ़ने से डूब गई थी तभी डूब गई थी। उसके कुछ ऊँचे भाग आज भी मालद्वीप और लक्षद्वीप के रूप म विद्यमान है। श्रीलंका अलग द्वीप था। पुष्पक विमान स अयोध्या लौटते हुए राम ने सीता को दिखाया था कि दाए हाथ पर यह श्रीलंका का द्वीप है कैसा सुन्दर लग रहा है।) इन सब प्रदेशों म ऊर अंकित नगर पाए जाते हैं आजकल के पाकिस्तान व प्रदेशों को मिलाकर।

जम्मू के अखनूर और पंजाब के मगरूर कलानूर और सचूर को कौन नहीं

जानता, व अपने पुराने हिज्जे म स्थित हैं। जम्मू स्वय और उसके पास ही वनूर गाँव हैं। हिमाचल प्रदेश के जिलासपुर जिले म बन्दूर है, चम्बा के निकट बड़ौर है, शिमला के निकट जाबू(र), परवानू, सुवाथू, सपाटू हैं। हिमालय म हा कत्यूरी है जो कार्तिकेयपुरी का अपभ्रश है। सिरमौर है, किन्नौर है, जामू है।

पजाब म समन्दर के अतिरिक्त अमृतसर के माड इलाके म खन्दर साहब है फिरोजपुर जिले म मखू(र) है बाबा पृथ्वीसिंह आजाद की जन्मभूमि ललन्द है, धनूर ह पुलिस ट्रेनिंग का फिल्लौर है। हरियाना म करनाल के पास घेरो नाल(र) है, लाडू(र) है। अन्य स्थान लालड(र), लूनसू(र), लोहाम्ब(र) सराय हरखु(र) सामराऊ है।

राजस्थान म सिंगाटू के निकट बाहडमन(र) है जिसका पुराना नाम बाप्पडाऊ है। प्रसिद्ध नगर जालौर है। जैसलमेर के निकट पोटाल(र) है।

महाराष्ट्र म चेमूर है, लाटूर है, दहाणू(र) है और भयूर है। गुजरात म घेरालू(र) है।

प्राचीन भारत के पाकिस्तान राज्य म भी ऊर पर अत होने वाले नामा की कमी नही है। स्वात घाटी मे बजूर है सद्दू(र) भगलूर है उपू(र) है। पास कलश घाटी म रम्बूर है, बगान घाटी म शिनू(र) है। तनाजा बाध के निकट खौर है। बालिस्तान म बलटोरो सलटारो है। यही लद्दाख स स्कदू क मार्ग पर खपल(र) है। स्कर(र) स्वय है। गिलगित म दयूर है। अधिकृत कश्मीर मे अप्टौर है। पाणिनि व्याकरण का जन्मस्थान लहुर है। अटक के निकट हजरो है। हुजा घाटी म गणेश नाम का नगर है। तक्षशिला के निकट हरो है। बन्नू नगर प्रसिद्ध है ही।

पजाब मे लाहौर (लाहुर) है। सिध म कशमूर है। प्रसिद्ध नगर अलोर (अलर) है। थट्टा के निकट झील हडियेरु(र) है। कराची के मघू पीर का स्थान है। कराची से ही ४० मील दूर पुराना पत्तन बनमूर है।

ये सब नगर मैंने A Traveller s Guide to Pakistan, Hilary Adamson and Isobel Shaw The Asian Study Group P B No 1552 Islamabad (394 pages Rs 125/) से लिये है। यदि वहाँ के रहने वाला से बातचीत होनी या लगातार समाचारपत्र पढ़ने को मिलत, तो यह सूची विस्तृत होती।

भारत के बाहर भी उत्तर मे मगोलिया की राजधानी उलन बतूर है। उससे तिब्बत और यक्षो का सम्बध अभी खोज की राह देख रहा है। इधर मध्य पूव मे इराक (ममापोटामिया) की सुमेर सभ्यता खुदाई के बाद आज के इतिहासकारो द्वारा ससार की सबसे पुरानी ज्ञात सभ्यता कही जाती है। इसके रिकाड से पता चलता है कि सुमेरी जाति पूव से इराक म आई थी और वहाँ उसने सभ्यता स्थापित की थी। उनके फारस की खाडी पर स्थित दो प्रसिद्ध

नगर जिनकी खुदाई से वह सभ्यता प्रकाश में आई उर और उरुक हैं। 'ऊर नगर और 'उरुक' छोटा नगर साथ ही सुमेर नाम—क्या कुछ राक्षस साम्राज्य से सम्बन्ध की घंटी नहीं बजाता। पर अभी बहुत खोज करनी बाकी है।

नारद मुनि

भारत में बच्चों से लेकर बड़ों तक कौन ऐसा है जिसने नारद मुनि का नाम न सुना हो। वे विद्याओं का जानने वाले सब स्थानों पर विद्यमान और बिगड़ी को बनाने वाले थे। साथ ही कुछ स्थलों पर वे बनती को बिगाड़ने वाले भी थे।

इन्द्र आदि देव उनका सम्मान करते थे परन्तु वे देव जाति के नहीं थे। वे विष्णु के सहचर थे। यक्षों से अमृत देवों को दिलवाने में और गन्धर्वों द्वारा सोम देवों को बेचने में उनका हाथ था— यह हमें वेद से ज्ञात होता है। सम्भवतः वे यक्ष या गन्धर्व वंशी थे। अथर्ववेद में कई स्थलों पर उनका वर्णन आया है।[1] ये हरिश्चन्द्र राजा के पुरोहित थे और उन्हें पुरुषमेध यज्ञ करने की राय इन्होंने दी थी।[2] पूजा की यह प्रथा यक्षों में बहुत प्रचलित थी। वशा धेनु का मांस ब्राह्मण को खाना चाहिये या नहीं इस पर भी इनकी राय अथर्ववेद में कई बार आई है।

महाभारत में नारद को ब्रह्मा का मानस पुत्र कहा गया है।[3] ब्रह्मा (ब्रह्मा) यक्षों के कुलदेवता थे और उनको हम भारतीय सर्जक मानते हैं। नारद को धर्मतत्त्वज्ञ वेदान्ती, राजनीतिज्ञ एवं संगीतज्ञ बताया गया है। ये जहां जी चाहे वहाँ भ्रमण करते रहते थे।

नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र और विष्णु के तीसरे अवतार थे।[4]

नारद भी बृहस्पति के समान या वसिष्ठ विश्वामित्र परशुराम के समान आचार्यों का कुल था जहां सर्वश्रेष्ठ शिष्य को नारद के पद पर बिठाकर उसकी परम्परा को आगे चलाया जाता था। तभी हम सैकड़ों वर्ष के व्यवधान में समय समय पर इनका नाम पाते हैं। आरम्भ में इनकी सहायता से इन्द्र गन्धर्वों से साम प्राप्त करते दिखाए गए हैं। अन्य अनेक स्थलों पर वर्णन के उपरान्त हम राम के समय में (लगभग १६५० ईसा पूर्व) में इनका उल्लेख पाते हैं। तदुपरान्त महाभारत काल में (लगभग १५०० से १४०० ईसा पूर्व) में तो इनका जगह जगह उल्लेख आता है। पर्वतों में अर्जुन के जन्म के समय ये उपस्थित थे।[5] (मतलब ये पर्वतवासी किरात (यक्ष) कुल के थे।) द्रौपदी के स्वयंवर में गन्धर्वों

1 अथर्ववेद 5 19 9 12 4 16 24 41 मैत्रायणी संहिता 1 58
2 ऐतरेय ब्राह्मण 7 13
3 महाभारत आदि पर्व 1 111
4 भागवत पुराण 1 3 8 मत्स्य पुराण 3 6 8
5 आदि पर्व 114 40

नारद का वदिक विद्याओ के आचाय के रुप म छान्दोग्य उपनिषद् म भी वणन हुआ है। इनके नाम की प्रतिष्ठा प्राचीन बौद्ध साहित्य म भी थी जहा इन्ह मह ब्रह्मा कहा गया है। ये दोनो शब्द यक्षा से सम्बन्धित हैं। मह वडा और ब्रह्मा या बरह्म रुप म आज भी यक्ष गाव गाव मे पूजा जाता है।

मुनि शब्द स्वय यक्ष जनजाति का द्योतक लगता है। देव जनजाति म विद्वान् को ऋषि कहा जाता था शिव के पूजक को तपस्वी या योगी, और ब्रह्मा कुबेर के पूजक को मुनि। नारद सवत्र मुनि करके प्रसिद्ध हैं सिवाय कुछ स्थलो के जहा उन्ह ऋषि बताया गया है। लेकिन आज भी जनता उन्ह मुनि करके पहचानती है।

नाटयवेद के लिखने वाले जिसे पाँचवा वेद कहा गया है भरत मुनि थे। उन्ह कहा ऋषि नही कहा गया है। इसी प्रकार मतग मुनि ने सगीत शास्त्र रचा था। हम जानते हैं कि यक्ष, गन्धव किन्नर आदि किरात जनजातिया नाटय सगीत नृत्य की बहुत प्रेमी थी। नृत्य अप्सराओ से चला है।

अगस्त्य ऐसे व्यक्ति हैं जिन्ह ऋषि और मुनि दोना कहा गया है। वे एक अद्भुत महापुरुष थे जिनका विश्वकोषीय ज्ञान था अनुपम मेधा थी। भारत म घूम घूम कर उन्होने सब जनजातियो की सस्कृति, रीति रिवाज को एकत्र किया था और फिर दक्षिण म धम का प्रचार किया था।[1] अन्य जनजातिया से व्यवहार करने के कारण मानवा ने उन्हे सप्तर्षियो म मान नही दिया। फिर भी उन्हें मानना पडा कि यक्ष सस्कृति और देव सस्कृति दोना का मेल अगस्त्य ने किया।[2]

इसी प्रकार कपिलस्थान (हरद्वार) के कपिल मुनि थ जो साख्य दशन के प्रणेता है और जिनका सगर क पुत्रो से झगडा हुआ था। शाक्या की राजधानी कपिलवस्तु उनके शिष्या ने बसाई थी।

एक अन्य प्रसिद्ध मुनि पालकाप्य थ जिन्होन हस्ति पालन पर पुस्तक लिखी थी। वे भी पूव म रहन वाले सम्भवत यक्ष कुल के थे।

ऋक्सहिता के केशि-सूक्त म केशधारी, मले गेरुए' वस्त्र धारण किए हवा म उडते विष पीते मौनय से उन्मदित और देवेषित 'मुनियो का चित्रण किया है। मुनियो का उल्लेख एक दो जगह और भी ऋग्वेद म है। एसा लगता है कि चमत्कार दिखाते हुए मुनिया के दशन से सूक्त के ऋषि विभ्रम मे पड गए हैं कि व उन्माद अथवा आवेश म हैं। उनका निवृत्तिपरक जीवन वदिक जीवन स भिन्न था इसी कारण मुनिया का आचरण ऋषिया को अद्भुत लगता था। कात्यायन की सवानुक्रमणी के अनुसार इस सूक्त म निम्न 'वातरशन मुनिया के नाम थ— जूति वातजूति विप्रजूति, वृषाणक करिक्रत एतश और ऋष्यशृग। ऋष्यशृग

1 अरुण भारतीय पुरा इतिहास कोश
2 वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड 11 | 93

नाम परवर्ती साहित्य म अनेक स्थला पर आया है और उनकी कथा जानी पहचानी है। ऐतरेय ब्राह्मण म एक एतश का उन्मत्त मुनि के रूप म उल्लेख आया है।[1]

ताण्ड्य ब्राह्मण म 'तुरा देवमुनि' का वणन है।[2] ऋक्संहिता के अरण्यानी सूक्त के द्रष्टा एरम्मद देवमुनि थ। ताण्ड्य ब्राह्मण म ही 'मुनिमरण' नामक स्थान का उल्लेख है और यतिया को इन्द्र का शत्रु बताया गया है।[3] शतपथ ब्राह्मण म तुर कावषेय को मुनि कहा गया है।[4] शकराचाय शारीरकभाष्य म एक श्रुति का उद्धरण देते हैं जिसके अनुसार कावषेय ऋषि वेदाध्ययन और यज्ञ के समथक नहा थ।[5] यह विदित है कि कवष ऐलूष सरस्वती तट पर हो रहे यज्ञ म अब्राह्मण होने के कारण निकाल दिए गए थे।[6] तुर कावषेय उनके पुत्र थे। तैत्तिरीय आरण्यक म गगा-यमुना के मुनिया को नमस्कार किया गया है।[7]

मुनि शब्द का अथ क्या है यह खो गया है। सस्कृत के अनुसार मुनि शब्द की व्याख्या महाभारत मे इस प्रकार की गई है —

मौनाद्धि स मुनिर्भवति नारण्यवसनान्मुनि ।[8]

(कोई भी साधक मौन व्रत का पालन करने से मुनि बनता है केवल वन म रहने से नहा।) यह ठीक प्रतीत नहीं होता इस व्याख्या पर नारद जसे वाचाल व्यक्ति खरे नहा उतरते। यह यक्ष दोनों का शब्द है जो उससे सस्कृत और हिन्दी आदि भाषाओं म आ गया है। इससे अच्छी उपनिषदा की व्याख्या है। उपनिषदा के अनुसार अध्ययन यज्ञ दान एव श्रद्धा स जो ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है उसे मुनि कहा गया है।[9]

मुनि शब्द स एक अन्य रुचिकर तथ्य पता लगता है। तीसरे दशक मे एक इतिहासकार ने मान्यता रखी थी कि शाक्य मल्ल वज्जि आदि जनजातिया यक्ष कुल की थी। उनके आचार विचार और व्यवहार अलग थ, तथा बुद्ध और महावीर के मूर्तियों की मुखाकृति बिल्कुल पाई गई यक्ष मूर्तिया के समान था। विस्तार से इसी पुस्तक म अन्यत्र देखिए। इस बात पर बल हम इस रोचक तथ्य स मिलता है कि बुद्ध को शाक्यमुनि कहकर पुकारा गया है महावीर को जिनमुनि (आज भी जन मुनि प्रसिद्ध है) ऋषि तपस्वी या योगी कहकर नहीं।

---

1 वैदिक इडेक्स भाग 2 पृ० 167
2 ताण्डय ब्राह्मण भाग 2 पृ० 601
3 ताण्डय ब्राह्मण भाग 1 पृ० 208
4 शतपथ ब्राह्मण भाग 2 पृ० 1041
5 ब्रह्मसूत्र 3 4 9
6 ऐतरेय ब्राह्मण 8 1
7 तै आ भाग 1 पृ० 166
8 महाभारत उद्योग पव 43 35
9 बृहदारण्यक उपनिषद् 3 4 1 4 4 25 तैत्तिरीय आरण्यक 2 20

विवाह पद्धतिया

हमारे धम ग्रन्था म आठ प्रकार क विवाह का वणन है।

महाभारत आरण्यक पव १०२ अध्याय म भीष्म न आठ प्रकार की स्वीकृत विवाह पद्धतिया वतलाइ थी —

(१) ब्राह्म विवाह— गुणी पात्र का बुलाकर यथाशक्ति गहने और धन देकर कन्या देना।

(२) आर्ष विवाह— एक गाय और एक बल लेकर विवाह।

(३) आसुर विवाह— धन देकर कन्या लेना।

(४) राक्षस विवाह— बलपूवक कन्या का हरण करना।

(५) गान्धव विवाह— आपस की राजी स माला डाल कर विवाह करना।

(६) पशाच विवाह— असावधान कन्या का छल से ले जाकर विवाह करना।

(७) प्राजापत्य विवाह— दाता क घर स्वय जाकर कन्या मागना।

(८) दव विवाह— यज्ञ म कन्या ग्रहण करना।

इनम ब्राह्म विवाह और दव विवाह और आर्ष विवाह अलग अलग है। यदि देखा म ब्रह्मा होते तो दोनो का एक ही नाम होता और एक ही रूप होता जोकि नही है। सब स पहले नम्बर पर ब्राह्म विवाह का आख्यान है। अथ है यह सबस पुराना है और यक्ष (ब्र मा या ब्रह्मा) कुल म प्रचलित था। इसक साथ इसी प्रजाति के गन्धव और राक्षस विवाह का उल्लख है। राक्षस विवाह एक युद्ध प्रिय कुल का विवाह बन गया था जहा पुरुष को प्रधानता मिली और स्त्री कवल भोग्या या अपहरण की वस्तु समझी गई। जहा रामायण काल (१६५० १६०० ईसा पूव) म प्राचीन रीतिया को मान्यता था और रावण का काम धम विरुद्ध समझा जाता था वहा महाभारत काल (१५०० १४०० इसा पूव) तक वह भारतीय समाज की मान्य नीति बन गया था उदाहरण के रूप म भीष्म का अम्बा, अम्बिका अम्बालिका का हरण है कृष्ण का रुक्मिणी हरण और अजुन का कृष्ण की सलाह पर सुभद्रा हरण।

यही आज कमकाण्ड बन गया है। विवाह क समय तेल चढाना उबटन या हल्दी लगाना प्राचीन काल के वस्त्र पहनाना और मौर (मुकुट) लगाना सहरा बाधना घोडे पर जाना तलवार स तोरण मारना, दहेज लना अर्थात् लूट का माल लकर लौटना आदि सब राक्षस विवाह के प्रभाव है जिनम अग्नि की शपथ और फेरे लगाना दव विवाह के रूप म मिल गया है।

सक्क

बौद्ध और जन धर्मो म इन्द्र का सक्क नाम अत्यन्त प्रचलित है। राइस

इलियट का मत है कि शक्र अलग था, इन्द्र का स्थान उसी ने ले लिया था।[1] शक्र कुबेर और नाग देवता की भांति था।

जैसा हम जानते हैं इन्द्र एक पद था जिस पर चुनाव होता था। पुराणों से हम समय समय पर इन्द्र बने व्यक्तियों के नाम जानते हैं। ययातिपुत्र नहुष भी इन्द्र चुना गया था। यक्षराज स्कन्द भी इन्द्र चुना गया था। इसी कारण जब किसी महर्षि या राजा का अधिक नाम होता था तब इन्द्र अप्सराओं को भेजकर उसे डिगाने का प्रयत्न करता था कि कहीं उसका इन्द्र पद न छिन जाए।

मेरे विचार से उत्तर पूर्वी भारत में यक्ष प्रभाव बहुत अधिक होने के कारण संभव या तो स्कन्द का ही इन्द्र पद याद किया गया होगा या किसी और यक्ष का नाम होगा जो इन्द्र चुना गया होगा।

काम का भस्म होना

यह सकल्पना यक्षों से राक्षसों के अलग होने पर प्रवर्तित हुई। यक्ष कामदेव की पूजा करते थे मातृ-पूजा करते थे। लेकिन कार्तिकेय के अधीन यक्षों के एक भाग का अन्य गणों के साथ सम्मिलन होने पर उनमें पुरुष पूजा का प्रभाव बढ़ा। प्राचीन प्रथा के अनुशीलन करने पर पता चलता है कि राक्षसों के शक्तिशाली होने पर लिंग पूजा का प्रभाव बढ़ा और महादेव का प्राधान्य हुआ। इसी संघर्ष को कामदेव के भस्म होने की सकल्पना दर्शाती है। महादेव के गणों और मार या कामदेव के पूजकों में लड़ाई हुई जिसमें मार भस्म हो गया। लेकिन वह अनंग बनकर भी जीत गया। पर्वत पुत्री पार्वती की शिव पर विजय हुई या मार की ब्रह्मचर्य पर विजय हुई।

इसी प्रकार राक्षसों की दक्षिण विजय पुराण में दी हुई एक कहानी दर्शाती है। इसमें गोदावरी तट पर ऋषियों के आश्रम से उन्मत्त लिंग किए शिव के गुजरने का वर्णन है। उन्हें देखकर ऋषि पत्नियां कामातुर होकर उनके पीछे भागीं। ऋषियों ने उन्हें बहुत रोका परन्तु वे नहीं मानीं। अंततः ऋषियों को भी शिव का पूजक बनना पड़ा।

इच्छारूप होने की सकल्पना

यक्ष राक्षस, गन्धर्व, किन्नर वानर ऋक्ष आदि किरात प्रजाति की जातियों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी उनका इच्छारूप होना। वे जैसा चाहे रूप धर लेते थे। इसका अर्थ मास्क या मुखौटे से था। वे अपने मुख पर एक नकली चेहरा चढ़ा लेते थे। इसका एक रूप दक्षिण भारत में कथकलि नृत्य में ही नहीं बचा रह गया है आजकल भी सारे उत्तरी भारत में त्यौहारों पर इसी खिलौने वाले कागज के मुखौटे बनाकर बच्चों को बेचते हैं। बच्चे इन्हें मुंह पर लगा कर खान

1 रामस इलियट कुलिस्ट इण्डिया पृष्ठ 35

पर रवड फँसा लेते हैं और आपस म एक दूसर का इरा कर खलत हैं। एक समय यह प्रथा पूरे भारत म ही नहीं, स्पेन तक म प्रचलित थी।

गगा

गगा नाम एक किरात निषाद धातु म निकला है— कग (कग > गग)। गगा का मौलिक अर्थ आज भी हिमालय की भारतीय किरात (यक्ष) भूमि म नदी होता है और यह शब्द अनेक नदियों से जुड़ा हुआ है कश्मीर की कृष्णगगा स लेकर धौली गगा, दूध गगा, नील गगा आदि तक।

रामायण के बालकाण्ड म लिखा है कि किस प्रकार गगा का सात धाराएँ— तीन पश्चिम की ओर तीन पूर्व की ओर और एक मध्यदेश का— पवित्र और समृद्ध बनाती हैं।

यह ध्वनि गग > कग > किआड > काग हिमालय और उसकी पृष्ठभूमि तिब्बत से निकली नदियों के नाम म है। जैसे मीकाग जो हिमालय म तिब्बत स निकलती है और दक्षिण-पूर्व एशिया की सबसे बडी नदी है। मी या म का किरात भाषाओं म अर्थ है माता। अर्थात् गगा मया। यह गगा मया (मीकाग) २६०० मील लम्बी है हमारे देश की हर नदी (सिंधु १८८० मील ब्रह्मपुत्र १८०० मील तथा गगा १५६० मील) स लम्बी। याग-टी-सी किआग तिब्बत म निकली चीन की बडी नदी म भी किआड ध्वनि है।

गाड का दूसरा ध्वनिरूप साउ या सांग होता है जिसका अर्थ भी नदी है। यह भी तिब्बत की अनेक नदियों स जुडा है। ब्रह्मपुत्र का तिब्बत म नाम है साड पो (तिब्बती नदी)। अन्य है साड बा (काली नदी) साग काई (लाल नदी) और चीन की प्रसिद्ध हाड हो (किरात नदी या पीली नदी)।

सरस्वती देवों की पूज्य नदी थी गगा यक्षों की नदी थी और आज वह ही परम-स्मरणीय और पापनाशक है। इसी प्रकार गौड ब्राह्मण सारस्वत ब्राह्मण स ऊचे समझे जाते हैं। गौड प्राचीन काल म हरिद्वार के पास का गगा-यमुना का प्रदेश कहलाता था।

प्रयाग

मैं प्रयाग का अर्थ दो नदियों के मिलन स्थल पर बसे होने के कारण सगम समझता था। गढ़वाल म तो ये चप्पे चप्पे पर स्थित हैं देवप्रयाग रुद्रप्रयाग कर्णप्रयाग नन्दप्रयाग, विष्णुप्रयाग आदि। और गगा यमुना के सगम पर बसा प्रयाग है ही। किन्तु मानक हिन्दी कोश के तीसरे खण्ड म प्रयाग का अर्थ देखने पर मुझे असलियत का पता चला। प्रयाग का अर्थ है वह स्थान जहा बहुत यज्ञ हुए हो। फिर काशी का ऐतिहासिक भूगोल शोध ग्रन्थ म श्री ठाकुर प्रसाद वर्मा के 'प्राक्कथन म पढा 'वाराणसी प्राचीन काल स ही यक्षों के लिए प्रसिद्ध रही है। जहा पर प्रकृष्ट याग (यज्ञ) होते हैं उस स्थल को प्रयाग कहा जाता

है। वाराणसी में भी कम से कम तीन प्रयाग के उल्लेख मिलते हैं। एक प्रयाग आदि केशव मंदिर के समीप वरणा-गंगा संगम पर बताया जाता है। दूसरा प्रयाग वरणा नदी के तट पर मंडिया और ककरहा घाटों के बीच अवस्थित था और तीसरा प्रयाग दशाश्वमेध घाट पर स्थित है।' इस तीसरे स्थान का अब प्रयागलिंग कहा जाता है जो यक्षों पर शिवगणों की विजय दर्शाता है। इसका दूसरा नाम ब्रह्मेश्वर है यानी ब्रह्मा (ब्रह्मा — यक्षो) का ईश्वर।

यक्षगान

यक्षगान देश के दक्षिण-पश्चिमी तट का लोकनाट्य है। लगभग बारहवीं या तेरहवीं शताब्दी में इसका अस्तित्व स्थापित हुआ। इसके कथानक महाभारत रामायण व भागवत से चुने जाते हैं व जिन उपकथाओं में युद्ध की प्रमुखता है उन पर जोर दिया जाता है।

यक्षगान रात्रि भर होने वाला प्रदर्शन है। अगर किसी कारण से चुनी हुई उपकथा समाप्त हो जाती है तो दूसरी कथा शुरू हो जाती है और यदि दूसरी कथा सूर्योदय तक पूरी नहीं हो पाती है तो उसे संक्षिप्त कर दिया जाता है।

यक्षगान का रोचक पात्र हनुमानायक या कोडंगी होता है उसकी पोशाक अन्यों से भिन्न समसामयिक होती है उसका कर्तव्य दर्शकों को हँसाना भी है। वह प्रमुख पात्रों की घोषणा करता है और एक दृश्य को दूसरे दृश्य से व एक उपकथा को दूसरी उपकथा से जोड़ता है।

समस्त मूलपाठ कविता व संगीत में होता है जिसका पाठ भागवत करता है। नाटक शुरू होने से पहले नगाड़े की चोट और गायकों द्वारा प्रमुख पात्रों का परिचय कराया जाता है।

इसमें नृत्य की ओजपूर्ण शैली वीरोचित है प्रेम, दया जैसे संवेगों की अभिव्यक्ति अल्प मात्रा में हुई है। इसलिए इसके लिए स्त्री पात्र उपयुक्त नहीं। पात्रों का संवाद अलिखित होता है। इसे याद नहीं करा जा सकता। यह अभिनय की क्षमता पर निर्भर है।

इस लोकनाट्य का अत्यधिक प्रभावशाली अंश है इसकी सजीव रूपसज्जा व भड़कीले रंगों की पोशाकें। इनके विशेष में नीले व लाल परिधान, सीने पर सुनहरी पट्टी व गले में आभूषण पहने जाते हैं। सिर पर भड़कीले रंगों का मुकुट होता है। नीचे का वस्त्र घघराला, अक्सर एक ही रंग का होता है व किनारा विरोधी रंग का होता है। दानव व बुरी आत्माएँ ऐसे मुखौटे लगाते हैं जिनसे दुष्टता का भाव उत्पन्न हो। गंधर्व आदि आँखों के बीच लाल व काली लकीरें खींचकर छवि विस्मयकारी बना लेते हैं।

छऊ नृत्य

भारपण्ड म मयूरभज और तीन अय स्थाना का यह युद्ध नृत्य है। इस कहते है अशोक के काल म दवताओ ने किया था।

यह नृत्य मुखौट लगाकर या मुख सीप पोतकर किया जाता है।

छउ(र) स इसका सम्बध यक्ष प्रजाति स प्रकट होता है। इसम शिव का पूजन होता है। गणश वन्दना स यह आरम्भ होता है। इसम चालें होती ह—वीर (य१) चाल असुर चाल राक्षस चाल वानर हम, मयूर तथा हाथी चाल आदि।

नन्दा की राज जात

उत्तराखण्ड हिमालय म आयाजित पावती (नन्दा-प्रा रखन क कारण नन्दा नाम) का अपन मायक स तिर र स्थान पहचान क लिए हर बारह वप बाद यह यात्रा आयाजित होती है— गढवाल क एक गाव नौटी म सुदर हम कुण्ड १ ५०० फुट) स आग नन्दापुरी पवत शिखर की ओर। इस पहचान राजवनी पवर जात है। राज यक्षा का दूसरा नाम था।

विभिन्न गांव स स्थाना म दविया की छनोलियों आकर इस नन्दा की यात्रा म मिलती हैं। इन सभी दवी दवताआ की छनोलिया क साथ एक वयावृद्ध व्यक्ति रहता है जिसे जाख कहत ह। इस आदरणीय पात्र का वशभूषा अलग होती है। जाख—जक्ख—यक्ष की याद दिलाता है। वयोवृद्ध का जाख कहन का अथ यह है कि प्राचीन काल म यह यक्ष का उत्तरा था।

मछली

आज भी लखनऊ क प्रत्यक पुरान मकान के द्वार पर दो घूमी हुई मछलिया का चिह्न मिलता है। यही उत्तर प्रदश सरकार का चिह्न ह। अवध म घर घर अब भी यात्रा पर जात समय और दशहरे पर सवर आंख खुलत ही इन्ही मच्छी का शकुन दखने का रिवाज है।

वही मछली प्राचीन काल म सुदूर दक्षिण क सबस पुरान पाडय राज्य का राज्यचिह्न था।

प्राणवान् भाषा

भाषा वही प्राणवान् होती है जो जनता म बोली जाती है। जनता जनादन अपने प्रतिदिन के जीवन अनुभवो को शब्दा के ढाचे म ढालत रहती है और वे भाषा का भण्डार बढात रहत है। यहा कुछ जनता द्वारा गढ रुचिकर शब्द एकत्र किए गए ह अधिकतर प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डा इद्रचन्द्र शास्त्री द्वारा बताए हुए। बसी अजीब व्युत्पत्ति है!

अशोक ने देवानांप्रिय का पद ग्रहण किया था। उसन सब स्तम्भ तथा

और शिलालेखों में उसका इसी पदवी से वर्णन है। आज चाहे वेल्स आदि इतिहासकार उसे संसार का सबसे महान् राजा कहें किन्तु जनता की व्यावहारिकता प्रशंसा-योग्य है। बाद के साहित्य में उस शब्द का अर्थ 'मूर्ख' हो गया।

महात्मा बुद्ध के झूठे अनुयायियों ने जनता को और कई नाम निर्माण करने का अवसर दिया। बुद्ध को मानने वालों से बुद्धू शब्द बना। भन्ते से भाडू। ईरान का उत्तर-पूर्वी भाग सोगद (संस्कृत में सुग्ध) था जहाँ प्राचीन काल में सबसे विशाल बौद्ध विहार था और बड़े-बड़े बौद्ध रहते थे। उनमें खादी के कारण फारसी का चुगद (सुग्ध) शब्द गाली के रूप में आज तक प्रयुक्त होता है। पाखण्ड सूत्र में धर्म का पर्याय था। पर धर्म की झूठी दुहाई देने वाले पाखण्डी कहलाए और पाखण्ड और पाखण्डी दम्भ और दम्भी के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे।

जैन मुनि अपने केश लुंचित करते थे तो उन्हें साधारण लुंचा कहा जाता था। फिर जब वे बालकों बालिकाओं को भी इसी प्रकार बाल लुंचन करने लगे तो वह लुंचा—फिर लुच्चा गाली बन गया और उनके आने ही लोग बाल बच्चों को घर में छिपाने लगे। पार्श्वनाथ के चेलों को पासत्था कहा जाने लगा।

बौद्धों से मावली शब्द बना। महत्तर से मेहतर, भाट से भूत। आज के महान्त का असली अर्थ अज्ञान मूलक था। भगतन का आज वेश्या के अर्थ में प्रयोग किया जाता है शायद देवदासी के कारण।

बिहार के छोटा नागपुर की पहाड़ियों में चुटिया नाग नाम के आदिवासी रहते हैं जैसे-मांड मगल प्रकृति। चुटिया नाग का अपभ्रंश छोटा नाग(पुर) हो गया और चूतिया शब्द बेवकूफ के लिए प्रयोग में इन्हीं के कारण आई।

इसी प्रकार एक शब्द है वैधेय— विधि के अनुसार चलने वाला। परन्तु इसे मूर्ख के लिए प्रयोग किया जाता है। जमाने पर कितनी अच्छी टिप्पणी है जो विधि के अनुसार चलेगा वह मूर्ख नहीं तो क्या है!

कुछ शब्द ऐसे हैं जो प्राचीन समय में उसी रूप में काम आते रहे हैं धन के मामले में। हिन्दू काल में चाँदी के सिक्के को रौप्य (चाँदी से बना) कहा जाता था आज भी वह रुपया कहलाता है। टका टका कहलाता है। और मिस्र के सुल्तान के स्थान को टकशाला कहते थे वह आज भी टकसाल कहलाती है।

एक बड़ा सुन्दर शब्द है आत्मा वह आपणा होता हुआ अपना हो गया। कितना मीठा, मेरा मन का पीड़ बनाता हुआ।

ईरान इराक या असुर सभ्यता में सरदारों को मलूच कहते थे जिसका पर्याय रूप ईरानी साम्राज्य में सत्रप या सत्रिप हो गया और मुसलमानों की ईरान तथा भारत की विजय के बाद यह शब्द उत्तर पश्चिमी भारत में भी आ गया। महाराष्ट्र का ... शब्द भी को सम्वाद रूप[1] जो आरम्भ में अन्द

---

१ उपाध्याय भगवतशरण असुर इण्डिया पृ० ९–१८

जावा तथा नेपाल में मिलता है। ब्रह्मा (म्यांमा) में भी यह पाया जाता है। पश्चिमी भारत से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

रुद्राक्ष से शिव की पूजा जाना है। इसकी खपत दक्षिणी भारत में बहुत अधिक है। एकमुखी रुद्राक्ष अत्यन्त दुर्लभ दाना है जो केवल नेपाल में मिलता है। दो दाने जुड़े हुए 'गौरीशंकर' कहलाते हैं जिनका विशेष धार्मिक महत्त्व है। यह भी केवल नेपाल के दानों में मिलते हैं।

अच्छे दाने को रुद्राक्ष कहते हैं सादे दाने को भद्राक्ष कहते हैं।

रुद्राक्ष का चिकित्सकीय मूल्य बहुत है परन्तु हमारे वैद्यक ग्रन्थों में चरक, सुश्रुत, वाग्भट, धन्वन्तरि से लेकर नरहरि (१२वीं शताब्दी ई०) और भाव मिश्र (१५वीं शताब्दी ई०) तक इसका कोई वर्णन नहीं है।

भोजपत्र— भोजपत्र का वृक्ष बड़ा होता है और ठण्डे स्थान पर स्थित होता है। संस्कृत में इसे भूर्ज कहते हैं। इसकी छाल (त्वचा) नरम होती है और आसानी से उतर जाती है। यह हिमालय पर्वत में पाया जाता है।

पुरातन काल में भोज की छाल को लिखने के काम में लाते थे। आज भी भोजपत्र पर लिखे अनेक ग्रन्थ देश और विदेशों के ग्रन्थालयों में सुरक्षित हैं। दस्तावेज आदि भी इसी पर लिखे जाते थे। इसी कारण संस्कृत में दस्तावेज को भूर्जम् कहते हैं। इसकी छाल अपने आप ही उतरती रहती है और वहाँ में खूब सारा बिछा पड़ी होती है। बहुत सारा काम में आये बिना नष्ट हो जाती है।

भोजपत्र वल्कल के रूप में शरीर पर भी धारण किया जाता था। इससे घर की छत छाई जाती थी। बिछौने में गद्दे के काम आता था। डलिया में बाँधकर छाता बनाया जाता था। मोटी लकड़ी बर्फ पर चलने में सहायता करती थी। जहाँ से यक्ष जनजाति का उद्भव माना जाता है वहीं ये वृक्ष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अपितु यक्ष और वृक्ष में भी ध्वनि साम्य के कारण सम्बन्ध लगता है। सबसे पुराना सन्दर्भ प्राचीन साहित्य में उर्वशी द्वारा पुरुरवा को भोजपत्र पर प्रेम सन्देश लिखकर भेजने का मिलता है।

चन्दन— चन्दन के पेड़ केवल दक्षिण भारत में मिलते हैं। यह बहुत सुगन्धित होता है तथा शीतलता प्रदान करता है। यह द्राविड़ देश में उपजा भक्ति के साथ हमारी पूजा का एक भाग बना है। जैसा हम ऊपर लिखा चुके हैं दक्षिण में यक्ष राक्षस और नागा के आने पर ही द्राविड़ (वनवान्) संस्कृति का जन्म हुआ।

बेल— यह छोटे या मध्य आकार का पेड़ है। सारे भारत में पाया जाता है। इसका फल सुगन्ध देता है सुस्वादु होता है तथा बहुत लाभ पहुँचाता है।

हिन्दू इसे उर्वरता का प्रतीक मानते हैं साथ ही पवित्र तथा अत्यन्त समृद्धि देने वाला। इसके पत्ते तीन पर्णकों में विभक्त होते हैं जो सत्त्व, रजस और

तमस के प्रतीक हैं, जाग्रत, सुषुप्त और स्वप्न अवस्था दिखलाते हैं और भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल दर्शाते हैं।

बेलपत्र शिवजी की पूजा की सबसे आवश्यक सामग्री है। इनके बिना शिवजी की आराधना अधूरी समझी जाती है। ये शंकर का आहार माने गए हैं। इस प्रकार यह वृक्ष हमारे धर्म में नाग, गरुड़ तथा अन्य आदिवासियों द्वारा सम्मिश्रण *किया गया है।*

नारियल— हिन्दुओं के मांगलिक अवसरों पर नारियल सबसे प्रमुख सामग्री है। विवाह के समय, विदा के समय, सन्तान के जन्म के समय आदि सब समयों पर इसकी भेंट दी जाती है।

यह वृक्ष भी अधिकतर दक्षिणी और पूर्वी भारत में पाया जाता है। इसका *अर्थ है कि यह आर्यों की बजाय अन्य जनजातियों की हमारी संस्कृति को देन है।*

पीपल— पीपल का पेड़ हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में बहुत पूज्य है। इसी कारण इसका वनस्पतिक नाम 'फाइकस रिलिजिओसा' रखा गया है। इसके तमिळ, मलयाळम, कन्नड़ और तिब्बती में अलग अलग नाम पाए जाते हैं। सिंहली में इसे 'बो' कहते हैं जो बुद्ध के बोधि वृक्ष का संक्षेप में रह गया है। संस्कृत में भी इसके बीस से अधिक नाम हैं जो इसकी पवित्रता के द्योतक हैं। वेद और गीता में इसे अश्वत्थ कहा गया है ("इसका अर्थ है ऐसा लकड़ी जो कल तक भी नहीं टिकेगी) जो इसकी लकड़ी के घटिया और हल्की होने का सटीक वर्णन है। *यह पूरे दक्षिणी एशिया में बहुतायत से होता है।*

पद्म पुराण में पीपल और बरगद की उत्पत्ति इस प्रकार दी है। एक बार शिव और पार्वती के रति सुख में अग्निदेव ने विघ्न डाला। इस पर पार्वती ने सब देवों को वृक्ष बन जाने का शाप दिया। ब्रह्मा पीपल बन गए और विष्णु वट बन गए। इस प्रकार पीपल को ब्रह्मा का रूप बताया गया है जो यक्षों के मूल पुरुष का नाम (ब्रह्मा) है।

मोहनजोदड़ो की मोहरों पर भी पीपल पर पूजा के सात देवी-देवता खुदे हुए हैं। सिंधु सभ्यता को अधिकतर विद्वान आर्येतर मानते हैं।

शाक्य मुनि गौतम (मुनि का शब्द दर्शाता है कि बुद्ध का यक्ष जाति से सम्बन्ध था क्योंकि मुनि शब्द यक्षों के साथ आया है जैसे ऋषि देवों के साथ और तपस्वी शिव के साथ) ने गया के पास पीपल के पेड़ के नीचे समाधि लगाकर बोधि ज्ञान प्राप्त किया था, इसी कारण पीपल को साधारणतः बोधि वृक्ष का नाम संस्कृत और बौद्ध साहित्य में दिया जाने लगा। कुछ विशेष पर्वों पर इसका सम्बन्ध *धन की देवी लक्ष्मी से जोड़ा गया है जो यक्षों की पूज्य थी और आज हर भारतीय* की। इसकी जड़ के चारों ओर शिलाएँ लगाई जाती थीं जो यक्ष चैत्य का एक रूप था।

पीपल के चारों ओर मन्त्र पढ़ते हुए धागे लपेटे जाते हैं नाना वांछित हुए। इसके तने पर सिन्दूर का लेप किया जाता है शायद प्राचीन पशु-बलि का द्योतक हो। सन्तान प्राप्ति के लिए स्त्रियाँ इस पर भेंट चढ़ाती हैं। मृत आत्माओं की तुष्टि के लिए इसकी शाखा पर पानी भरा पात्र लटकाया जाता है। इसमें सब नागों का निवास पद्म पुराण में लिखा है। मुण्डन आदि संस्कार इसके नीचे कराए जाते हैं। इस विशाल वृक्ष के नीचे सैकड़ों यात्री विश्राम पाते थे। पूजा की और भी विधियों से यह सिद्ध है कि यक्ष आदि आर्येतर जनजातियों का यह प्रिय वृक्ष है।

पीपल के वृक्ष के समान पूजित और सम्मानित पेड़ संसार में विरला ही होगा। भगवान् बुद्ध ने एक जातक कथा में इसे वृक्षों का राजा बताया है। पद्म पुराण में पीपल को ब्रह्मा का रूप तथा वृक्षराज कहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्णजी ने इसे सब वृक्षों में श्रेष्ठ बताया है। एक प्राचीन कवि ने कहा है कि पीपल की जड़ में ब्रह्मा हैं तने में विष्णु और पत्ते पत्ते में देवताओं का वास है। पीपल की छाल से निकाले हुए रंग को ही काषाय रंग कहते हैं जिससे भिक्षुओं के चीवर रंगे जाते थे।

भरहुत स्तूप की मूर्तियाँ अत्यन्त प्राचीन हैं। इनमें हम देखते हैं कि भक्तगण पीपल की पूजा कर रहे हैं और अप्सराएँ उन पर पुष्पों की मालाएँ फेंक रही हैं।

वट— बरगद के पेड़ को अमरता का प्रतीक माना गया है। और अमरता तथा अमृत का सम्बन्ध ऋग्वेद और अथर्ववेद में सोम से जोड़ा गया है।[1] पेड़-पौधों की दुनिया में इस वृक्ष का सबसे चिकना और चौड़ी पत्तियों का होता है। इतना बड़ा और फैला हुआ पेड़ अपनी भारी भरकम शाखाओं का बोझ सँभाले। इसका प्रबन्ध प्रकृति ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। जब शाखा कुछ बड़ी हो जाती है तो उसमें से एक जटा निकलकर भूमि की ओर झुक आती है। यह भूमि तक पहुँचकर अन्दर घुस जाती है और जड़ का रूप धारण कर लेती है। यह शाखा को सँभालने का एक स्तम्भ बन जाती है। इस प्रकार मूल वृक्ष के चारों ओर इन स्तम्भों का घेरा बनता चला जाता है फिर दूसरा घेरा, तीसरा घेरा। चाहे मूल जड़ सूख जाए, परन्तु ये सहारी जड़ें वृक्ष को सम्भाल रखती हैं। इस प्रकार यह पेड़ अमर होता है कभी मरता नहीं। इसका अक्षय वट नाम कितना उपयुक्त है।

कुछ वट वृक्ष भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं।

(१) प्रयाग का अक्षय वट जो रामजी को चित्रकूट जाते समय मिला था और जिसकी उन्होंने पूजा की थी और निश्चिन्तता से आराम से बैठने का वह मौका था। जब राम-सीता वनवास में घूम रहे थे तब वह यह चमत्कार

१ ऋग्वेद

फला से प्रदीप्त हो रहा था। महर्षि वाल्मीकि के बाद कविकुलगुरु कालिदास और भवभूति ने भी इसी वृक्ष का वणन किया है। तुलसीदास जी ने भी सगम के अक्षय वट का उल्लेख किया है।

(२) गया का अक्षय वट भी बहुत प्रसिद्ध था। महाभारत म इसके कई उल्लेख आए है। कश्मीर के महाकवि क्षेमेन्द्र (१०४०–१०६० ईसवी) ने गया के अक्षय वट का वणन किया है। वायु पुराण म अनेक स्थानों पर इसका उल्लेख हुआ है।

(३) *ब्रह्म पुराण (अध्याय १६१ ६६ ६७) म गोदावरी माहात्म्य के अन्तगत विन्ध्य पवत के उत्तर म एक अक्षय वट का उल्लेख है।*

(४) वम आज भी कलकत्ते और अडयार म महाविशाल वट वृक्ष खडे है किन्तु आन्ध्र घाटी के एक प्रसिद्ध वट वृक्ष के सामने ये कुछ भी नही। यह पेड ३१० मीटर की परिधि म फैला हुआ था जिसकी तीन हजार से अधिक जटाए थी। इसकी छाया के नीचे बीस हजार लोग पन्द्रह टालकर रह सकते थे।

(५) इसी प्रकार का एक पेड भरुच के कोई बीस किलोमीटर उत्तर पूव की ओर नमदा म स्थित एक टापू पर खडा था। इसको कबीर वट कहते थे। कहा जाता था कि सन्त कबीर ने दातुन करके उसका टुकडा यहा गाड दिया था। यही वट पेड बन गया। हिन्दू इसकी पूजा करते थे। अग्रेज लोग इस पर मुग्ध थे इसकी छाँह मे आमोद प्रमोद मनाने थे। इस पर अनेक कविताए रची गई। अंग्रेजी रीडर म इसका सबक पढ़ाया जाता था। १८२४ म फोर्ब्स ने अपने ग्रन्थ मे इसके बारे म लिखा है 'इस अद्भुत वृक्ष के अधिकतर भाग को (नमदा की) उँची बाढ़ ने बहा दिया है। किन्तु अब भी जो कुछ बचा है वह परिधि म

पुकारा गया है। पद्म पुराण में इसे विष्णु का रूप बताया है।[1]

पीपल और बरगद हमारे बहुत पूज्य पेड़ हैं। इनका काटना घोर अपराध और पाप में गिना गया है। कुमारसम्भव में उल्लेख है कि लोग यश धन पुत्र और पुत्रियों की प्राप्ति के लिए वट वृक्ष के देवता की पूजा करते थे। हत्थीपाल जातक में एक निर्धन स्त्री कहानी है कि वट वृक्ष के देवता की पूजा से उसे सात पुत्र प्राप्त हुए।

आंवला— तुलसी और बेल के समान ही आंवला पवित्र माना जाता है। इसके पत्तों से विष्णु और शिव दोनों की पूजा होती है। विष्णु की पूजा से सम्बद्ध होने पर इसका यश जनजाति में भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। पडा के फल पूर, जहां कुन्थिया का य ा न था के अनुसार प्रसार किया था और हरड, बहेडा आंवला वचक के मूलभूत उपाय हैं।

अशोक— अशोक को वराहमिहिर ने शुभ और मंगलकारी वृक्षों में गिनाया है। इसे राजभवनों में रमणीयता के लिए लगाया जाता था। भगवान बुद्ध लुम्बिनी वन में एक अशोक वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए थे इस कारण बौद्ध इसे पवित्र मानते हैं। दुर्गा पूजा के महोत्सव में अशोक के पत्तों का प्रयोग होता है। मन्दिरों को सजाने में और मांगलिक कार्य में लिए मण्डप बनाने में भी ये काम आते हैं। इसके फूल धार्मिक कृत्यों में चढ़ाए जाते हैं।

मालविकाग्निमित्र में महाकवि कालिदास ने अशोक की पूजा का विशद वर्णन किया है। अशोक वृक्ष की पूजा यक्षों और गन्धर्वों की देन है। प्राचीन साहित्य में अनेक स्थलों पर इसका 'मदनोत्सव' नाम से सरस वर्णन है। वास्तव में, यह पूजा कामदेव की थी उसके अन्दर अधिष्ठापित देवता की जो यक्षों और गन्धर्वों का पूज्य था। काम नाम से महातपस्वी शिव ने इसे भस्म कर दिया था किन्तु पार्वती के रूप में उसने शिव पर फिर विजय प्राप्त की। मार नाम से बुद्ध ने इस पर विजय पाई थी किन्तु अन्त में यह बौद्ध भिक्षुओं का वज्रयान के आधार रूप में स्वामी बन बैठा। इन आन्दोलनों ने साधना को इतना भुला दिया। यौन साधना और कामाचार मन के सारा प्रमाण हो गए। रूप को रत्नावली में मदनोत्सव का वर्ण महत्त्व चित्रण है। गाथा मास के सम्बन्धीय पष्ठादन के अनुसार यह मदनोत्सव के लिए मनाया जाता था।

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस पर ललित निबन्ध लिखा है उसके कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत हैं — बाद में का ने ही काम में ीन पात्र करता था और मनाने में इसको काम पर में पेड़ उठा था। इसकी शताब्दी प्रारम्भ में आप गाम प्रकार का उत्सव पुनः मान्यता धर्म साहित्य और शिल्प में अद्भुत महिमा के साथ आया था। इसी समय सांस्कृतिक परिधि यथा

1 भविष्य पुराण

पना म प्रतीत हा रहा था। मणि कामादि में बाद परिशुनागुर वालिदास और भवभूति न भी इसी वृ का वणन किया है। तुलसीदास जी न भी सगम व अक्षय वट का उल्लेख किया है।

( ) गया का अ य वट भी बड़ा प्रसिद्ध था। महाभारत म इसका कई उल्लेख आए है। कश्मीर के महाकवि क्षमन्द्र (१०००–१०८० ईसवी) न इसका अक्षय वट का वणन किया है। वायु पुराण म अनक स्थला पर इसका उल्लेख हुआ है।

(३) ब्रह्म पुराण (अध्याय १६१ ६६ ६३) म गोदावरी माहात्म्य क अन्तगत विन्ध्य पवत क उत्तर म एक अ य वट का वणन है।

(४) वस आज भी बनारस और अयोध्या म महाविशाल वट वक्ष खड़ है, किन्तु श्राद्ध घाटी क एक प्रसिद्ध वट वृ क सामन य कुछ भी नहीं। यह पड़ १ मीटर की परिधि म फैला हुआ था जिसकी तीन हजार स अधिक जटाएँ थी। इसकी छाया म बीस हजार लोग एकत्र हाकर आराम कर सकत थ।

(५) इसी प्रकार का एक पड़ भरूच क कोई बीस किलामीटर उत्तर-पूव की ओर नमदा म स्थित एक टापू पर खड़ा था। इसका कबीर वट कहत थ। कहा जाता था कि सत कबीर न दातुन करक उसका टुकड़ा यहाँ गाड़ दिया था। वही वट पड बन गया। हिन्दू इसकी पूजा करत थ। अग्रज लोग इस पर मुग्ध थ इसकी छाँह म आमोद प्रमोद मनात थ। इस पर अनक कविताए रची गई। अंग्रेजी रीडर म इसका एक सबक पढाया जाता था। १८५४ म फाब्स न अपना लख म इसके बार म लिखा है इस अद्भुत वृ क अधिकतर भाग को (नमदा नदी) ऊची बाढ़ न बहा दिया है। किन्तु अब भी जो कुछ बचा है वह परिधि म लगभग छह सौ दस मीटर है। इसके नीचे करीब तथा दूसरे पत्तों व अनेक पड उग है। इस महावृक्ष के बडे तन साढ़े तीन सौ हैं और छोट तना की संख्या तीन हजार स ऊपर है। यह तो टूट फूट पड का वणन है जब यह साबुत खड़ा होगा तब आज यारी का पड भी इसक सामन बौना होगा।

किसानी हाशमाबाद का वट वृक्ष डढ़ एकड़ म फैला हुआ है। बगलार व निकट चुन्नकुन्ता म बरगद पाँच सौ साल पुराना है और लगभग तीन एकड म फैला है। कलकत्ता म शिवपुर के बाटनिकल गाडन म सन् १७६२ म बीजारोपण के बाद बरगद का पड़ आज ५१ मीटर से अधिक तन का है और उसकी लगभग १००० जटाएँ हैं। यह चार एकड म फला है। सतारा के बरगद को सन् १८८२ म आखिरी बार मापा गया था तब उसका तना ४८३ मीटर निकला था।

वट वृक्ष की महत्ता भी यक्ष और गधव जनजाति क कारण है। प्राचीन काल म यक्ष और गधव इन पेडो को घर बनाकर रहती थी। इसी कारण संस्कृत साहित्य म बरगद को यक्षावास य वासक' तथा यक्ष तरु कहकर

ारा गया है। पद्म पुराण म इसे विष्णु का रूप बताया है।[1]

पीपल और बरगद हमारे बहुत पूज्य पेड हैं। इनको काटना घोर अपराध ौर पाप म गिना गया है। दुम्मेध जातक म उल्लेख है कि लोग यश, धन पुत्र ौर पुत्रियों की प्राप्ति के लिए वट वृक्ष के देवता की पूजा करते थ। हत्थीपाल ातक म एक निर्धन स्त्री बताती है कि वट वृक्ष के देवता की पूजा से उसे सात ुत्र प्राप्त हुए।

आवला— तुलसी और वट के समान ही आवला पवित्र माना जाता है। सके पत्तों से विष्णु और शिव दोनों की पूजा होती है। विष्णु की पूजा से सम्बद्ध ोने पर इसका यश जनजाति से भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। पेडा के फल, ल, जडी बूटियों का यश न वेग के अनुसार प्रसार किया था और हरड बहेडा ावला वद्यक के मूलभूत उपाय है।

अशोक— अशोक को वराहमिहिर ने शुभ और मगलकारी वृक्षों म गिनाया । इसे राजभवनो म रमणीयता के लिए लगाया जाता था। भगवान बुद्ध लुम्बिनी न म एक अशोक वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए थे, इस कारण बौद्ध इसे पवित्र मानत । दुर्गा पूजा के महोत्सव म अशोक के पत्तों का प्रयोग होता है। मन्दिरों ो सजाने मे और मागलिक काय के लिए मण्डप बनाने म भी यह काम आता है। सके फूल धार्मिक कृत्यों म चढाए जाते ह।

मालविकाग्निमित्र म महाकवि कालिदास न अशोक की पूजा का विशद वर्णन किया है। अशोक वृक्ष की पूजा यक्षों और गधर्वों की देन है। प्राचीन साहित्य म अनेक स्थलों पर इसका मदनोत्सव नाम से सरस वर्णन है। वास्तव म, यह पूजा अशोक की नहीं उसके अदर अधिष्ठापित कदर्प देवता की है जो यक्षों और गधर्वों का पूज्य था। काम नाम म महातपस्वी शिव न इसे भस्म कर दिया था किन्तु पार्वती के रूप म उसने शिव पर फिर विजय प्राप्त की। मार नाम से बुद्ध ने इस पर विजय पाई थी लेकिन अत म यह बौद्ध भिक्षुओं का वज्रयान तन्त्रयान रूप म स्वामी बन बैठा। शव और शाक्त साधना को इसने झुका दिया। बौद्ध साधना और कापालिक मत इसका प्रमाण बन गए। रूप की 'रत्नावली' म मदनोत्सव का बड़ा मनोहर चित्रण है। राजा भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण के अनुसार यह त्रयोदशी के दिन मनाया जाता था।

प० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अशोक पर ललित निबध लिखा है उसके कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत है — यह महादेव के मन म क्षोभ पैदा करता था और मर्यादा पुरुषोत्तम के मन में सीता का भ्रम पैदा करता था। मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर से कट उठता था। ईसवी सन् के प्रारम्भ के आस पास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म साहित्य और शिल्प म अद्भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियों के परिचित यक्षा

1 पूर्वोक्त

और गन्धर्वों न भारताय धम साधना नो एक नए रूप म वदल दिया था। पण्डिता न शायद ठीक समझाया ह कि ग धव और कल्प एक ही श ट क भिन्न भिन्न उच्चारण हैं। यत्न्प दवता न यदि अशोक चुना है तो यह (अशोक) निश्चित रूप से आर्येतर सभ्यता की देन है। शिव स भिडने जाकर एक बार य पिट चुक थ विष्णु स डरत रहत थ और बुद्ध न्व स भी टक्कर लेकर लौट आए थ। लकिन यत्न्प दयता हार मानन वाल जीव नहीं थे।

कुषाण कालीन शिल्प देखन क उपरात महेन्द्र सिंह रधावा आइ सी एस भू० उप-कुलपति पजाब कृषि विश्वविद्यालय अपनी पुस्तक गुलावम उद्यान म लिखते है अशोक कदम्ब और चम्पक फूला म क्रीडा करती कुषाण-यक्षिणिया को देखन से मुझ इस बात का बोध हुआ कि हमार पूवज शोभाकर वृक्षा म कितना प्रम करत थ।[1]

रामायण म लका म अशोक वाटिका का वणन है। उसम इसे शिवजी का प्रिय वृक्ष माना गया है।

शिल्प मे यक्ष

लोक म शिल्प कला का प्रमरण वगाल बिहार उडीसा मध्य भारत और उत्तरी भारत म प्राप्त खडी मूर्तिया स पता चलता है। य अधिकतर य ा और यक्षिया की आकृति हैं और उनकी कला दरबारी शिल्प के सुगढ चमत्कार शिल्प स बिल्कुल अलग थलग है। जिस पत्थर स य बनाई गई है वह उडीसा स लेकर गुजरात तक और पटना स लेकर मथुरा तक इस रात म उपलब्ध है। व प्राचीन तम शिल्प के नमून ह। विशाल आकृति खडी हुई किसी गुम्फित सायवान क नीच या खुल गगन के नीच। इनम स कुछ मूर्तियाँ निम्न है —

(१) मथुरा जिल क परखम गाँव का यक्ष मूर्ति
(२) „ „ के वरोदा गाँव की यक्षी मूर्ति
(३) „ भीग का नगरा की यक्षा मूर्ति
(४) भरतपुर जिल के नोह गाव की यक्ष मूर्ति
(५) भोपाल के निकट वसनगर की य ी मूर्ति
(६) पवाया (प्राचीन पद्मावती) की यक्ष मूर्ति
(७) दीदारगज, पटना की प्रसिद्ध चामरग्राहिणा य ी की मूर्ति
(८) पटना की यक्ष मूर्ति
(९) „ की दूसरी यक्ष मूर्ति
(१) वसनगर की तलिर नाम से प्रसिद्ध यक्षी मूर्ति
(११) राजघाट (प्राचीन वाराणसी) से प्राप्त निमख यक्ष का मूर्ति
(१२) सम्भवत सोपारा (बम्बई क पास) से प्राप्त यक्ष मूर्ति

1 पृष्ठ 13

(१३) भिलसा के पास बेतवा नदी में मिली यक्ष मूर्ति

(१४) उडीसा में शिशुपालगढ़ की खुदाई में मिली यक्षों की अनेक विशाल मूर्तियाँ

(१५) पटना विहार से प्राप्त अहिच्छत्रा यक्ष की मूर्ति

(१६) कुरुक्षेत्र के पास अमीन की यक्ष मूर्ति ।

यह डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल की पुस्तक Indian Art में दी गई सूची है। इनका विस्तृत विवरण इस पुस्तक में पृष्ठ ११०–११८ पर दिया है ।

ये मूर्तियाँ महाकाय और महाप्रमाण हैं और अत्यन्त ओज दिखाती हैं ।

ये गोल बनाई गई हैं (चतुर्मुख दर्शन) इसलिये अपने में पूर्ण खडी हैं किन्तु केवल सामने से ही देखने के लिए बनाई गई हैं ।

उनके सिर पर उष्णीष (पगडी) है, ऊपर कन्धों और हाथों पर उत्तरीय पडा है या सीने पर बधा है और नीचे धोती टखनों तक पहने हैं जिस पर कमर पेटी बधी है ।

गहनों में भारी कान के झुमके भारी कण्ठा, एक चौरस तिकोना नकलेस और बाहुओं में भुजबन्द हैं ।

और इन मूर्तियों को कुछ तुन्दियल दिखाया गया है ।

इनमें कई मणिभद्र यक्ष की हैं ।

महाभारत में यक्ष को महाकाय, ताल समुच्छ्रत (ताड के समान ऊंचा) पर्वतोपम और अधृष्य (सूर्य और अग्नि के समान चमकदार) बताया है ।[1] और उन्हें अत्यन्त बलशाली (महाबल) कहा है । इन मूर्तियों में यह वर्णन चरितार्थ होता है । ये मूर्तियाँ आगे चलकर बनी बोधिसत्वों, बुद्ध, तीर्थंकरों और विष्णु की मूर्तियों की पूर्वज हैं ।

हरियाना में यक्षों का प्रभाव

महाकाव्यों तथा पुराणों के काल में कुरुक्षेत्र के आस पास यक्षों का अत्यन्त प्रभाव था । यह हमें महाभारत वामन पुराण और मार्कण्डेय पुराण से पता चलता है ।

कुरुक्षेत्र के ईशान (पूर्व उत्तर) कोण पर तरन्तुक यक्ष है । कुरुक्षेत्र से अग्नि कोण (पूर्व दक्षिण) सीमा पर अरन्तुक यक्ष है । कुरुक्षेत्र के नैऋत कोण (पश्चिम दक्षिण) पर रामह्रद है । तरन्तुक यक्ष से सरस्वती तट पर चलकर चालीस कोस पर वायु कोण (उत्तर पश्चिम) पर द्वितीय अरन्तुक यक्ष है । उत्तर सीमा में अरन्तुक यक्ष से कुछ ही कम चालीस कोस पर रामह्रद है। दक्षिण सीमा रामह्रद से उत्तर भाग में चालीस कोस से कुछ अधिक दूरी पर अरन्तुक यक्ष है । प्रत्येक दिशा में कुरुक्षेत्र की रक्षार्थ भगवान विष्णु ने चन्दन यक्ष पन्नगराज

वासुकि, विद्याधर शङ्कुकर्ण, राक्षसराज सुकेशी, महाराज अजावलि और महाध्वज नाम की अग्नि को नियुक्त किया है। यह सब अपने सेवकों सहित कुरुक्षेत्र की रक्षा करते हैं। महापापी रूप आठ सहस्र धनुर्धर कुरुक्षेत्र में दुष्कर्मा पापियों का स्थिर नहीं होने देते और उन्हें इस क्षेत्र से बाहर निकाल देते हैं।[1]

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं ।
रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च ॥
एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं ।
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥[2]

तरन्तुक और अरन्तुक के तथा रामह्रद और मचक्रुक (यक्ष) के बीच का जो भूभाग है वही कुरुक्षेत्र एवं समन्तपञ्चक है उसे ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी कहते हैं।

बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में थानेश्वर का वर्णन करते हुए लिखा है कि थानेश्वर (कुरुक्षेत्र से 1½ मील दूर थानेसर) के चारों ओर चार यक्षों के स्थान थे जो उस नगर के द्वारपाल थे। महाभारत वामन पुराण और बाणभट्ट के लिए नामों के यक्षों से आज भी कुरुक्षेत्र की परिक्रमा करते समय भेंट होती है। उत्तर यक्ष ग्राम में रत्नुक यक्ष रत्नानूक्षा। इसके आग्नेय कोण में अरन्तुक यक्ष है इसको यक्ष तीर्थ कहते हैं। इसी परिक्रमा में रामह्रद ग्राम है जिसमें चार यक्ष निवास करते हैं— महायक्षिणी रमारद कपिल यक्ष उलूखला यक्षिणी। फिर कनायत ग्राम आता है जहाँ बड़े प्रसिद्ध मन्दिर हैं यह कपिल यक्ष का स्थान है। बराह ग्राम में द्वारपाल वासुकि यक्ष है।

काल गणना

भारत में नौ प्रकार की काल गणना प्रचलित है —

ब्राह्म पित्र्य दैव प्राजापत्य, गौरव सौर सावन चान्द्र और नाक्षत्र। गौरव गुरु (बृहस्पति) से बना है। इसे बार्हस्पत्य भी कहते हैं।

इस गणना में भी ब्राह्म और दैव अलग-अलग हैं और ब्राह्म पहले आता है दैव तीसरे नम्बर पर है।

ब्रह्मर्षि

हमारे पुराणों में महर्षि देवर्षि और ब्रह्मर्षि का वर्णन आया है। इनमें महर्षि हरेक को कहा गया है किन्तु ब्रह्मर्षि बहुत ऊंचा पद है और इस पर केवल वसिष्ठ पहुंचे थे। विश्वामित्र ने भी इस पद को प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास किये। अन्त में वसिष्ठ के मान लेने पर उन्हें भी ब्रह्मर्षि पद प्राप्त हुआ। इस पर अनेक मनोहर गाथाएँ हैं— देखिए अरुण भारतीय पुरा इतिहास कोश।

1 वामन पुराण अ० 22 श्लोक 40 से 43
2 महाभारत वन पर्व अध्याय 83 श्लोक 208

ब्रह्मर्षि शब्द पर ध्यान करनी है। ब्रह्मा को सब ज्ञान का उद्गम कहा गया है। क्या ब्रह्मर्षि से यही तात्पर्य है कि वह ऋषि जो सब ज्ञानो का ज्ञाता हो?

देवर्षि केवल नारद मुनि को कहते हैं।

चम्पा का पूर्णभद्र यक्ष का चैत्य

जैन के औपपातिक सूत्र में चम्पा नगर का सुन्दर वर्णन है। उसी में बताया है कि चम्पा नगरी में पूर्णभद्र यक्ष का एक प्राचीन चैत्य था जहाँ महावीर ठहरा करते थे। यह चैत्य ध्वजा छत्र और घण्टियों से मण्डित था, वेदिका से शोभित था। भूमि यहाँ की गोबर से लिपी हुई थी गोशीर्ष चन्दन के थापे लग हुए थे, चन्दन कलश रक्खे हुए थे, द्वार पर तोरण बधी थी, सुगन्धित मालाएँ लटकी हुई थी, रंग बिरंगे सुगन्धित पुष्प बिखरे हुए थे, सर्वत्र धूप महक रही थी तथा नट, नर्तक गायक, वादक आदि का यह निवास स्थान था।

यह वर्णन ऐसा लगता है जैसा दक्षिण के किसी मन्दिर का किया जा रहा है।

इसी प्रकार जैन सूत्रो में वैशाली के उत्तर पूर्व में कोल्लाग के निकट अट्ठिय ग्राम नाम के गाँव का वर्णन है। इसे वर्धमान भी कहते थे। यहाँ वेगवती (गण्डकी) नाम की नदी बहती थी। इस गाँव में शूलपाणि यक्ष का बड़ा मन्दिर था। महावीर ने अट्ठियग्राम में प्रथम चातुर्मास बिताया था।

द्वारका के पास यक्ष चैत्य

गुजरात में द्वारका के उत्तर पूर्व में रैवतक पर्वत था जिसके आस-पास का प्रदेश गिरिनगर या गिरिनार पुकारा जाता था। रैवतक की पहचान जूनागढ़ के पास गिरनार से की जाती है। रैवतक अनेक पक्षियों और लताओं से सुशोभित था इसमें अनेक झरने थे। यादव यहाँ प्रतिवर्ष गिरिमह उत्सव मनाने के लिए इकट्ठे होते थे। यहाँ नन्दन वन नाम का वन था जिसमें सुरप्रिय यक्ष का सुन्दर चैत्य था।

रथ यात्रा

उत्तर भारत में अनन्त चौदस के दिन हर नगर में जैनियो की रथ यात्रा निकलती है। इसी प्रकार पुरी में जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा निकलती है जो उत्सव हरे कृष्ण आन्दोलन के कारण सारे विश्व में फैल गया है। दक्षिण में भी सब हिन्दू मन्दिरों से विशाल रथो में देवमूर्तियों को निकाला जाता है।

प्राचीन काल में जिनप्रभ सूरि के अनुसार श्रावस्ती में समुद्रवंशी राजा राज्य करते थे। ये बुद्ध के परम उपासक थे और बुद्ध के सम्मान में वरघोड़ा निकालते थे।

हैं। इन विभिन्न धर्मों में समान रथ यात्रा निकालना यक्षों के प्रभाव का एक अन्य प्रमाण लगता है।

दाढ़ी

जितने भी हमारे ऋषि हैं देव कुल गुरु बृहस्पति हों या मरीचि, अगस्त्य वसिष्ठ विश्वामित्र आदि इन सबके दाढ़ी थी यह हम साहित्य शिल्प और चित्र से पता चलता है। उधर जितने मुनि हैं सब दाढ़ी मूछ विहीन हैं चाहे वे नारद मुनि हों या शाक्य मुनि या जैन मुनि।

इससे यह पता चलता है कि ऋषि और मुनि अलग अलग जाति के थे। यह हम आज भी देखते हैं कि किरात प्रजाति के मुख पर बाल बहुत हल्के होते हैं। दूसरे उनकी जनजातियों में मुखौटे लगाने का प्रचलन था और दाढ़ी मुखौटे लगाने में बाधक थी।

शिव और विष्णु के भी दाढ़ी नहीं है राम और कृष्ण के भी दाढ़ी नहीं है। इसका क्या कोई अर्थ है?

कुबेर और लक्ष्मी का योग

श्री शशिभूषण दास गुप्त अपनी पुस्तक श्रीराधा का क्रमविकास में लिखते हैं 'श्री सूक्त'[1] के सप्तम मन्त्र में कुबेर से लक्ष्मी का योग दिखाई पड़ता है पुराण तन्त्रादि निर्दिष्ट लक्ष्मी पूजा और कुबेर पूजा में योग भी इसी प्रसंग में लक्षनीय

1 श्रीसूक्त ऋग्वेद के पंचम मण्डल के अन्त में खिल सूक्तस्थ पन्द्रहवीं ऋक है।